भाकृअनुप
ICAR

वर्ष-12 अंक (1 एवं 2) जनवरी–दिसम्बर, 2018

सब्जी किरण

(राजभाषा पत्रिका)

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान
वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

सब्जी किरण (राजभाषा पत्रिका)
वर्ष-12 अंक (1 एवं 2) 2018

सब्जी किरण

(राजभाषा पत्रिका)

वर्ष-12 अंक (1 एवं 2) जनवरी–दिसम्बर, 2018

सर्वाधिकार
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी

संरक्षक एवं प्रकाशक
बिजेन्द्र सिंह, निदेशक

सम्पादक मण्डल

- जगदीश सिंह
- के.के. पाण्डेय
- डी.आर. भारद्वाज
- आत्मानंद त्रिपाठी
- एस.एम.वनिता
- रामेश्वर सिंह
- प्रभाकर मोहन सिंह
- सुरेश कुमार वर्मा
- सुधाकर पाण्डेय
- इन्दीवर प्रसाद
- एस.के. जिंदल

भाकृअनुप
ICAR

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान
पो. बैग नं. 01, पो. आ. जक्खिनी (शाहंशाहपुर),
वाराणसी–221 305 (उ.प्र.)
दूरभाषः 91–0542–2635247 / 2635236 / 2635237
फैक्सः 91–5443–229007
ई–मेलः directoriivr@gmail.com, वेबसाइटः www.iivr.org.in

@ भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं।
संस्थान अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अपने लेख (010 कुर्तीदेव के 14 शब्दाकार में) एवं सुझाव भेजें
संपादक, सब्जी किरण
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान
पो.आ. जक्खिनी (शाहंशाहपुर)
वाराणसी– 221 305 (उ.प्र.)
ई–मेल : directoriivr@gmail.com
मो. : +91–9536243388, 9935490563, 9415301823

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य (वर्ष 2018–19)

डा. बिजेन्द्र सिंह	अध्यक्ष
डा. सुरेश कुमार वर्मा	सदस्य
डा. डी. आर. भारद्वाज	सदस्य
डा. सुधाकर पाण्डेय	सदस्य
डा. आत्मा नंद त्रिपाठी	सदस्य
डा. इन्दीवर प्रसाद	सदस्य
डा. एस. एम. वनिता	सदस्य
श्री एस. के. जिन्दल	सदस्य
डा. रामेश्वर सिंह	सदस्य सचिव

प्रकाशक
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान
पो. बैग नं. 01, पो. आ. जक्खिनी (शाहंशाहपुर),
वाराणसी–221 305 (उ.प्र.)
दूरभाषः 91–0542–2635247 / 2635236 / 2635237
फैक्सः 91–5443–229007
ई–मेलः directoriivr@gmail.com, वेबसाइटः www.iivr.org.in

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान
पो. बैग नं.–01, पोस्ट आफिस–जक्खिनी
(शाहंशाहपुर), वाराणसी–221 305 (उ.प्र.)
ICAR-Indian Institute of Vegetable Research
Post Bag No.-01, Post Office-Jakhini
(Shanshahpur), Varanasi-221 305 (U.P.)

प्राक्कथन

देश में हरित क्रान्ति के उपरान्त खाद्यान्न उत्पादन बढ़ने के साथ–साथ औद्यानिक फसलों का उत्पादन भी 305.4 मिलियन टन हुआ जिनमें 184 मिलियन टन का योगदान सब्जियों का है जो देश के विकास में विश्व स्तर पर एक अच्छा संकेत है, परन्तु रसायनों के अनियंत्रित प्रयोग के कारण मृदा, वातावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इसके दुष्प्रभाव को कम करने के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन एवं औद्यानिक फसलों को अधिक से अधिक कृषि में समावेशित करना आवश्यक है। औद्यानिक फसलों में सबसे अधिक विविधता सब्जियों में है जिसका प्रयोग कृषि विविधीकरण में करके वातावरण, मृदा एवं मानव स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाने के साथ–साथ कृषकों की आय में वृद्धि की जा सकती है। संस्थान से विकसित सब्जियों की किस्में, रोग प्रतिरोधी, कम समय में अधिक उत्पादन देने वाली एवं अधिक गुणवत्ता वाली हैं। प्रचलित फसल चक्रों में इनका समावेश करके कृषकों की आय एवं मानव पोषण सुरक्षा में वृद्धि की जा सकती है। संस्थान द्वारा सब्जियों की विकसित किस्मों के प्रचार–प्रसार के लिए बाह्य वित्त पोषित परियोजनाओं के माध्यम से किसानों को बीज उपलब्ध कराया जाता है। इसके अलावा गरीब एवं आदिवासी किसानों के जीवन स्तर को सुधारने एवं पोषण सुरक्षा हेतु गृहवाटिका पैकेट, 200 से 300 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में बुवाई/रोपण के लिए उपलब्ध कराया जाता है। संस्थान द्वारा विकसित सब्जी प्रसंस्करण, समेक्ति कीट/रोग प्रबंधन तकनीकों का अखिल भारतीय समन्वित शोध परियोजना (सब्जी फसल) द्वारा मानकीकृत किया गया है तथा इससे किसानों के शुद्ध लाभ में काफी वृद्धि हुई है। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के अन्तर्गत फसल अवशेष प्रबंधन, जीरो टिलेज पद्धति, नेडप तथा वर्मी कम्पोस्ट बनाना एवं उनका प्रयोग करना, कृषि लागत को कम करके अधिक से अधिक गुणवत्तायुक्त सब्जियों के उत्पादन का कार्य कृषकों के प्रक्षेत्र पर करने के लिए इसका प्रशिक्षण समय–समय पर संस्थान द्वारा दिया जाताहै एवं इसकी विधियों का अवलोकन, प्रक्षेत्र भ्रमण के दौरान कराया जाता है। कृषि फसलों में रसायनों के प्रयोग को कम से कम करने के लिए फसलों की समय से बुआई, प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव, जैविक कीटनाशकों एवं रोगनाशकों का प्रयोग भी प्रशिक्षण एवं प्रक्षेत्र भ्रमण के दौरान कराया जाता है।

संस्थान द्वारा शिक्षित बेरोजगारों में उद्यमीकरण को बढ़ावा देने के लिए संस्थान में कटाई उपरान्त सब्जीएवं बीज प्रसंस्करण प्रशिक्षण एवं इनकी इकाईयों में प्रयोगात्मक प्रशिक्षण भी दिया जाता है। वर्तमान में देश की सबसे अधिक जरूरत प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर प्रयोग द्वारा लागत को कम करके गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त करना है। भा.कृ.अनु.प.– भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से प्रकाशित इस पत्रिका में संस्थान द्वारा विकसित किस्मों, तकनीकों का विवरण दिया जा रहा है। मुझे आशा है कि पत्रिका का यह अंक वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों, छात्रों, गैर सरकारी संगठनों एवं कृषकों के लिए ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

(बिजेन्द्र सिंह)
निदेशक

Phone & Fax No.: 0542-2635247 (O), Mo. No. 08004924520
E-mail: directoriivr@gmail.com, bsinghiivr@gmail.com

सब्जी किरण

(राजभाषा पत्रिका)

वर्ष-12 अंक (1 एवं 2) जनवरी–दिसम्बर, 2018

अनुक्रमणिका

1. सब्जियों द्वारा कृषि का विविधीकरण एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन 1
बिजेन्द्र सिंह, आर. बी. यादव एवं रामेश्वर सिंह

2 सब्जियों में पोषक तत्वों का महत्व 6
आर. बी. यादव, जगदीश सिंह, शेखर सिंह एवं कमलेश यादव

3. दलहनी सब्जियों का पोषण सुरक्षा में योगदान 11
राकेश कुमार दुबे, ज्योति देवी, विकास सिंह, मनीष कुमार सिंह, पी.एम. सिंह एवं बी. सिंह

4. पोषण सुरक्षा हेतु पत्तीदार सब्जियों का उत्पादन 20
ज्योति देवी, विद्या सागर, बी.के. सिंह, आर.के. दुबे, सुनील कुमार, पी.एम. सिंह एवं बी. सिंह

5. सब्जियों की प्रतिरोधी किस्मों के विकास की नई तकनीकें 28
ऋषि कुमार शर्मा एवं अच्युत कुमार सिंह

6. सब्जियों एवं फूलों की संरक्षित खेती 33
प्रदीप कुमार सिंह

7. कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती फसल उगाने की विधियाँ 39
डी. आर. भारद्वाज, त्रिभुवन चौबे, के. के. गौतम, ए. के. सिंह, सुरेश कमार वर्मा, डी. पी. महाराणा एवं संदीप कुमार

8. औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेती : आज की माँग 48
सुरेश कुमार वर्मा, राम चन्द्र, डी.आर. भारद्वाज, रामेश्वर सिंह, पी.एम. सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

9. उत्तर प्रदेश में हल्दी की उन्नत उत्पादन तकनीकी 51
राम चन्द्र, रामेश्वर सिंह, नागेन्द्र राय, एस. के. वर्मा, बी. सिंह एवं अंजनी झा

10. बेबी कार्न उगायें : पौष्टिकता पायें 54
डी.के. सिंह, शेखर सिंह, अनन्त बहादुर, एस.एन.एस. चौरसिया, आर.एन. प्रसाद एवं जगदीश सिंह

11. संस्थान द्वारा विकसित भिण्डी की प्रचलित किस्मों की खेती 57
त्रिभुवन चौबे, बिजेन्द्र सिंह, शिवम् चौबे, रमेश कुमार सिंह एवं धनंजय कुमार उपाध्याय

12. खीरा की संरक्षित खेतीः किसान कमा सकते हैं अधिक मुनाफा 61
सुधाकर पाण्डेय, विकास सिंह, आर.के. दुबे एवं शिवम् चौबे

13. सब्जी उत्पादन में प्लास्टिक मल्चिंग का महत्व 64
संजय कुमार सिंह एवं सन्दीप कुमार खरे एवं संत कुमार शर्मा

14. लवणीय मृदाओं में सब्जी उत्पादन कैसे करें? 66
इन्दीवर प्रसाद, राजेश कुमार, पी.एम. सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

15. बूँद–बूँद (ड्रिप) सिंचाई द्वारा सब्जी उत्पादन 72
अनन्त बहादुर, डी. के. सिंह एवं जगदीश सिंह

16. उचित खर–पतवार प्रबंधन अपनायें : सब्जी उत्पादन को लाभकारी बनायें 78
राघवेन्द्र सिंह, शुभदीप रॉय, एस.के. सिंह, नीरज सिंह, अनंत बहादुर एवं जगदीश सिंह

17. तुड़ाई उपरान्त फलों और सब्जियों का कम दबाव (हाइपाबेरीक) पर भंडारणः फसल कार्यिकी पर प्रभाव 82
स्वाति शर्मा, सुधीर सिंह एवं जगदीश सिंह

18. मूल्य संवर्धन द्वारा हरी मिर्च पाउडर बनाने की विधि 85
सुधीर सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

19. कार्बनिक खाद बनाने की विभिन्न विधियाँ 87
एस. के. सिंह

20. फूल गोभी का बीज उत्पादन 93
बी. के. सिंह, सौरभ सिंह एवं पी. एम. सिंह

21. सब्जी बीज गुणवत्ता प्रबंधन एवं भण्डारण 100
रामेश्वर सिंह, मनीमुरूर्गन सी. एवं पी.एम. सिंह

22. उद्यमिता विकास हेतु बीज उत्पादन 103
पी. एम. सिंह एवं रामेश्वर सिंह

23. सब्जियों के बीज अंकुरण परीक्षण की विधियाँ 106
मनीमुरूगन सी., नकुल गुप्ता, पी. एम. सिंह, राजेश कुमार एवं त्रिभुवन चौबे

24. कद्दू वर्गीय सब्जियों में तना स्राव झुलसा (गमी स्टेम ब्लाइट) रोग का समन्वित प्रबंधन 111
ए. एन. त्रिपाठी, के. के. पाण्डेय, ए. बी. राय, सुधाकर पाण्डेय एवं बी. सिंह

25. पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी के द्वारा सब्जियों का विषमुक्त किफ़ायती कीट प्रबंधन एवं श्रेष्ठ उत्पादन 113
ए. पी. सिंह एवं ए. बी. राय

26. सब्जी फसलों में टॉस्पोवायरस का प्रबंधन 121
श्वेता कुमारी, के. नागेन्द्रन, एस. के. वर्मा, विकास दुबे एवं ए. बी. राय

27. फार्मर फर्स्ट परियोजना द्वारा किसानों की आय दुगनी करने का सार्थक पहल 125
नीरज सिंह, शुभदीप रॉय, डी.आर. भारद्वाज, श्रीप्रकाश सिंह, यशपाल सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

28. राजभाषा क्रिया–कलाप 129

सब्जी किरण वर्ष–12 (1 एवं 2) जनवरी–दिसम्बर, 2018

सब्जियों द्वारा कृषि का विविधीकरण एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

बिजेन्द्र सिंह, आर. बी. यादव एवं रामेश्वर सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

भारत में बढती जनसंख्या की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा हेतु फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से न केवल मृदा एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है बल्कि उत्पादन लागत भी बढ़ रही है। ऐसी दशा में मानव स्वास्थ्य सुरक्षा के साथ–साथ कृषि उत्पादकता को टिकाऊ बनाये रखना एवं किसानों की आय को दोगुना करना एक चुनौती भरा कार्य है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु परंपरागत फसलोत्पादन पद्धतियों में सब्जियों द्वारा विविधीकरण एवं प्राकृतिक संसाधनों का समुचित प्रबंधन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार भारत की कुल आबादी का 17 प्रतिशत कुपोषण का शिकार है। देश के प्रत्येक 5 में से 3 व्यक्ति अपने भोजन में फल एवं सब्जियों की आवश्यकता से कम मात्रा में सेवन करते हैं। चूँकि अधिकांश सब्जियाँ पोषण से भरपूर होती हैं इसलिए इनका सेवन बढ़ाने से भूखमरी एवं कुपोषण की समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

अधिकांश सब्जियों की फसल–अवधि कम एवं उत्पादकता अधिक होती है, इसलिए इन्हें किसी भी फसल चक्र में समाहित किया जा सकता है एवं अन्तर्वर्ती फसल के रूप में उगाकरं कम समय में अधिक उपज एवं आय प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सब्जी उत्पादन से रोजगार में भी वृद्धि होती है। फसल चक्र में दलहनी सब्जियों जैसे मटर, लोबिया, ग्वार, बांकला, सेम आदि के समावेश से मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है एवं मृदा के प्रत्येक स्तर से पोषक तत्वों का उपयोग होने से एक संतुलन बना रहता है।

फसल चक्र में सब्जियों के समावेश से उपज एवं आय में वृद्धि

देश के अधिकांश भागों में धान–गेहूँ, गन्ना–गन्ना पेड़ी, धान–मसूर, धान–चना, धान–सरसों, ज्वार–सरसों, बाजरा–चना, अरहर–गेहूँ आदि प्रचलित फसल चक्र हैं। संस्थान द्वारा विकसित सब्जियों की विभिन्न किस्में एवं संकर प्रजातियाँ अधिक उपज देने के साथ–साथ कीट एवं रोगों के प्रति सहनशील हैं। उदाहरण स्वरूप संस्थान द्वारा विकसित टमाटर की काशी अमन, काशी विशेष, काशी अमृत, काशी अनुपम किस्मों की फल उपज अधिक एवं भण्डारण क्षमता अच्छी है तथा यह पर्ण कुंचन रोग के प्रति सहनशील हैं। बैंगन में काशी उत्तम, काशी तरू, काशी कोमल, काशी प्रकाश तथा मिर्च में काशी अनमोल किस्में अधिक उपज देने वाली एवं रोग के प्रति सहनशील हैं। भिण्डी की काशी प्रगति, काशी क्रांति, काशी विभूति एवं काशी सातधारी किस्में भी अधिक उपज एवं पीत शिरा मोजैक विषाणु के प्रति सहनशील हैं। जड़ वाली फसलों में मूली की काशी श्वेता, काशी हंस, गाजर की काशी अरूण तथा कद्दू वर्गीय फसलों में चिकनी तोरी की काशी दिव्या, लौकी की काशी गंगा, कुम्हड़ा की काशी हरित, पेठा की काशी धवल, काशी सुरभि, परवल की काशी अलंकार एवं काशी सुफल किस्में फलों की गुणवत्ता एवं रोग सहनशीलता के कारण देश के किसान प्रचलित फसल चक्र में अपनाकर कम लागत में अधिक आय प्राप्त कर रहे हैं। दलहनी सब्जियों में लोबिया की काशी कंचन, काशी उन्नति, काशी श्यामल, काशी निधि, काशी सुधा बौनी (45–60 सेमी.), अगेती (40–50 दिन) एवं गोल्डेन बीन मोजैक वायरस के प्रति सहनशील हैं एवं धान–गेहूँ के बाद जायद में खेती करने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। सब्जी मटर की काशी नन्दिनी, काशी उदय, काशी मुक्ति, काशी शक्ति, काशी समृद्धि; फराश बीन की काशी सम्पन्न, काशी राजहंस एवं फूल गोभी की काशी गोभी–25 अधिक उपज देने वाली किस्में हैं। इसके अलावा संस्थान द्वारा अधिक उपज देने वाली एवं रोगों के प्रति सहनशील संकर किस्मों का विकास किया गया है जैसे टमाटर में काशी अभिमान, मिर्च में काशी तेज, काशी सुर्ख, बैंगन में काशी संदेश एवं चिकनी तोरी में काशी सौम्या संकर किस्में हैं। सब्जियों की इन किस्मों को प्रचलित फसल चक्रों में शामिल करके अधिक आय प्राप्त की जा सकती है (सारिणी 1)। प्रचलित फसल चक्रों में संस्थान से विकसित सब्जियों की किस्मों को शामिल करने के बाद प्रति हे. उपज एवं आय का विवरण नीचे सारिणी–2 में दिया गया है।

सारिणी 1: कृषकों के प्रक्षेत्र पर प्रचलित फसल चक्र से आय

खरीफ			रबी			जायद			कुल लागत (रू.)	कुल आय (रू.)	शुद्ध आय (रू.)
फसल	औसत उपज कु./हे.	आय (रू.)	फसल	उपज कु./हे.	आय (रू.)	फसल	उपज कु./हे.	आय (रू.)			
धान	42	71400	गेहूँ	44	74800	मूंग	10	69000	114000	215200	101200
धान	42	71400	गेहूँ	44	74800	–	–	–	77100	146200	69100
मक्का	18	30600	गेहूँ	44	74800	–	–	–	52500	105400	52900
ज्वार	16	38400	चना	16	67200	–	–	–	49500	105600	56100
बाजरा	17	32300	सरसों	17	66300	–	–	–	39000	98600	59600
अरहर	16	89600	–	–	–	–	–	–	35800	89600	53800
–	–	–	गन्ना	900	247500	–	–	–	109600	247500	137900
–	–	–	–	–	–	गन्ना	800	220000	109600	220000	110400
धान	42	71400	चना	16	67200	–	–	–	72800	138600	65800
अरहर + ज्वार	16 + 10	89600+ 24000	–	–	–	–	–	–	50800	113600	62800

सारिणी 2: प्रचलित फसल चक्र में सब्जियों के समावेश के बाद आय

खरीफ			रबी			जायद			कुल लागत/हे. (रू.)	कुल आय/हे. (रू.)	शुद्ध आय/हे. (रू.)
फसल	औसत उपज कु./हे.	आय (रू.)	फसल	उपज कु./हे	आय (रू.)	फसल	उपज कु./हे	आय (रू.)			
धान	42	71400	गेहूँ	44	74800	लोबिया	100	1,00000	139700	246200	106500
धान	42	71400	गेहूँ	44	74800	भिण्डी	80	1,20,000	152100	266200	114100
मक्का	18	30600	गेहूँ	44	74800	खीरा	50	75,000	107000	180400	73400
ज्वार	16	38400	चना	16	67200	भिण्डी	80	1,20,000	124500	225600	101100
बाजरा	17	32300	सरसों	17	66300	लोबिया	100	1,00000	101600	198600	97000
अरहर	16	89600	–	–	–	भिण्डी	80	1,20,000	110800	209600	98800
मूंग	10	69000	गेहूँ	44	74800	करेला	50	75,000	127900	218800	90900
उर्द	15	84,000	सरसों	17	66300	लौकी	200	1,00,000	114400	250300	135900
मक्का	18	30600	चना	16	67200	नेनुआ	200	1,00,000	103900	197800	93900
मक्का	18	30600	सब्जी मटर	80	120000	नसदार तोरी	150	90,000	112900	240600	127700

अन्तर्वर्ती फसल के रूप में सब्जियों को शामिल करने से आय में वृद्धि

यह फसलोत्पादन की ऐसी विधि है जिसमें मुख्य फसल की धीमी वृद्धि एवं लम्बी अवधि के बीच ऐसी फसलों को उगाया जाता है जो मुख्य फसल को बिना नुकसान पहुँचाये अतिरिक्त आय प्रदान करें एवं मुख्य फसल में की जाने वाली कर्षण क्रियाओं से अन्तर्वर्ती फसल की कर्षण क्रियाएं पूरी हो जाती हों। अरहर के बीच ज्वार एवं मूंग/उर्द की खेती, मक्का के साथ उर्द/मूंग की खेती, गन्ना के साथ सरसों/आलू की खेती आदि कुछ प्रचलित अन्तर्वर्ती फसल पद्धतियाँ हैं। अन्तर्वर्ती फसल के रूप में सब्जियों की संस्थान से विकसित किस्मों को शामिल करने के बाद प्रति हे. आय में वृद्धि होती है। जैसे गन्ना की दो पंक्तियों के बीच लोबिया/भिण्डी की अन्तर्वर्ती खेती, अरहर की दो पंक्तियों के बीच लोबिया की अन्तर्वर्ती खेती आदि। अन्तर्वर्ती फसल के रूप में संस्थान द्वारा विकसित सब्जियों की किस्मों को सम्मिलित करने के उपरान्त आय का विवरण (सारिणी–3) दिया गया है।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से आय वृद्धि

इसके अन्तर्गत फसलों के अवशेष को मिट्टी में मिलाना, शून्य/कम जुताई करना, फसल अवशेष से नाडेप/वर्मीकम्पोस्ट तैयार करके फसलों में प्रयोग करना, फसल सुरक्षा हेतु वानस्पतिक/जैव कीटनाशी का प्रयोग एवं मृदा में नत्रजन/ फास्फोरस की मात्रा बढ़ाने वाले जीवाणु

सारिणी 3: सब्जी समावेशित अन्तर्वर्ती फसल चक्र से आय

खरीफ			रबी			जायद			कुल लागत/हे. (रू.)	कुल आय/हे. (रू.)	शुद्ध आय/हे. (रू.)
फसल	औसत उपज कु./हे.	आय (रू.)	फसल	औसत उपज कु./हे.	आय (रू.)	फसल	औसत उपज कु./हे.	आय (रू.)			
अरहर + लोबिया	12 + 50	67200 + 50000	–	–	–	बाजरा + खीरा	15 + 50	28500 +75000	119000	220700	101700
मक्का + लोबिया	15 + 50	25500 + 50000	गेहूँ + सरसों	40 + 6	68000 + 23400	ज्वार + करेला	15 + 40	36000 + 60000	135000	262900	127900
ज्वार + लोबिया	10 + 40	24000 + 60000	गेहूँ + तीसी	40 + 4	68000 + 16000	सूरजमुखी + लौकी	5 + 50	26500 + 25000	140000	219500	79500
बाजरा + लोबिया	15 + 50	28500 + 50000	चना + सब्जी मटर	15 + 15	63000 + 22500	ज्वार + नेनुआ	15 + 100	36000 + 50000	123700	250000	126300
परवल + लोबिया	0 + 50	0 + 50000	परवल + सब्जी मटर	20 + 50	40000 + 75000	परवल + मूंग	30 + 8	60000 + 55200	161000	280200	119200
–	–	–	गन्ना + आलू	800 + 200	220000 + 100000	–	–	–	159100	320000	160900
–	–	–	गन्ना + फराशबीन	800 + 40	220000+ 80000	–	–	–	147100	300000	152900
–	–	–	गन्ना + सब्जी मटर	800 + 60	220000 + 90000	–	–	–	152100	310000	157900
–	–	–	–	–	–	गन्ना + खीरा	800 + 60	220000 + 90000	164100	310000	145900

कल्चर का प्रयोग आदि क्रियायें प्रमुख हैं। इनके समुचित उपयोग से मृदा–स्वास्थ्य में सुधार होता है एवं वातावरण भी विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से सुरक्षित रहता है। साथ ही उत्पादन लागत कम आने से आय भी बढ़ जाती है।

शून्य/कम जुताई

इस विधि से खेती करने से मृदा से जीवांश का ह्रास कम होने के कारण मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है। भूमि में लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होने से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। मृदा में नमी का संचय अधिक होता है तथा भू–क्षरण भी कम होता है जिसके परिणाम स्वरूप फसलोत्पादन अधिक होने के साथ–साथ लागत भी कम आती है। इसका सबसे अधिक लाभ यह है कि फसलों की बुवाई समय से हो जाती है एवं संरक्षित नमी का सदुपयोग भी हो जाता है। उदाहरण स्वरूप धान की कटाई के उपरान्त खरपतवारनाशी जैसे ग्लाइफोसेट 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करने के 10–15 दिन बाद गेहूँ/मटर/चना/फराश बीन/टमाटर की रोपण करने से लागत में कमी आती है एवं समय से बुवाई करने से उत्पादन में वृद्धि होती है।

फसल अवशेष प्रबंधन

वर्तमान समय में देश के विभिन्न भागों में फसलों के अवशेष मुख्यतः गन्ना, धान एवं गेहूँ के अवशेषों का उचित प्रबंधन एक प्रमुख समस्या है। अधिकांश किसान इन फसलों के अवशेषों को खेत में ही जला देते हैं जिससे न केवल जीवांश एवं पोषक तत्वों की हानि होती है बल्कि वातावरण भी प्रदूषित होता है। खेत में आग लगाने से भूमि में मौजूद अनेक प्रकार के लाभप्रद जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं। यदि इन अवशेषों का उचित उपयोग किया जाये तो न केवल मृदा स्वास्थ्य को सुधार कर फसलोत्पादन में वृद्धि की जा सकती है बल्कि खेती की लागत को कम करके आय में बढोत्तरी की जा सकती है। फसलों के अवशेष का मृदा में उपयोग करने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है एवं उर्वरता बनी रहती है। फसलों के अवशेष का कई प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। शीघ्र सड़ने वाले अवशेषों को फसल कटाई

के पश्चात् जुताई करके सीधे मिट्टी में मिला सकते हैं। देर से सड़ने वाले अवशेषों को नाडेप कम्पोस्टिंग अथवा वर्मी कम्पोस्टिंग के माध्यम से सड़ाकर खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। पलवार के रूप में भी फसल अवशेषों का उपयोग कर सकते हैं। इसमें इन्हें फसलों की पंक्तियों के बीच में मृदा सतह पर फैला देते हैं जिससे नमी संरक्षित रहती है एवं खर–पतवार कम आते हैं। साथ ही मृदा में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि होती है। सब्जियों में खाने योग्य भाग की कटाई के उपरान्त भारी मात्रा में फसल अवशेष बचा रहता है जिसका प्रयोग नाडेप कम्पोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए किया जा सकता है। दलहनी एवं अन्य सब्जियों के फसल अवशेष की बराबर मात्रा को गाय के गोबर के साथ मिलाकर बनायी गयी कम्पोस्ट में पौधों के लिए आवश्यक मुख्य पोषक तत्व संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं। इसका प्रयोग करने से रसायनिक उर्वरकों की मात्रा को कम करने से लागत में कमी आती है एवं उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ने से अधिक आय प्राप्त होती है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

देश के अधिकांश भागों में किसान फसलों में पोषक तत्वों का प्रयोग अपनी सुविधा एवं उर्वरकों की उपलब्धता के अनुसार करते हैं जिसके कारण न केवल आर्थिक हानि होती है बल्कि वातावरणीय प्रदूषण की भी समस्या पैदा होती है। रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग सदैव मृदा परीक्षण के आधार पर की गई संस्तुति के अनुसार संतुलित मात्रा में ही करना चाहिए। इससे न केवल अनावश्यक व्यय में कमी होगी वरन् फसलोत्पादन भी अधिक होगा। रसायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों का प्रयोग यथा सम्भव अवश्य करना चाहिए। इनसे न केवल पोषक तत्व संतुलित मात्रा में पौधों को मिलते हैं बल्कि मृदा का स्वास्थ्य भी सुधरता है तथा उत्पाद की गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

जैव उर्वरकों का प्रयोग

जैव उर्वरक एक प्रकार के जीवाणु सम्वर्ध होते हैं जिसमें वातावरण की नत्रजन के एकत्रीकरण/मृदा में मौजूद फास्फोरस/पोटाश/गंधक /लोहा आदि पोषक तत्वों को घुलनशील रूप में परिवर्तित करने का गुण होता है। नत्रजन स्थिरीकारक जैव उर्वरकों में दाल वर्गीय सब्जियों में राइजोबियम एवं अन्य सब्जियों में एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पीरिलम नत्रजन एकत्रीकरण का कार्य करते हैं। फास्फोरस विलायक जीवाणु (पीएसबी) एवं फास्फेट मोबीलाइजिंग कवक (वैएम) फास्फोरस उपलब्धता बढ़ाने में बहुत प्रभावी हैं। उपयुक्त दशा में दलहनी जैव उर्वरक 40–120 किग्रा/हे. नत्रजन एकत्रीकरण कर सकते हैं। जैव उर्वरक फसल अवशेष को सड़ाने से, रसायनिक कीटनाशियों के हानिकारक प्रभाव को कम करने में, मृदा जनित बीमारियों को कम करने में, पोषक तत्वों के चक्र को पूरा करने में एवं जैव सक्रिय यौगिक जैसे– विटामिन, हार्मोन एवं एन्जाइम पैदा कर पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने में सहायता करते हैं। जैव उर्वरकों के प्रयोग से वातावरण को भी किसी प्रकार की हानि नहीं होती है तथा सब्जियों/फसलों की गुणवत्ता भी अच्छी होती है। इनके उपयोग से रसायनिक उर्वरकों पर होने वाले व्यय में कमी करके आय को बढ़ाया जा सकता है।

वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग

वर्मी कम्पोस्ट तकनीकी में केंचुए द्वारा फसल अवशेष एवं पशुओं के गोबर से कम्पोस्ट बनायी जाती है। वर्मी कम्पोस्ट पोषक तत्वों से भरपूर जैविक खाद एवं मृदा सुधारक है। मृदा में वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से रसायनिक कीटनाशियों आदि के अवशेष के हानिकारक प्रभाव कम हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग करने से रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों के प्रयोग की अपेक्षा लागत घट जाती है एवं उत्पाद गुणवत्ता बढ़ने से आय में वृद्धि होती है।

उचित सिंचाई प्रबंधन

किसी भी फसलोत्पादन पद्धति में सिंचाई जल प्रबंधन की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दिन–प्रति–दिन घटती जा रही सिंचाई–जल की उपलब्धता की स्थिति में इसका समुचित प्रबंधन और भी आवश्यक हो गया है। भा.कृ.अनु.प. –भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी एवं अन्य संस्थानों द्वारा किये गये शोध कार्यों से यह ज्ञात हो चुका है कि टपक विधि द्वारा सिंचाई करने से सामान्य प्रचलित विधि की तुलना में 30–50 प्रतिशत तक पानी की बचत तो होती ही है साथ ही खर–पतवार कम उगते हैं तथा पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता बढ़ जाती है एवं उपज भी 15–40 प्रतिशत अधिक मिलती है।

समेकित खर–पतवार प्रबन्धन

कृषि में खर–पतवार से सबसे अधिक नुकसान सब्जी फसलों को होता है। सब्जी फसलों की बुवाई/रोपण दूर–दूर किया जाता है जिससे बीच वाले स्थान में खर–पतवार उग आते हैं और इनका समय से नियंत्रण न किये जाने की दशा

में स्थान, पोषक तत्वों, जल, प्रकाश आदि के लिए प्रतियोगिता के कारण सब्जी फसलों का उत्पादन 25 से 75 प्रतिशत कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त खर–पतवार विभिन्न प्रकार के कीट व बीमारियों को पैदा करने वाले जीवाणुओं को आश्रय प्रदान कर फसल को हानि पहुँचाते हैं। प्रभावी खर–पतवार नियंत्रण हेतु उचित फसल चक्र, अन्तर्वर्ती फसल, मिश्रित फसल, मृदा सौर्यीकरण, हरी खाद, खर–पतवार नाशी, पलवार एवं सामयिक निराई आदि का समेकित उपयोग करके फसल को होने वाली हानियों से बचाकर लाभ बढ़ाया जा सकता है।

खर–पतवारनाशी में प्री–इमरजेन्स खर–पतवारनाशी का प्रयोग सुरक्षित एवं प्रभावी होता है। खर–पतवारनाशी का छिड़काव बुवाई के बाद 24–72 घण्टे के अन्दर पर्याप्त नमी की उपस्थिति में फ्लैट नाजल की सहायता से करते हैं। इसके छिड़काव से 30–40 दिन तक खर–पतवार नही आते या बहुत कम आते हैं । इस अवधि में सब्जी फसल बड़ी हो जाती है एवं बाद में आने वाले खर–पतवार से प्रतियोगिता में आगे निकल जाती है। कृषकों की आय बढ़ाने में खर–पतवारनाशी का प्रयोग लागत को कम करके उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है।

पलवार के प्रयोग द्वारा खर–पतवार नियंत्रण भी सुरक्षित एवं प्रभावी होता है। पलवार के लिए फसल अवशेष या काले प्लास्टिक के पलवार का प्रयोग किया जाता है। पलवार के प्रयोग से खर–पतवार नहीं आते हैं एवं मृदा में नमी अधिक दिनों तक संरक्षित रहती है जिससे फसल लागत में कमी आती है एवं उत्पादन अधिक प्राप्त होता है।

हानिकारक कीटों एवं बीमारियों का प्रबंधन

कीट एवं बीमारियों के नियंत्रण में रसायनिक कीट/रोगनाशी का प्रयोग अधिक करने से कीटों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है एवं मृदा व मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त फसल लागत भी बढ़ जाती है जिसके परिणाम स्वरूप कृषक की कुल आय घट जाती है। इनके स्थान पर एकीकृत कीट/नाशीजीव प्रबंधन अपनाने से मृदा एवं मानव स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पडता है एवं कुल आय भी बढ़ जाती है।

एकीकृत कीट प्रबंधन

इसके अन्तर्गत अपेक्षाकृत सुरक्षित रसायनिक कीटनाशकों के साथ–साथ प्रतिरोधी किस्मों, बीजोपचार, जैविक कीटनाशकों जैसे– एचएएमपीवी, एसआईएनपीवी, गर्मी की गहरी जुताई, ट्रैप फसलों एवं अन्य उपायों का समेकित प्रयोग किया जाता है। इस विधि में फसल का निरीक्षण बार–बार किया जाता है एवं जरूरत के आधार पर कीटनाशी का कम से कम प्रयोग किया जाता है।

क्रोध एक प्रचंड अग्नि है, जो मनुष्य इस अग्नि को वश में कर सकता है, वह उसको बुझा देगा। जो मनुष्य अग्नि को वश में नहीं कर सकता, वह स्वयं अपने को जला लेगा।

– महात्मा गांधी

सब्जियों में पोषक तत्वों का महत्व

आर. बी. यादव, जगदीश सिंह, शेखर सिंह एवं कमलेश यादव

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

सब्जियों का हमारे दैनिक जीवन में विशेष महत्व है। इनसे हमें ऐसे खनिज तत्व, विटामिन एवं अन्य पोषक पदार्थ मिलते हैं जो शरीर की वृद्धि के साथ साथ उसे निरोग रखने में सहायक होते हैं। सब्जियों सहित सभी पेड़–पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास के लिये कुल 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी भी तत्व की कमी होने पर न केवल पौधों की वृद्धि एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है बल्कि उनकी गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। इन तत्वों को पौधों के लिए आवश्यक मात्रा के आधार पर निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा गया है।

1 **प्रमुख पोषक तत्वः** इस श्रेणी में ऐसे तत्व आते हैं जिनकी पौधों को सबसे अधिक मात्रा में जरूरत होती है। जैसे कार्बन (C), हाइड्रोजन (H), आक्सीजन (O), नत्रजन (N), फास्फोरस (P) एवं पोटैशियम (K)। इनमें से कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन को पौधे हवा तथा पानी से ग्रहण कर लेते हैं। नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम की आपूर्ति मृदा–भंडार एवं उर्वरक/खादों से होती है।

2 **द्वितीयक पोषक तत्वः** इस श्रेणी में कैल्शियम (Ca), मैग्नीशियम (Mg) तथा सल्फर (S) आते हैं। यह तत्व भी प्रमुख तत्वों से कम महत्वपूर्ण नहीं होते हैं। परन्तु पौधों को इनकी अपेक्षाकृत कम मात्रा में आवश्यकता होती है, इसीलिए इन्हें गौण अथवा द्वितीयक पोषक तत्व कहते हैं।

3 **सूक्ष्म पोषक तत्वः** इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले तत्वों की पौधों को बहुत कम मात्रा में जरूरत होती है। इसीलिए इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं। ये तत्व हैं लोहा (Fe), जस्ता (Zn), ताँबा (Cu), मैंग्नीज (Mn), बोरान (B), मालिब्डेनम (Mo), निकिल (Ni) एवं क्लोरीन (Cl)।

पौधों में पोषक तत्वों के प्रमुख कार्य एवं कमी में लक्षणः पौधों में इन तत्वों के मुख्य कार्यों तथा कमी के लक्षणों का वर्णन निम्नवत् है।

नत्रजनः यह पौधों में प्रोटीन का अभिन्न अंग है तथा क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक है। यह पौधों की वानस्पतिक

वृद्धि एवं दानों के बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नत्रजन की कमी होने पर पौधे के विकास की गति धीमी हो जाती है तथा पुरानी पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है। अधिक कमी की दशा में पूरा पौधा पीला पड़ जाता है।

इसकी कमी को दूर करने के लिए मृदा में गोबर की खाद, हरी खाद व नाइट्रोजन युक्त उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में नत्रजन की कमी को दूर करने के लिए यूरिया की टाप ड्रेसिंग अथवा 1 प्रतिशत यूरिया के घोल का पर्णीय छिड़काव किया जा सकता है।

फास्फोरसः यह पौधों की जड़ों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक होता है। कोशिका विभाजन, न्यूक्लियिक एसिड, फास्फोलिपिड व फाइटिन के निर्माण में सहायता करता है। स्वस्थ बीज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसकी कमी होने पर जड़ों की वृद्धि एवं विकास रुक जाता है, पौधों की बढ़वार रुक जाती है तथा डंठल कमजोर हो जाते हैं। फास्फोरस की कमी के लक्षण सबसे पहले पौधे की पुरानी पत्तियों पर बैगनी रंग के धब्बे के दिखाई देते हैं। अधिक कमी होने पर फल व बीज नहीं बनते हैं। आलू

में कमी से पत्तियाँ प्याले के आकार की हो जाती हैं।

फास्फोरस की कमी की पूर्ति के लिए मृदा में फास्फोरसधारी उर्वरकों जैसे डीएपी अथवा एसएसपी का प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 2 प्रतिशत डीएपी के घोल का पर्णीय छिड़काव कर सकते हैं।

पोटैशियमः यह पौधों में रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। फसल में कीट व रोग प्रतिरोधकता बढाता है।

पौधों के तने को मजबूती प्रदान कर गिरने से बचाता है। स्टार्च व शक्कर के संचरण में मदद करता है। फसलों की गुणवत्ता एवं स्वाद में वृद्धि करता है।

पोटैशियम की कमी होने पर तना कमजोर हो जाता है। इसके लक्षण पुरानी पत्तियों पर किनारे से झुलसन के रूप में दिखाई देते हैं। मक्का के भुट्टे छोटे, नुकीले तथा किनारे पर दाने कम लगते हैं। टमाटर में इसकी कमी होने पर फल समान रूप से नहीं पकते । इसे ब्लाची राइपेनिंग कहते हैं।

पोटैशियम की कमी दूर करने के लिए मृदा में जैविक खादों के साथ–साथ म्यूरिएट आफ पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 1 प्रतिशत म्यूरिएट आफ पोटाश के घोल का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

कैल्शियमः यह तत्व पौधों में गुणसूत्र का संरचनात्मक अवयव है तथा कोशिका विभाजन में सहायक होता है। पौधे के शीर्ष भाग की वृद्धि के लिए आवश्यक है।

कैल्शियम की कमी होने पर पौधे का शीर्ष भाग प्रभावित होता है। अग्रिम कलिका सूख जाती है। पुष्प गिरने लगते हैं। जडों का विकास कम होता है। टमाटर व मिर्च में इसकी कमी होने पर फल का निचला सिरा सड़ने लगता है। इसे ब्लासम एंड राट कहते हैं।

कैल्शियम की कमी से बचाव के लिए खेत में जिप्सम अथवा कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट का प्रयोग कर सकते हैं। खड़ी फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत कैल्शियम नाइट्रेट या कैल्शियम क्लोराइड के घोल का पर्णीय छिड़काव कर सकते हैं।

मैग्नीशियमः यह क्लोरोफिल, क्रोमोसोम, पालीराइबोसोम का प्रमुख घटक है। पौधों के अन्दर कार्बोहाइड्रेट के संचालन तथा प्रोटीन, विटामिन एवं वसा के निर्माण में सहायक होता है।

इसकी कमी होने पर पत्तियाँ आकार में छोटी तथा ऊपर की ओर मुड़ी हुई दिखाई देती हैं। पुरानी पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग पीला हो जाता है।

मैग्नीशियम की कमी की दशा मे भूमि में 25–50 किग्रा./हे. की दर से मैग्नीशियम सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0 5 प्रतिशत मैग्नीशियम सल्फेट + 1 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव किया जा सकता है।

गन्धक: यह अमीनों अम्ल, प्रोटीन (सिस्टीन व मेथिओनिन), वसा एवं विटामिन्स के निर्माण में सहायक है। यह सरसों, प्याज तथा लहसुन की फसल के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

गंधक की कमी होने पर नई पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगता है। पौधे का विकास धीमा पड़ जाता है।

खेत में गंधक की कमी की दशा में 25–50 किग्रा./ हे. की दर से जिप्सम का प्रयोग करना चाहिए। फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.5 प्रतिशत जिप्सम के घोल का छिड़काव कर सकते हैं।

लोहा: यह पौधों में क्लोरोफिल के निर्माण के लिये आवश्यक है। प्रोटीन संश्लेषण के लिए जरूरी है। यह पौधे की कोशिकाओं में विभिन्न आक्सीकरण–अवकरण क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। श्वसन क्रिया में आक्सीजन का वाहक है।

पौधों में लोहा की कमी होने पर नई पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और इनकी शिरायें हरी रहती हैं। अधिक कमी होने पर पत्ती का रंग सफेद हो जाता है।

इसकी कमी की दशा में मृदा परीक्षण के आधार पर खेत में 50–100 किग्रा./हे. की दर से फेरस सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में कमी के लक्षणों की पुष्टि होने पर 1 प्रतिशत फेरस सल्फेट + 0.5 प्रतिशत चूना के घोल का छिड़काव कर सकते हैं।

जस्ता: यह कैरोटीन, हार्मोन्स व प्रोटीन के संश्लेषण में सहायक है। एन्जाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता है। क्लोरोफिल के निर्माण में भी उत्प्रेरक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसकी कमी से पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। दो गाठों के बीच की दूरी कम हो जाने से पत्तियाँ रोसेट का आकार ले लेती हैं। फलों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियाँ की नसों में नेक्रोसिस व नसों के बीच में पीली धारियाँ दिखाई पड़ती हैं।

जस्ता की कमी होने पर मृदा में 20–25 किग्रा./हे. की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग करते हैं। पत्तियों पर छिड़काव हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0 25 प्रतिशत चूना के घोल का प्रयोग किया जा सकता है।

मैंग्नीजः यह क्लोरोप्लास्ट की संरचना में सहायक होता है। कार्बोहाइड्रेट व नाइट्रेट के स्वांगीकरण में सहायक होता है।

पौधों में आक्सीकरण–अवकरण क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में सहायक है।

इसकी कमी होने पर नई पत्तियों पर मृत ऊतकों के धब्बे दिखाई देते हैं। मटर में इसकी कमी होने पर फलियों पर मार्शी स्पाट नामक बीमारी लग जाती है।

इसकी कमी को दूर करने के लिए मृदा में 20–25 किग्रा./हे. की दर से मैंग्नीज सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में कमी के लक्षणों की पुष्टि होने पर 0 5 प्रतिशत मैंग्नीज सल्फेट + 0 25 प्रतिशत चूना के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

ताँबाः यह पौधों में आक्सीकरण–अवकरण क्रियाओं को नियंत्रित करने के साथ ही इंडोल एसिटिक एसिड नामक हार्मोन के संश्लेषण में सहायता प्रदान करता है। अनेक एन्जाइमों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है तथा कवक जनित रोगों के नियंत्रण में सहायक है। यह फूलों और फलियों के निर्माण में भी सहायक होता है।

इसकी कमी होने पर पत्तियों की चमक गायब हो जाती है। पौधे का शीर्ष भाग सूखने लगता है। देखने पर ऐसा लगता है मानों पौधे में पानी की कमी हो गई हो।

ताँबा की कमी को दूर करने के लिए भूमि में 10–50 किग्रा./हे. की दर से कॉपर सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। पौधों पर छिड़काव के लिए 0.1 प्रतिशत कॉपर सल्फेट + 0.05 प्रतिशत चूना के घोल का प्रयोग किया जा सकता है।

मालिब्डेनमः यह पौधों में नाइट्रेट रिडक्टेज एवं नाइट्रोजिनेज एन्जाइम का मुख्य भाग है। दलहनी फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण, नाइट्रेट एसिमिलेशन एवं कार्बोहाइड्रेट मेटाबोलिज्म क्रियाओं में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त यह विटामिनों व शर्करा के संश्लेषण में सहायक है।

इसकी कमी के लक्षण सरसों वर्गीय पौधों व दलहनी फसलों में जल्दी दिखाई देता है। पत्तियों का रंग हरा पीला या पीला हो जाता है तथा इन पर नारंगी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। गोभी में इसकी कमी से व्हेप टेल नामक बीमारी हो जाती है जिसमें पत्तियों का विकास ठीक प्रकार नहीं होता।

मालिब्डेनम की कमी दूर करने के लिए मृदा में 1 किग्रा. /हे. की दर से अमोनियम या सोडियम मालिब्डेट का प्रयोग किया जाता है। पर्णीय छिड़काव के लिए 0.05 प्रतिशत अमोनियम या सोडियम मालिब्डेट के घोल का प्रयोग करते हैं।

बोरानः यह कोशिका विभाजन एवं शीर्ष भाग की वृद्धि के लिए आवश्यक होता है। पौधों की परागण एवं प्रजनन क्रियाओं में सहायक है। दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथियों के विकास में सहायता करता है। यह पौधों में कैल्शियम व मैग्नीशियम के अनुपात को नियंत्रित करता है तथा डीएनए, आरएनए, एटीपी, पेक्टिन व प्रोटीन के संश्लेषण में सहायक है।

बोरान की कमी होने पर पत्तियाँ मोटी हो जाती हैं और ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। पौधे की ऊपरी बढ़वार रुक जाती है। फूल गोभी एवं ब्रोकोली में बोरान की कमी से हालोहार्ट नामक बीमारी हो जाती है जिसमें तना खोखला हो जाता है। चुकन्दर में इसकी कमी से हार्ट राट बीमारी लग जाती है।

इसकी कमी को दूर करने के लिए मृदा में 10–20 किग्रा. /हे. की दर से बोरैक्स का प्रयाग किया जाता है। पत्तियाँ पर छिड़काव के लिए 0.2–0.5 प्रतिशत बोरैक्स के घोल का उपयोग करते हैं।

क्लोरीनः यह क्लोरोफिल के निर्माण में सहायक है तथा प्रकाश संश्लेषण के लिये आवश्यक है। पौधों की पत्तियों में पानी रोकने की क्षमता बढ़ाने में सहायक है।

सामान्यतया पौधों में क्लोरीन की कमी नहीं पायी जाती है। इसकी कमी होने पर पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। पौधा हरा भरा नही रहता है।

निकिलः यह बीज के समुचित जमाव के लिए आवश्यक है। नत्रजन के मेटाबोलिज्म में सहायक है। पौधों में इसकी कमी के लक्षणों की अभी अधिक जानकारी नहीं है।

दलहनी सब्जियों का पोषण सुरक्षा में योगदान

राकेश कुमार दुबे, ज्योति देवी, विकास सिंह, मनीष कुमार सिंह, पी.एम. सिंह एवं बी. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

खाद्य सुरक्षा का अर्थ, देश के हर नागरिक तक भोजन उपलब्धता को समझा जाता है जबकि खाद्य सुरक्षा केवल देश के नागरिकों तक भोजन पहुँचाना नही वरन भोजन द्वारा उचित मात्रा में पोषक तत्वों की उपलब्धता भी है। खाद्य सुरक्षा की अवधारणा व्यक्ति के मूलभूत अधिकार को परिभाषित करती है। अपने जीवन के लिए हर किसी को निर्धारित पोषक तत्वों से परिपूर्ण भोजन की जरूरत होती है। मानव अधिकारों की वैश्विक पोषण (1948) का अनुच्छेद 25 (1) कहता है कि हर व्यक्ति को अपने और अपने परिवार का बेहतर जीवन–स्तर बनाने एवं स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने का अधिकार है जिसमें भोजन, कपड़े और आवास की सुरक्षा शामिल है।

हमारे देश ने हरित क्रांति के उपरान्त देश में खाद्यान्न उत्पादन की दशा में अत्यन्त प्रशंसनीय कीर्तिमान स्थापित किया है, लेकिन खाद्य सुरक्षा के साथ पोषण सुरक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। बढ़ती जनसंख्या और जलवायु में हो रहे अप्रत्याशित बदलाव को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हम खाद्यान्न उत्पादन में उन फसलों के समावेश पर विशेष बल दें जो पोषण सुरक्षा एवं विशेषकर सूक्ष्म तत्व पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ऐसे में सब्जी फसलें केवल एक कारगर विकल्प ही नही बनती बल्कि प्रति इकाई क्षेत्र में खाद्यान्न फसलों की तुलना में कई गुना अधिक उपज देने एवं अल्पावधि में तैयार होने का विशेष गुण के कारण पूरी सस्य प्रणाली में एक महत्वपूर्ण घटक साबित होती हैं। सब्जियों में दलहनी सब्जियों का विशेष महत्व है क्योंकि ये सब्जियाँ जहाँ एक तरफ प्रोटीन की प्रमुख स्रोत है वहीं विभिन्न खनिजों (लौह तत्व, आयोडिन, जिंक, कैल्शियम), विटामिन्स (नियासिन, विटामिन ए, एस्कार्बिक अम्ल, इनोसिटाल) एवं एन्टीआक्सीडेन्ट के साथ स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण अनेक पौध रसायनों में भी काफी धनी हैं। इनकी ऊर्जा मूल्य कम होती है साथ ही वसा की मात्रा भी कम पाई जाती है और जटिल कार्बोहाइड्रेटस की मात्रा अधिक होती है। दलहनी सब्जियाँ रेशे की भी अच्छी स्रोत है तथा शरीर में कोलेस्ट्रेराल के स्तर को कम करती हैं। दलहनी सब्जियों का शाकाहारी व्यक्तियों के लिए विशेष महत्व है क्योंकि उनके लिए दलहनी सब्जियाँ सस्ते प्रोटीन का एक उपयुक्त विकल्प हैं। इसके अतिरिक्त दलहनी सब्जियों से प्राप्त पादप प्रोटीन जहाँ मांस की तुलना में सस्ता है वहीं इसमें मांस जन्य प्रोटीन की तुलना में 10 प्रतिशत वसा की मात्रा भी कम होती है। सामान्यतया दलहनी सब्जियों को गरीब लोगों के लिए मांस के विकल्प की संज्ञा दी जाती है। हमारे देश में विगत वर्षों में दलहनी सब्जियों के क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में उत्साहजनक वृद्धि हुई है। दलहनी सब्जियों के अन्तर्गत ग्वार, सब्जी मटर, फराशबीन, लोबिया, सब्जी अरहर, सब्जी चना, बाकला, पंखिया सेम, जैकबीन, तलवार बीन, लीमा बीन, रनर बीन, ट्री बीन, सांगरी एवं सब्जी सोयाबीन आदि प्रमुख हैं। प्रमुख दलहनी सब्जियों में उपलब्ध पोषक तत्वों का विवरण निम्नलिखित है:

सब्जी मटर

इसके ताजे हरे दाने पोषण की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। इसमें पर्याप्त मात्रा में सुपाच्य प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स एवं विटामिन्स पाये जाते हैं। मटर की हरी फलियों के पोषक मूल्य को निम्न सारिणी में दिया गया है।

मटर के हरे दाने में लाइसिन एवं ट्रिप्टोफेन एमीनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है जबकि मेथियोनीन एवं सिस्टीन की मात्रा अपेक्षाकृत कम पाई जाती है।

सारिणी 1: मटर की ताजी फलियों का पोषक मूल्य (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	मात्रा	पोषक तत्व	मात्रा
नमी	72.9 ग्राम	थायमिन	0.29 मिग्रा.
प्रोटीन	7.2 ग्राम	राइबोफ्लेविन	0.8 मिग्रा.
वसा	0.1 ग्राम	विटामिन सी	9.0 मिग्रा.
खनिज	0.8 ग्राम	कोलीन	20.0 मिग्रा.
क्रूड फाइबर	4.0 ग्राम	मैग्नीशियम	34.0 मिग्रा.
कार्बोहाइड्रेट्स	15.9 ग्राम	सोडियम	7.8 मिग्रा.
ऊर्जा	93.0 कि. कैलोरी	पोटैशियम	79.0 मिग्रा.
कैल्शियम	20.0 मिग्रा.	कॉपर	0.23 मिग्रा.
फास्फोरस	139 मिग्रा.	सल्फर	95.0 मिग्रा.
आयरन	1.5 मिग्रा.	क्लोरिन	20.0 मिग्रा.
कैरोटीन	83.0 माइक्रो ग्राम		

स्रोत : गोपालन एवं सहयोगी (2004)

स्नो पी

सामान्य सब्जी मटर से भिन्न स्नो पी की सम्पूर्ण फलियाँ खाने के काम में लाई जाती है। स्नो पी की फलियाँ बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था में फूलकर चिपटी हो जाती है और इसमें बड़ी पार्चमेन्ट लेयर नही बनती है तथा दाने अविकसित रह जाते है। इसका ऊर्जा मूल्य कम होने एवं विटामिन सी, आयरन, खाद्य रेशा तथा पोटैशियम की अधिक मात्रा होने के कारण इसका बहुत अधिक पोषकीय महत्व है।

लोबिया

इसकी फलियाँ प्रोटीन, खनिज एवं विटामिन्स की अच्छी स्रोत हैं। इसके प्रति 100 ग्राम खाने योग्य फलियों में पोषक तत्व निम्नवत है

लोबिया के बीज में प्रोटीन की मात्रा 19–30 प्रतिशत होती है। लोबिया के प्रोटीन में मुख्यतया ग्लोबुलिन एवं थोड़ी मात्रा में एल्बुमिन पाया जाता है। कम्बोडिया में लोबिया को पित्तनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है और इसे यकृत

सारिणी 2: स्नो पी का पोषण मूल्य (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	मात्रा	पोषक तत्व	मात्रा
नमी	83.0 ग्राम	आयरन	0.7 मिग्रा.
ऊर्जा	53.0 कि. कैलोरी	पोटैशियम	170 मिग्रा.
प्रोटीन	3.4 ग्राम	विटामिन ए	680.0 अ. इकाई
वसा	0.2 ग्राम	थायमिन	0.28 मिग्रा.
कार्बोहाइड्रेट्स	12.0 ग्राम	राइबोफ्लेविन	0.12 मिग्रा.
कैल्शियम	62.0 मिग्रा.	एस्कार्बिक अम्ल	21.0 मिग्रा.
फास्फोरस	90.0 मिग्रा.		

स्रोत : पाण्डेय एवं सिंह (2009)

पीड़ा एवं पीलिया में दवा के रूप में दिया जाता है। अफ्रीका में इसकी फलियों एवं बीज के उपयोग के अतिरिक्त इसकी पत्तियों को सब्जी के रूप में प्रयोग करते हैं। लोबिया की पत्तियों में भी आयरन एवं कैरोटिन की प्रचुर मात्रा पाई जाती है।

सारिणी 3 : लोबिया की फलियों का पोषक मूल्य (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	मात्रा	पोषक तत्व	मात्रा
नमी	85.3 ग्राम	कैल्शियम	72.0 मिग्रा.
प्रोटीन	3.5 ग्राम	फास्फोरस	59.0 मिग्रा.
वसा	0.2 ग्राम	आयरन	2.5 मिग्रा.
खनिज	0.9 ग्राम	कैरोटिन	564.0 माइक्रोग्राम
क्रूड फाइबर	2.0 ग्राम	थायमिन	0.07 मिग्रा.
कार्बोहाइड्रेट्स	8.1 ग्राम	विटामिन सी	14.0 मिग्रा.
ऊर्जा	48.0 कि. कैलोरी		

स्रोतः गोपालन एवं सहयोगी (2004)

यार्ड लॉंग बीन

यार्ड लॉंग बीन की मुलायम फलियों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियों में 89.0 ग्राम नमी, 3.0 ग्राम प्रोटीन, 0.5 ग्राम वसा, 1.3 ग्राम रेशा, 5.2 ग्राम कार्बोहाइड्रेट्स, 0.6 ग्राम राख, 64.0 मिग्रा.कैल्शियम, 54.0 मिग्रा.फास्फोरस, 1.3 मिग्रा.आयरन, 167.0 मिग्रा.विटामिन ए एवं 125 किलो जूल्स ऊर्जा मूल्य प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में पाया जाता है।

मोठ बीन

मोठ के फ्राइड दाल को दालमोठ (नमकीन) के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके दाने में नमी 10.8 ग्राम, प्रोटीन 23.6 ग्राम, वसा 1.1 ग्राम, रेशा 4.5 ग्राम, अन्य कार्बोहाइड्रेट्स 56.5 ग्राम, खनिज 3.5 ग्राम, ऊर्जा 330.0 कि. कैलोरी, कैल्शियम 202.0 मिग्रा., फास्फोरस 230.0 मिग्रा., आयरन 9.5 मिग्रा., मैग्निशियम 225.0 मिग्रा., सोडियम 29.5 मिग्रा.एवं विटामिन सी 2.0 मिग्रा.प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में पाया जाता है।

फराश बीन

दलहनी सब्जी होने के कारण यह प्रोटीन की अच्छी स्रोत है। प्रोटीन के अतिरिक्त इसमें प्रति 100 ग्राम फली के खाने योग्य भाग में 187 मिग्रा. बीटा कैरोटिन तथा 9.0 मिग्रा. विटामिन सी पाई जाती है। नमी 51.4 ग्राम, प्रोटीन 17 ग्राम, वसा 0.1 ग्राम, खनिज 0.8 ग्राम, क्रूड फाइबर 1.8 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 4.5 ग्राम, ऊर्जा 26 कि. कैलोरी, कैल्शियम 50.0 मिग्रा., फास्फोरस 28.0 मिग्रा., आयरन 0.6 मिग्रा., विटामिन सी 9.0 मिग्रा., मैग्निशियम 17.0 मिग्रा., सोडियम 55.4 मिग्रा., पोटैशियम 74.0 मिग्रा., सल्फर 40 मिग्रा. एवं क्लोरिन 31.0 मिग्रा.पाया जाता है।

रनर बीन

रनर बीन को इसकी अपरिपक्व फलियों के लिए उगाया जाता है। फलियों के अतिरिक्त ताजे हरे रंग के दानों को सब्जी एवं सूखे दानों को दाल के रूप में प्रयोग किया जाता है। सूखे बीज को प्रयोग करने से पहले इसे अच्छी तरह से उबाल देना चाहिए क्योंकि इसके बीज में लेक्टिन फाइटोहीमोग्लेटिनिन जैसे हानिकारक तत्व पाये जाते है। रनर बीन की फलियों में प्रोटीन के अतिरिक्त कैल्शियम एवं आयरन की प्रचुर मात्रा पायी जाती है इसमें विटामिन सी की भी काफी मात्रा में पाई जाती है। इसमें नमी 58.3 ग्राम, वसा 1.0 ग्राम, प्रोटीन 7.4 ग्राम, खनिज 1.6 ग्राम, क्रूड फाइबर 1.9 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 29.8 ग्राम, ऊर्जा 158.0 कि. कैलोरी, कैल्शियम 50.0 मिग्रा., फास्फोरस 160.0 मिग्रा., आयरन 2.6 मिग्रा., कैरोटिन 34.0 माइक्रोग्राम, थायमिन 0.34 मिग्रा.एवं विटामिन सी 27.0 मिग्रा.प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में पाया जाता है।

लीमा बीन

लीमा बीन के हरे दानों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियों को सब्जी के लिए प्रयोग नहीं किया जाता है। हरे ताजे दानों को उबालकर सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके बीज पत्र एवं भ्रूण की तुलना में बीज कवच में क्रूड प्रोटीन एवं कैल्शियम की मात्रा अधिक

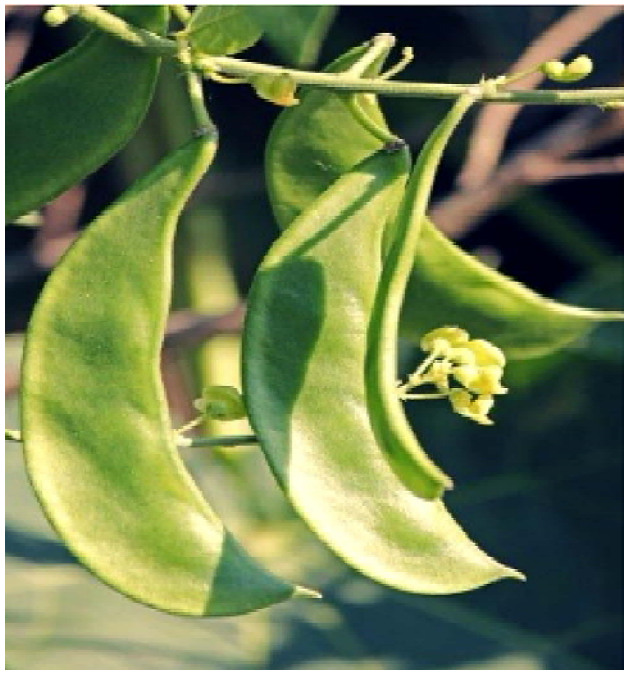

होती है। लीमा बीन में ग्लोबुलिन मुख्य प्रोटीन होता है जो मुख्य रूप से अल्फा–ग्लोबुलिन एवं बीटा ग्लोबुलिन के रूप में पाया जाता है। अन्य बीन्स की भाँति यह प्रोटीन की मुख्य स्रोत होती है। इसमें मेथियोनिन को छोड़कर लगभग सभी अमीनो अम्ल पाये जाते हैं।

ग्वार

ग्वार को मुख्य रूप से इसकी मुलायम फलियों के लिए उगाया जाता है जिसे सब्जी एवं भूर्ता के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी हरी फलियाँ प्रोटीन, खनिज एवं विटामिन्स की अच्छी स्रोत है। इसमें नमी 81.0 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 10. 8 ग्राम, प्रोटीन 3.2 ग्राम, वसा 0.4 ग्राम, खनिज 1.4 ग्राम, रेशा 3.2 ग्राम, कैल्शियम 130.0 मिग्रा., फास्फोरस 50.0 मिग्रा., आयरन 1.08 मिग्रा., ऊर्जा 16.0 कि. कैलोरी, कैरोटीन 198.0 मिग्रा., थायमिन 0.09 मिग्रा., विटामिन सी 49.0 मिग्रा. एवं फोलिक अम्ल 50.0 मिग्रा.प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में पाया जाता है।

बाकला

बाकला को मुलायम फलियों के लिए उगाया जाता है, जिसका सब्जी के रूप प्रयोग किया जाता है। बाकला में अन्य दलहनी सब्जियों की अपेक्षाकृत अधिक प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट्स पाया जाता है। इसकी फलियों में प्रति 100 ग्राम खाने वाले भाग में नमी 85.4 ग्राम, प्रोटीन 4.5 ग्राम, वसा 0.1 ग्राम, रेशा 2.0 ग्राम, अन्य कार्बोहाइड्रेट्स 7.2 ग्राम, खनिज 0.8 ग्राम, कैल्शियम 50.0 मिग्रा., फास्फोरस 74.0 मिग्रा., मैग्निशियम 33.0 मिग्रा., सोडियम 43.4 मिग्रा.,पोटैशियम

39.0 मिग्रा., विटामिन सी 12 मिग्रा., आक्जेलिक अम्ल 1.0 मिग्रा., आयोडिन 9.0 माइक्रोग्राम एवं आर्सनिक अम्ल 0.02 मिग्रा.पाया जाता है। इसके प्रोटीन का जैविक मूल्य कम होता है और इसमें मेथियोनिन की मात्रा कम होती है।

सब्जी चना

चना के हरे दानों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके ताजे हरे दाने में अधिक मात्रा में कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन एवं विटामिन सी होता है। प्रति 100 ग्राम खाने वाले भाग में नमी 85.3 ग्राम, प्रोटीन 43.8 ग्राम, राख 4.5 ग्राम, क्रूड फाइबर 13.2 ग्राम, सम्पूर्ण शर्करा 58.0 ग्राम,

कैल्शियम 261.9 मिग्रा., फास्फोरस 448.1 मिग्रा., आयरन 67.8 मिग्रा., विटामिन सी 371.8 मिग्रा. एवं बीटा कैरोटिन 2.0 मिग्रा. पाया जाता है।

सेम

सेम एक दलहनी सब्जी है, जिसकी मुलायम ताजी हरी फलियों को सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है। फलियों के आकार–प्रकार, रंग आदि में बहुत अधिक विभिन्नता पाई जाती है जिसको क्षेत्र विशेष में पसंद किया जाता है। उत्तरी भारत में हरी एवं गूदेदार फलियों की माँग रहती है। इसकी ताजी फलियाँ प्रोटीन एवं कैल्शियम की अच्छी स्रोत हैं। इसकी फलियों के प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में नमी 86.1 ग्राम, प्रोटीन 3.8 ग्राम, वसा 0.7 ग्राम, खनिज 0.9 ग्राम,

रेशा 1.8 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 6.7 ग्राम, कैरोटिन 187.0 मिग्रा., थायमिन 0.10 मिग्रा., राइबोफ्लेविन 0.06 मिग्रा., नियासिन 0.7 मिग्रा. एवं विटामिन सी 9.0 मिग्रा. पाया जाता है। इसके सूखे दानों को दाल की तरह प्रयोग किया जाता है। दलहनी फसल होने के कारण यह पशुओं के लिए अच्छे चारे का भी काम देती है।

पंखिया सेम (बिंग्ड बीन)

पंखिया सेम एक बहुपयोगी दलहनी सब्जी फसल है। इसकी फूल, पत्ती, फली एवं कंदील जड़ें खायी जाती है। इसके फलियों को कच्चे, सलाद, सूप एवं उबालकर सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियाँ प्रोटीन, विटामिन्स एवं खनिज तत्वों की प्रमुख स्रोत है। पंखियां सेम के तेल में बहुत अधिक टोकोफेराल होता है जो एन्टीआक्सीडेन्ट का गुण रखता है। इसकी कंदिल जड़ों को उबालकर, पका कर एवं भूनकर प्रयोग किया जाता है। कंदिल जड़ों में बहुत

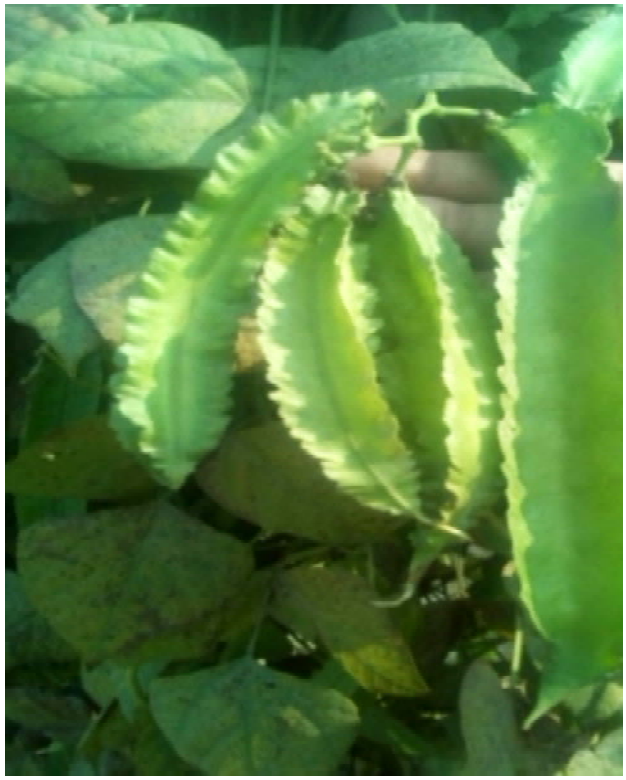

अधिक प्रोटीन (8–20 प्रतिशत) शुष्क भार के आधार पर होती है। प्रोटीन के अतिरिक्त इसके कंद में कार्बोहाइड्रेट्स की पर्याप्त मात्रा होती है जिससे पर्याप्त ऊर्जा मिलती है। इसकी पत्तियों में अन्य खनिज तत्व एवं बीटा कैरोटिन की भी पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। इसकी पत्तियों के प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में 20,000 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई विटामिन ए होती है। पंखिया सेम की हरी फली का पोषक मूल्य प्रति 100 खाने योग्य भाग में नमी 76.93 ग्राम, वसा 0.1–3.4 ग्राम, क्रूड प्रोटीन 1.9–3.0 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 7.9 ग्राम, वसा 0.9–2.6 ग्राम, ऐश 0.4–1.9 मिग्रा., पोटैशियम 205 मिग्रा., आयरन 0.2–12.0 मिग्रा., विटामिन ए 340–395 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई, विटामिन बी 0.06–0.24 मिग्रा., नियासिन 5.0–12.0 मिग्रा. एवं विटामिन सी 21–37 मिग्रा. पाया जाता है।

किवांच

किवांच एक दलहनी सब्जी है, जिसकी मुलायम फलियों में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, रेशा, खनिज त्तव एवं विटामिन्स पाई जाती है। फलियों को सब्जी एवं भूर्ता बनाने में प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियाँ, बीजों एवं जड़ का बहुत अधिक औषधीय महत्व है। किवांच का मूत्रल गुण होने के कारण यह वृक्क सम्बन्धी परेशानियाँ एवं ड्राप्सी को दूर करने में बहुत अधिक उपयोगी हैं।

किवांच के बीज का पोषक मूल्य प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में नमी 5.3 ग्राम, प्रोटीन 28.2 ग्राम, वसा 7.0 ग्राम, खनिज 1.7 ग्राम, रेशा 2.2 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट्स 55.6 ग्राम, ऊर्जा 398.0 कि. कैलोरी, कैल्शियम 188.0 मिग्रा. एवं फास्फोरस 211.0 मिग्रा. पाया जाता है।

तलवार बीन

तलवार बीन की हरी फलियों को सब्जी के रूप में प्रयोग

किया जाता है। इसकी फलियों के पोषक मूल्य प्रति 100 ग्राम खाने वाले भाग में नमी 87.2 ग्राम, प्रोटीन 2.7 ग्राम, वसा 0.2 ग्राम, रेशा 1.5 ग्राम, अन्य कार्बोहाइड्रेट्स 7.8 ग्राम, खनिज 0.6 ग्राम, कैल्शियम 60.0 मिग्रा., फास्फोरस 40.0 मिग्रा., आयरन 2.0 मिग्रा., ऊर्जा 44.0 कि.कैलोरी एवं विटामिन सी 12.0 मिग्रा.पाया जाता है। तलवार बीन के बीज में सैपोटाक्सिन होने के कारण उल्टी एवं चक्कर की समस्या आती है जिसे गर्म पानी में उबालकर दूर किया जा सकता है।

सब्जी अरहर

अरहर की फलियों से मुलायम हरे दाने निकालकर स्वादिष्ट सब्जी बनाई जाती है। फलियों की उस अवस्था में तुड़ाई करते हैं जब बीज कार्यिकी परिपक्वता प्राप्त कर लिए होते है। लेकिन उनका रंग हरा होता है। सब्जी अरहर की

फलियों को मटर के विकल्प के रूप में किया जा सकता है। अरहर की फलियों में प्रोटीन, शर्करा एवं वसा की मात्रा अधिक होती है। सब्जी अरहर की फली का पोषण मूल्य प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में दाने का प्रतिशत 53.0, नमी 72.1 ग्राम, प्रोटीन 7.2 ग्राम, कार्बोहाइड्रटेस 15.9 ग्राम, क्रूड फाइबर 4.0 ग्राम, वसा 0.2 ग्राम, कैल्शियम 20.0 मिग्रा., मैग्नीशियम 34.0 मिग्रा., आयरन 1.5 मिग्रा., कैरोटिन 83.0 मिग्रा., नियासिन 0.8 मिग्रा.एवं एस्कार्बिक अम्ल 9.0 मिग्रा. पाया जाता है।

सब्जी सोयबीन

परम्परागत सोयबीन के विभिन्न उत्पादों की तुलना में हरी सब्जी काफी स्वादिष्ट होती है। सोयबीन की हरे रंग के बीज पत्र वाली किस्मों को मुख्य रूप से सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है। सब्जी सोयबीन की हरी फली में पोषण मूल्य प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में प्रोटीन–40.8 ग्राम, टोटल लिपिड 17.9 ग्राम, क्रूड फाइबर 6.0 ग्राम, ऐश 5.3 ग्राम, कैल्शियम 245 मिग्रा., आयरन 11.9 मि.ग्रा, फास्फोरस 49.6 मिग्रा., विटामिन सी 84.9 मिग्रा. एवं विटामिन ए 1132 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई पाया जाता है। सब्जी सोयबीन के अत्यधिक पौष्टिक महत्व के साथ औषधीय महत्व भी अधिक है।

ट्री बीन

ट्री बीन में 10–15 के गुच्छे में फलियाँ लगती है और प्रत्येक फली की लम्बाई 25–40 सेमी. तथा मोटाई 2–4 सेमी. होती है। फलियाँ प्रारम्भिक अवस्था में मुलायम गहरे हरे रंग की होती है। इसकी मुलायम फलियों को सब्जी के रूप में उत्तरपूर्वी पर्वतीय क्षेत्र के राज्यों में विशेषकर मणिपुर एवं मिजोरम में बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियों में 13–18 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन के साथ विटामिन सी एवं खनिज तत्व जैसे फास्फोरस एवं आयरन भरपूर मात्रा में पाया जाता है। इसकी फलियों का पोषक मूल्य प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में नमी 83.3 ग्राम, विटामिन सी 10.2 ग्राम, क्रुड प्रोटीन 0.25 ग्राम, क्रूड फाइबर 10.8 ग्राम, कुल प्रोटीन 18.25 ग्राम, कुल राख 5.10 ग्राम एवं आयरन 46.6 ग्राम पाया जाता है।

सांगरी

सांगरी की हरी फलियों को सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। इसकी हरी फलियाँ में क्रूड प्रोटीन (18 प्रतिशत), कार्बोहाइड्रेटस (56 प्रतिशत) एवं खनिज लवण जैसे फास्फोरस (0.04 प्रतिशत), कैल्शियम (0.4 प्रतिशत) एवं

आयरन में काफी धनी होती है। इसके पौधे को एन्टीडोट के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसकी पकी फलियाँ भी खाई जाती है। पकी फलियों में 9–14 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन एवं 6–16 प्रतिशत शर्करा पाई जाती है।

इसकी सूखी फलियों को पीसकर बिस्कुट, कूकी आदि बेकरी सामग्री तैयार किये जाते हैं। इसके फूलों से टानिक,

रक्त की शुद्ध करने वाली दवायें एवं चर्म रोगों में प्रयोग किया जाता है। इसकी फलियाँ बाजार में 30–40 रूपये प्रति किग्रा. बिकती हैं।

अंत में निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि दलहनी सब्जियाँ जहाँ प्रोटीन, ऊर्जा आदि उपलब्ध कर कुपोषण को दूर करने के लिए कारगर है वही इनका सूक्ष्म तत्व जनित कुपोषण को दूर करने में भी महत्वपूर्ण योगदान है।

''स्वस्थ हो जीवन, निरोगी हो काया।
यदि भोजन में, दलहनी समाया''।।

हमारे निर्माता ने हमारे मस्तिष्क और व्यक्तित्व में असीमित शक्तियां और क्षमताएं दी हैं। ईश्वर की प्रार्थना हमें इन शक्तियों को विकसित करने में मदद करती हैं।

–ए.पी.जे अब्दूल कलाम

सब्जी किरण वर्ष–12 (1 एवं 2) जनवरी–दिसम्बर, 2018

पोषण सुरक्षा हेतु पत्तीदार सब्जियों का उत्पादन

ज्योति देवी, विद्या सागर, बी.के. सिंह, आर.के. दुबे, सुनील कुमार, पी.एम. सिंह एवं बी. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

यह एक सार्वभौमिक स्वीकृत तथ्य है कि हरी पत्तीदार सब्जियाँ प्रकृति की सर्वोत्तम पोषण खुराकों में से एक है। पोषण विशेषज्ञ अक्सर पत्तेदार हरी सब्जियाँ खाने की सलाह देते है क्योंकि इनमें स्वास्थ्य लाभकारी घटक प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। ये सब्जियाँ फाइबर, फोलेट और कैराटीनोइड का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं। ये खनिज पदार्थों तथा विटामिन 'ए', विटामिन बी.–2, विटामिन 'के.' एवं विटामिन सी. की प्रमुख स्रोत हैं। लोहा, कैल्शियम, फास्फोरस व रेशा प्रचुर मात्रा में विद्यमान होने के कारण बच्चे, बूढ़े यहाँ तक कि गर्भवती महिलाओं के लिए पत्तीदार सब्जियाँ अधिक उपयोगी हैं। हरे पत्तेदार सब्जियों के स्वास्थ्य लाभों में पाचन स्वास्थ्य में सुधार, दृष्टि को बनाए रखने, कोलेस्ट्रोल के स्तर को संतुलित करने, त्वचा को युवा बनाए रखने, एनीमिया का इलाज, शीर्ष को मजबूत करने, फ्री रेडिकल्स से लड़ने एवं हष्दय रोगों से दूर करने, वजन को घटाने, ऊर्जा स्तर एवं जीवन को लम्बा बनाए रखने के गुण शामिल है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ने प्रत्येक व्यक्ति को 300 ग्राम सब्जियाँ खाने की सलाह दी है जिसमें प्रति दिन 116 ग्राम पत्तीदार सब्जियों का होना आवश्यक है। पालक (*बीटा बुल्गेरिस* एल.), मेथी (*ट्राइगोनेला फोइनमग्रेकम*), चौलाई (एमरेन्थस) एवं सरसों (*ब्रासिका स्पीशीज*) मुख्य साग सब्जियों के रूप में खाई जाती है। ये सब्जियाँ स्वास्थ्यवर्धक होने के साथ कम मूल्य में आसानी से सर्वत्र उपलब्ध हो जाती हैं तथा भोजन को सरस, शीघ्र पाचनयुक्त, स्वादिष्ट, संतुलित व पौष्टिक बनाने में मदद करती हैं। इनके अलावा भारत में कई अन्य स्थानीय एवं मौसमी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे कल्मी साग (*आईपोमिया एक्वाटिका*), फेनल (*फाइनीकुलम वुल्गेरे*), पार्सले (*पट्रोसेलिनम क्रिस्पम*), सोरेल (*रूमेक्स एसीटोसा*), बथुआ (*चिनोपोडियम अलबम*), अरवी पत्ता (*कोलोकेसिया एस्कुन्लेटा*), लेट्यूस (*लेक्टुका सटाइवा*), सहजन (*मोरिंगा ओलीफेरा*), बिच्छू बूटी (*आर्टिका डाइयोका*), हल्दी पत्ता (*कुरकुमा लोंगा*) एवं लंगुरू (*डेकिया क्षाक*) आदि भी खायी जाती हैं (चित्र 1)।

1. पालक

भोजन के अलावा, पालक अपनी विविध पौष्टिक संरचना

जिसमें विटामिन, खनिज एवं इनके फाइटोकेमिकल्स एवं बायोएक्टिव पदार्थ शामिल है, क्रियात्मक भोजन के रूप में जाना जाता है। पालक में विद्यमान विभिन्न जैविक गतिविधियाँ एंटी कैंसर, मोटापा कम करने हाइ पोग्लाइसेमिक एवं हाइ पोलीपेडेमिक गुण प्रदान करती हैं। पालक पत्तियाँ विटामिन के, विटामिन ए, विटामिन सी और फोलेट के साथ–साथ मैगनीज, लौह और विटामिन बी का उत्कृष्ट स्रोत है। पालक में 91.4 प्रतिशत पानी, 2.9 प्रतिशत प्रोटीन, 3.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 0.4 प्रतिशत वसा विद्यमान होती है।

जलवायु

पालक मुख्यतः शीतकालीन फसल है लेकिन इसे पूरे वर्ष भर उगाया जा सकता है। शरद ऋतु में इसकी वानस्पतिक वृद्धि अच्छी होती है और 5–6 कटाईयाँ एक फसल से प्राप्त हो जाती है। गर्मी के मौसम में उगाने पर ऊँचे तापक्रम के कारण एक कटाई ही मिलती है और बाद में बीज के डंठल निकल आते हैं। इसकी अच्छी वृद्धि और उपज के लिये 15 से 20^0 से. तापक्रम उपयुक्त पाया गया है।

भूमि और भूमि की तैयारी

पालक की खेती किसी भी मिट्टी में की जा सकती है। अच्छे जल निकास वाली, बलुई दोमट या दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिये बहुत उपयुक्त होती है। इसमें क्षारीय और लवणीय मिट्टी को सहन करने की क्षमता होती है। इसकी खेती 7 से 8.5 पी.एच. मान वाली मिट्टी में सफलतापूर्वक कर सकते हैं। खेत की 3–4 जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेते हैं। बुआई के पूर्व खेत में छोटी क्यारियाँ और सिंचाई की नालियाँ बना लेनी चाहिए।

केल

सरसों

मीठी सौफ (फनेल)

लेट्यूस

हल्दी पत्ता

कल्मी साग

खट्टा पालक (सौरल)

बथुआ

अरवी पत्ता

लंगुरू

सहजन

बिच्छू बूटी

चित्र 1: भारत में स्थानीय तौर पर खाये जाने वाली हरी पत्तीदार सब्जियाँ

उन्नत किस्में

- **आलग्रीन** : इस किस्म की पत्तियाँ एक समान हरी तथा बुआई के 20–25 दिन बाद कटाई योग्य हो जाती हैं। औसतन कुल 6–7 कटाई की जाती है। इस किस्म की औसत उपज 200 कु./हे. है।
- **पूसा हरित** : यह किस्म पहाड़ी क्षेत्रों में पूरे वर्ष भर उगाई जाती है। मैदानी क्षेत्रों में भी इस किस्म की खेती अच्छी प्रकार से की जाने लगी है। पौधे उर्ध्व विकास करने वाले तथा एक समान हरे होते हैं। इस किस्म की खेती क्षारीय मृदा में भी की जा सकती है। प्रति हेक्टेयर औसत पैदावार 200 कु./हे. से भी अधिक है।
- **पूसा ज्योति** : इनकी पत्तियाँ गहरी हरी, रेशा रहित, मुलायम व रसीली होती हैं। पौधे अच्छे व अधिक पत्तियों वाले होते हैं तथा पोटैशियम, कैल्शियम, सोडियम व एस्कार्बिक अम्ल अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक होती है।
- **जोबनेर ग्रीन** : एक समान हरी, मोटी व मुलायम पत्तियों वाली इस किस्म की औसत पैदावार 300 कु./हे. है। पत्तियों का स्वाद काफी अच्छा होता है।
- **पन्त कम्पोजिट–1** : इस किस्म की पत्तियाँ मुलायम, रसीली व एक समान हरी होती हैं। यह किस्म पत्ती धब्बा बीमारी के प्रति अवरोधी है।
- **एच.एस.–23** : हल्की हरी व मध्यम आकार की पत्तियों वाली यह किस्म बीज की बुआई के 3–4 सप्ताह बाद तैयार हो जाती है। पहली कटाई लगभग 30 दिनों के बाद की जाती है तत्पश्चात् 15–15 दिन के अन्तराल पर 6–8 कटाई की जाती है।

खाद एवं उर्वरक

बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व 20–25 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर की दर से डालकर खेत की मिट्टी में अच्छी तरह मिला देते हैं। इसके अलावा 100 किग्रा. नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस और 50 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से शरदकालीन फसल में डालते हैं। फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की एक चौथाई मात्रा आपस में मिलाकर बुआई के पूर्व खेत में डालकर मिट्टी में मिला देते हैं। शेष नाइट्रोजन बराबर मात्रा में बाँटकर प्रत्येक कटाई के बाद देते हैं। औसतन 3–4 टाप ड्रेसिंग शरदकालीन फसल में करते हैं। गर्मी की फसल में उर्वरक की मात्रा आधी हो जाती है क्योंकि केवल एक ही कटाई मिल जाती है।

बुआई का समय और बीज की मात्रा

बुआई का मुख्य समय अक्टूबर–नवम्बर है लेकिन इसकी बुआई लगभग पूरे वर्ष कर सकते हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्र में बीज बोने के लिये 25–30 किग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज को प्रायः समतल खेत में छिटकवाँ विधि से बोते हैं परन्तु पंक्तियों में बोना अधिक लाभप्रद है। इस विधि से पंक्तियों की दूरी 15–20 सेमी. रखते हैं। बीज को 2–3 सेमी. गहराई पर बोते हैं। बीज जमने के बाद पौधे से पौधे की दूरी 4–5 सेमी. रखते हैं।

सिंचाई

बीज की बुआई के समय पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। पहली सिंचाई बीज जमने के बाद करते हैं और बाद की सिंचाईयाँ 10–15 दिन के अन्तराल पर करते रहते हैं।

अंतः सस्य क्रियायें

खरपतवारों के प्रबन्धन के लिए एक या दो निराई की आवश्यकता होती है। निराई खुर्पी की सहायता से करते हैं। दो पंक्तियों के बीच हल्की गुड़ाई भी कर दें जिससे पौधों की जड़ों में वायु संचार पूर्ण रूप से हो सके।

कटाई

पहली कटाई बीज बुवाई के तीन या चार सप्ताह बाद करते हैं। बाद की कटाईयाँ 15–20 दिन के अन्तर पर करते हैं। कटाई सदैव जमीन से 5–6 सेमी. ऊपर करनी चाहिए।

उपज

हरी कोमल पत्तियों की औसत उपज 150 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

2. चौलाई

चौलाई के पत्ते एवं बीज दोनों ही बहुत पौष्टिक होते है जिनका प्रयोग मानव भोजन एवं पशु चारे में किया जाता है। अनाज फसलों जैसे की गेहूँ, धान एवं मक्का की तुलना में इसमें उच्च गुणवत्ता की प्रोटीन पाई जाती है क्योंकि इसमें लाइसीन की मात्रा अधिक होती है। दलहनी फसलों की तुलना में भी इसमें गन्धक युक्त अमिनो एसिड अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। प्रोटीन का अधिकतम संचय फूल

खिलने की अवस्था में पाया जाता है (17.2–32.6 प्रतिशत)। इसकी पत्तियों, तनों एवं पूरे पौधे को पालक की तरह खाया जाता है।

उन्नत किस्में

- **बड़ी चौलाई *(एमरेन्थस ट्राइकलर)*** : यह किस्म ग्रीष्म एवं वर्षा दोनों मौसम के लिए उपयुक्त है। इसकी पत्तियाँ हरी, पत्तियाँ एवं तने आकार में बड़े और शीघ्र बढ़ने वाले होते हैं।
- **छोटी चौलाई *(एमरेन्थस ब्लीटम)*** : इसके पौधे छोटे तथा पत्तियाँ छोटी और हरी होती हैं एवं तना पतला होता है। यह किस्म ग्रीष्म ऋतु के लिए अधिक उपयुक्त है।

- **पूसा कीर्ति** : इस किस्म के पौधे 6–8 सेमी. लम्बे, 4–5 सेमी. चौड़े व 3–4 सेमी. लंबे मूल वृंत वाले होते हैं। इसके मुलायम तनों पर 1.3–1.5 सेमी. की दूरी पर पत्तियाँ लगती हैं। पत्ती व डण्ठल का अनुपात 3–4:1 होता है। पहली कटाई 30–35 दिनों बाद करते हैं व 70–80 दिनों तक 3–4 कटाई की जाती है। इसकी हरी पत्तियों की पैदावार 300 कु./हे. है।
- **पूसा किरण** : इसमें पत्तियाँ अत्यधिक मुलायम, चौड़ी, हरी पत्तियों से लगा डंठल 5–6.5 सेमी. लम्बा तथा डंठल व पत्तियों का औसत अनुपात 1:4–6 होता है। पहली कटाई बुआई के 21–25 दिन बाद की जाती है जो 70–75 दिन तक चलती रहती है।
- **पूसा लाल चौलाई** : इस किस्म की पत्तियों व तने का रंग लाल होता है। पत्तियों की लंबाई 5–8 सेमी. व चौड़ाई 6.5 सेमी. तक होती है। पौधे की ऊँचाई लगभग 42 सेमी. होती है। डंठल और पत्ती का अनुपात 1:5 तक पाया जाता है। पहली कटाई बीज बुआई के 22–24 दिन बाद होती है। औसत पैदावार प्रति हेक्टेयर 300 कु./हे. है।
- **को.–5** : यह टेट्राप्लायड (चतुर्गुणित) किस्म है जिसकी बढ़वार और उपज अधिक होती है।
- **अरूण:** चौलाई की यह प्रजाति केरल कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गयी है। इसके पत्ते तथा तना लाल रंग के होते हैं।
- **अर्का सुगुना** : इसकी पत्तियाँ आकर्षक, चौड़ी एवं हरी होती हैं। यह प्रजाति कई बार कटाई हेतु उपयुक्त है। इसमें पहली कटाई बीज बुवाई के 25 दिन बाद की जाती है। इसकी कटाई 90 दिनों तक 10–12 दिन के अंतराल पर की जा सकती है। इसकी औसत उपज 270 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।
- **अर्का अरूणिमा** : इस किस्म के पौधों की पत्तियाँ बैगनी रंग की होती है। इसकी औसत उपज 275 कु. है। यह किस्म सफेद रतुआ के प्रति अवरोधी है।

जलवायु

चौलाई गर्म जलवायु की फसल है। मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में करते हैं। शरद ऋतु में पौधों की बढ़वार नहीं होती।

भूमि और भूमि की तैयारी

पालक के अन्तर्गत दिए गए विवरण के अनुसार।

खाद एवं उर्वरक

बुआई के लगभग 3–4 सप्ताह पहले 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी में मिला देना चाहिए। तत्व के रूप में प्रति हेक्टेयर 100 किग्रा. नत्रजन, 50 किग्रा. फास्फोरस एवं

30 किग्रा. पोटाश की आवश्यकता पड़ती है। फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा व नत्रजन की आधी मात्रा बुआई से पूर्व मिट्टी में अच्छी तरह मिला देते हैं तथा शेष नत्रजन बराबर भागों में बाँटकर प्रत्येक कटाई के बाद छिटक कर डालते हैं।

बुआई का समय

साधारणतया ग्रीष्म कालीन फसल की पैदावार अधिक व गुणवत्तायुक्त होती है, जबकि वर्षा ऋतु में पत्तियाँ कीड़ों से प्रभावित हो जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु की फसल की बुआई फरवरी–मार्च एवं वर्षा ऋतु की फसल की बुआई जून–जुलाई में करते हैं।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर क्षेत्रफल की बुआई के लिए 1.5–2.0 किग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है।

बीज की बुआई

चौलाई के बीज बहुत छोटे होते हैं इसलिए इसकी बुवाई रेत मिलाकर करते हैं, ताकि बीज सर्वत्र एक समान पड़े। बीज क्यारियों में छिटकर बोते हैं या 20 से 25 सेमी. की दूरी पर कतारों में बुआई करते हैं। यदि पौध घनी उग जाएं तो उनको उखाड़कर प्रति क्यारी पौध संख्या सीमित कर लेते है। जहाँ खाली स्थान छूट गया हो वहाँ घने स्थान से पौधों को निकालकर रोपण भी किया जा सकता है। जहाँ तक हो सके बीज की बुआई पर्याप्त नमी की अवस्था में करनी चाहिए, ताकि जमाव अच्छी तरह हो सके।

सिंचाई

गर्मी के दिनों में तापक्रम के अनुसार सिंचाई 6–10 या 4–5 दिन के अन्तर पर करते हैं। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है और यदि वर्षा न हो रही हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

अंतः सस्य क्रियायें

चौलाई की क्यारियों से खर–पतवार बराबर निकाल कर क्यारी साफ–सुथरी रखनी चाहिए, ताकि चौलाई के पौधों को बढ़ने में कोई असुविधा न हो। सामान्यतया चौलाई में दो निकाई की आवश्यकता पड़ती है जिसे आवश्यकता के अनुसार करते हैं। निकाई के साथ–साथ हल्की गुड़ाई भी करते रहना चाहिए।

कटाई

पालक के अन्तर्गत दिए गए विवरण के अनुसार।

उपज

पत्तियों की पैदावार, किस्म, बोने के समय, मिट्टी की भौतिक दशा तथा उसमें उपलब्ध तत्वों के ऊपर निर्भर करती है। उचित खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग व देख–रेख से हरी पत्तियों की औसत उपज 150–200 कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

3. मेथी

हरी मेथी की पत्तियाँ सबसे प्राचीन औषधीय जड़ी बूटियों में से एक है। भारतीय मसालों में भी इसका प्रमुख स्थान है। यह मानव शरीर के लिए प्राकृतिक खाद्य रेशा एवं आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है। इसमें खाद्य पदार्थों को संशोधित करने की क्षमता होती है जो पाचन के लिए बहुत फायदेमंद होता है। इसमें जीवाणु रोधी, एन्टीकैन्सर, एन्टीअलसर, एंथेलमिंटिक एन्टीआक्सीडेंट, एन्टीडाइबेटिक, हाइपो कोलेस्ट्रालीक तथा हाइपो ग्लाइसेमिक तत्व पाए जाते है। इसकी खेती दुनियाभर में अर्द्धशुष्क फसल के तौर पर की जाती है। भारत इसका प्रमुख उत्पादक एवं उपभोक्ता वाला देश है। प्रति 100 ग्राम ताजी मेथी की पत्तियों में 229.97 मिलीग्राम एस्कॉर्बिक एसिड एवं 19 मिलीग्राम बीटा कैरोटिन पाई जाती है।

जलवायु

मेथी ठण्ड के प्रति सहनशील होती है अतः जाड़े के खेती के लिए उपयुक्त पत्तेदार सब्जी है। सामान्य मेथी तेजी से ऊपर की तरफ बढ़ती है जबकि कसूरी मेथी प्रारम्भ में धीमी तथा जमीन की तरफ फैलती है।

भूमि और भूमि की तैयारी

मेथी सभी प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है परन्तु दोमट मिट्टी इसके लिए सबसे उपयुक्त है। मिट्टी का पी.एच. मान 6–7 के मध्य सर्वश्रेष्ठ होता है। खेत अच्छी प्रकार से तैयार करना चाहिए तथा उसका जल निकास अच्छा होना चाहिए।

उन्नत किस्में

कोयम्बटूर–1, कोयम्बटूर–2, लेम सेलेक्शन–1, कसूरी, आरएमटी–1, आरएमटी–143, आरएमटी–303,

आरएमटी–305, राजेन्द्र क्रांति, एचएम–103, हिसार सोनाली, हिसार स्वर्णा, हिसार माधवी, हिसार मुक्ता, गुजरात मेथी–1, राजेन्द्र आभा, पंत रजनी, पूसा अर्ली बचिंग, मेथी–47 एवं मेथी–40 आदि प्रमुख किस्में है।

बुआई का समय और बीज की मात्रा

उत्तर भारत में इसकी बुवाई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है जबकि दक्षिण भारत में इसे अक्टूबर (रबी फसल) एवं जून–जुलाई (खरीफ फसल) में उगाया जाता है। इसकी उपज रबी फसल में ज्यादा होती है। बीज दर प्रति हेक्टेयर 20–25 किग्रा. होता है। इसको छिटककर बोया जाता है परन्तु पंक्ति में बुवाई, खर–पतवार नियंत्रण एवं अन्य सस्य कार्यों में सुविधा प्रदान करती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20–25 सेमी. होनी चाहिए तथा पौध से पौध की दूरी 7.5–10 सेमी. होनी चाहिए। बुवाई से पहले बीजों का राइजोबियम कल्चर से उपचार करना लाभप्रद होता है क्योंकि इससे वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण अधिक होता है।

खाद एवं उर्वरक

बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व 20–25 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर की दर से डालकर खेत की मिट्टी में अच्छी तरह मिला देते हैं। बुवाई के समय 50 किग्रा. नाइट्रोजन, 40 किग्रा. फास्फोरस एवं शेष बची हुई नाइट्रोजन 20–30 किग्रा. पहली कटाई के बाद छिड़काव कर देनी चाहिए।

सिंचाई

बीज की बुआई के समय पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। पहली सिंचाई बीज जमने के बाद करते हैं और बाद की सिंचाईयाँ 10–15 दिन के अन्तराल पर करते रहते हैं।

अंतः सस्य क्रियायें

खर–पतवारों के प्रबन्धन के लिए एक या दो निराई की आवश्यकता होती है। निराई खुर्पी की सहायता से करते हैं। दो पंक्तियों के बीच हल्की गुड़ाई भी कर दें जिससे पौधों की जड़ों में वायु संचार पूर्ण रूप से हो सके। अच्छी पैदावार के लिए खेत में नमी को बनाये रखना चाहिए।

कटाई

पहली कटाई बीज बुवाई के तीन या चार सप्ताह बाद करते हैं। बाद की कटाइयाँ 15–20 दिन के अन्तर पर करते हैं। कटाई सदैव जमीन से 2 सेमी. ऊपर करनी चाहिए। एकल कटाई के लिए पौधों को जड़ के साथ उखाड़कर बण्डल में बेचा जाता है।

उपज

सामान्य मेथी की उपज 7–8 टन/हे. जबकि कसूरी मेथी की उपज 9–10 टन/हे. होती है। इसकी पत्तियों को सूखाकर 10–12 महीने तक प्रयोग में लाया जा सकता है।

4. बथुआ

बथुआ एक ऐसी सब्जी है जिसके गुणों से ज्यादातर लोग अपरिचित हैं। ये छोटा–सा दिखने वाला हरा–भरा पौधा काफी फायदेमंद है एवं सर्दियों में इसका सेवन कई बीमारियों को दूर रखने में मदद करता है। बथुए में आयरन प्रचुर मात्रा में होता है। बथुआ न सिर्फ पाचनशक्ति बढ़ाता है बल्कि अन्य कई बीमारियों से भी छुटकारा दिलाता है।

जलवायु

बथुआ की खेती रबी मौसम में की जाती है। इसमें पाला सहन करने की शक्ति होती है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी बुआई अप्रैल के महीने मे की जाती है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी तथा सिंचाई

पालक के अन्तर्गत दिए गए विवरण के अनुसार।

उन्नत किस्में

पूसा ग्रीनः यह अधिक उपज देने वाली किस्म है पत्तियों की कटाई बीज बुआई के लगभग 50–60 दिन बाद की जाती है। इस किस्म में बीज की बुआई के बाद से बीज बनने तक लगभग 5 माह का समय लगता है।

बीज की मात्रा

सामान्य बथुआ की एक हेक्टेयर खेत की बुआई के लिए 5–7 किग्रा. बीज की आवश्यकता होती है।

बुआई

उत्तर भारत में हरी पत्तियों के लिए बथुआ की बुआई का उचित समय अक्टूबर के अंत से मध्य नवम्बर है। बीज की बुआई 10–15 सेमी. की दूरी पर कतार बनाकर, पंक्तियों के बीच 40 सेमी. की दूरी रखते हुए 0.5–2.0 सेमी. गहराई पर करते हैं।

खाद एवं उर्वरक

खेत को तैयार करते समय 20–25 टन सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट अच्छी तरह से मिट्टी में मिला देते हैं। बुवाई के पहले 20 किग्रा. नत्रजन एवं 40 किग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से अन्तिम जुताई के समय पूरे खेत में समान रूप से बिखेर कर मिट्टी में मिला देना चाहिये। प्रत्येक कटाई के बाद 10 किग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से टाप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिये।

अंतः सस्य क्रियायें

प्रारम्भिक अवस्था में बथुआ की वृद्धि धीमी गति से होती है। अतः केवल एक निकाई की आवश्यकता होती है। बुवाई के 4 से 5 सप्ताह बाद पौधों में इतनी अधिक वृद्धि हो जाती है कि खर–पतवार नुकसान नहीं पहुँचा पाते हैं। जहाँ तक हो सके समय–समय पर खर–पतवार निकालते रहना चाहिए।

कटाई

पालक के अन्तर्गत दिए गए विवरण के अनुसार।

उपज

सामान्यतः बथुआ की हरी पत्ती की उपज 40–50 टन/हे. होती है। बीज की पैदावार बथुआ में 6.0–7.0 कु./हे. होती है।

5. पोई साग (*बासेला*)

यह किचन गार्डेन के लिए बहुत उपयुक्त फसल है। यह मुख्यतः दो प्रकार के जैसे–लाल तथा हरे रंग के होते हैं। पोई का साग, शीतल खांसी को दूर करने वाला, गले को साफ करने वाला, तथा गर्मी को दूर करने वाला होता है ।

जलवायु

यह गर्मी के दिनों मे आसानी से उगाया जा सकता है। इसमे सूखा झेलने की बहुत शक्ति होती है। इसकी रोपाई मार्च के मध्य या अप्रैल के शुरुआत में किया जाता है।

बीज की मात्रा एवं उपज

पोई की एक हेक्टेयर खेत की बुआई के लिए 15 से 17 किग्रा. बीज की आवश्यकता होती है सामान्यतः पोई की हरी पत्ती की उपज 40–50 टन/हे. होती है।

पत्तेदार सब्जियों की फसल सुरक्षा

• प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

पर्णदाग : यह रोग सभी पत्तेदार सब्जियों (पालक, चौलाई) की एक प्रमुख समस्या है। हल्के, भूरे गोल धब्बे जिसके किनारे लाल होते हैं पालक को छोड़कर अन्य पत्तीदार सब्जियों में बहुत स्पष्ट नहीं दिखाई देते हैं। यह रोग सामान्यतः सरकोस्पोरा प्रभेद के कवकों द्वारा होता है। यह रोग सलाद, सेलरी एवं चाइनीज पत्ता गोभी में अल्टरनेरिया प्रभेद के कवकों द्वारा होता है। अल्टरनेरिया के धब्बे भूरे गोल और पत्ती की पूरी सतह पर फैले होते हैं। चौलाई में सफेद रस्ट नामक बीमारी तेजी से फैल रही है जिसमें पत्तियों पर सफेद एवं बहुत छोटा धब्बा बनता है। इसका संक्रमण दक्षिण भारत में सबसे ज्यादा होता है।

नियंत्रण : घनी बुआई न करें। पौधों की निचली पत्तियों को तोड़कर जला देना चाहिए। बहुत अत्यधिक संक्रमण की अवस्था में क्लोरोथैलोनिल या मैंकोजेब या जीनेब की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर 2–3 छिड़काव करें। खेत में संतुलित उर्वरक तथा कम्पोस्ट का प्रयोग करें।

सफेद गलन : यह रोग सर्वत्र विद्यमान कवक *स्कलेरोटीनिया स्कलेरोसियोरम* द्वारा उत्पन्न होता है। यह रोग सामान्यतया ठण्डे एवं नम मौसम में अधिक आता है। रोग के लक्षण जलीय मृदुगलन के रूप में पर्ण वृन्त, पुष्प वृन्त एवं तने पर शुरू होता है और पत्ती के कुछ भाग तक फैल जाता है। संक्रमण के बाद कवक जाल घनी हो जाती है एवं कवक तन्तुओं पर जल बिन्दु दिखने लगते हैं। बाद में संक्रमित भागों के ऊपर कवक जाल बहुत घनी हो जाती है और काले रंग की कवक संरचना (स्कलेरोसिया) से ढँक जाता है।

नियंत्रण : संक्रमित फूलों, पत्तियों इत्यादि को कुछ स्वस्थ भाग के सहित सुबह के समय काटकर सावधानीपूर्वक इकट्ठा करना चाहिए जिससे स्कलेरोसिया जमीन पर न गिर सकें और फिर खेत के बाहर ले जाकर जला देना चाहिए। कार्बेन्डाजिम कवकनाशी की 1 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर पर्णीय छिड़काव करें और इसके 6–10 दिन बाद मैंकोजेब 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। छिड़काव निचली पत्तियों एवं तने तक अवश्य पहुँचना चाहिए। वैलिडामाईसीन (2 मिली./ली.) या ब्टेलुकोनाजोला, 1.5 मिली./ली. पानी के साथ मिलाकर मृदा सिंचन करें।

चूर्णिल आसिता

संक्रमण की प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों पर सफेद पाउडर दिखाई देता है जो संक्रमण बढ़ जाने पर पूरे पौधे पर सफेद चूर्णिल आवरण बना देता है। यह बीमारी मेथी की फसल को अधिक प्रभावित करती है।

नियंत्रण : घुलनशील गंधक 20–25 ग्राम/10 लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

• प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

पत्तेदार सब्जियों में मुख्यतः कर्त्तन कीट (पत्ती काटने वाले कीट) एवं चैंपा (एफिड) नुकसान पहुँचाते हैं। कर्त्तन कीट पत्तियों को काटकर नुकसान पहुँचाता है जबकि चैंपा पत्तियों एवं पौधों के कोमल भाग से रस चूसता है तथा उसकी वृद्धि को प्रभावित करता है। इसके नियंत्रण के लिए मेलाथियान 0.05 प्रतिशत का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर कर सकते है। जहाँ तक हो सके जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करें। नीम तेल (4 प्रतिशत) का छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर 4 बार करने से कीटों से सुरक्षा मिलती है। पत्तियों की कटाई कीटनाशकों के प्रयोग से कम से कम 10 दिन बाद करनी चाहिए।

सब्जियों की प्रतिरोधी किस्मों के विकास की नई तकनीकें

ऋषि कुमार शर्मा[1] एवं अच्युत कुमार सिंह[2]

[1]सुधाकर महिला पी.जी. कालेज, पाण्डेयपुर, वाराणसी–221 002, उत्तर प्रदेश

[2] भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सब्जियों का अधिकाधिक उत्पादन अपरिहार्य है। परन्तु सब्जी की फसलें विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के प्रति अति संवेदनशील होती हैं। सब्जियों की पैदावार को कुप्रभावित करने वाले जैविक व अजैविक कारकों का जैव प्रौद्योगिकी साधनों जैसे उत्तक संवर्धन, म्यूटाजनेसिस, मार्कर–असिस्टेड प्रजनन इत्यादि के माध्यम से काफी हद तक दूर किया जा सकता है। सब्जियों के अनुवांशिक सुधार के लिए यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि तनाव से सम्बन्धित जीन की निष्पीड़न प्रक्रिया को समझा जाए। अतः यहाँ जैव प्रौद्योगिकी के उन विशेष पहलुओं को सम्प्रेषित किया जा रहा है जिनके द्वारा हम सब्जियों की पैदावार को तनाव के दौरान भी सुधार सकते हैं।

सब्जियों की फसल द्वारा अत्यधिक उत्पादन के लक्ष्य की अपेक्षाकृत सुगमता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। सब्जियों का उत्पादन हमारे आर्थिक व सेहत दोनों ही दृष्टिकोण से लाभकारी है। सब्जियों का उत्पादन व गुणवत्ता अक्सर अनेक जैविक व अजैविक कारकों के माध्यम से कुप्रभावित होती है। विभिन्न जैविक कारक जैसे जीवाणु, विषाणु, फफूँद, सूत्रकृमि, कीटों इत्यादि के साथ–साथ अजैविक कारक जैसे – मौसम परिवर्तन, सूखा, हिमीकरण, लवणता, खनिज विषाक्वता एवं जल जमाव भी सब्जियों की गुणवत्ता व उत्पादन को कुप्रभावित करते हैं। अजैविक कारकों द्वारा अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव की स्थिति में उत्पन्न क्षति प्रायः जैविक कारकों के समतुल्य तक हो सकती है। साथ ही अजैविक कारकों से प्रभावित सब्जी की फसल अक्सर कीट, खर–पतवार व विभिन्न परजीवियों द्वारा उत्पन्न बीमारियों के प्रति अति संवेदनशील होती है। सब्जियों की फसल में विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के प्रति अति संवेदनशीलता को ध्यान में रख कर यह आवश्यक है कि उक्त कारकों के विरूद्ध प्रतिरोधी किस्में उत्पन्न उत्पन्न की जाये। प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने का यह कार्य पारम्परिक प्रजनन के माध्यम से भी किया जाता रहा है। इस क्षेत्र में सब्जियों की विशिष्ट प्रजाति का चयन जैव प्रौद्योगिकी के सफलतापूर्वक प्रयोग के लिए उत्तम होता है। ऐसी प्रजाति का चयन करना चाहिए जो द्विगुणित हो, जिनके जीनोम का आकार अपेक्षाकृत छोटा तथा लघु जीवन चक्र के साथ–साथ अत्यधिक बीज उत्पादन की क्षमता मौजूद हो। उक्त प्रक्रिया के दौरान चयनित पौधों का जीनोम अनुक्रमण तैयार करने के साथ–साथ इ.एस.टी. (एक्सप्रेस्ड सीक्वेंस टैग्स) को अलग करके उनका आनुवांशिक व भौतिकीय मानचित्र तैयार किया जाता है। वर्तमान समीक्षा में सब्जियों को कुप्रभावित करने वाले जैविक व अजैविक कारकों के परिहार हेतु सम्बन्धित उत्तक संवर्धन, म्यूटाजनेसिस, मार्कर–असिस्टेड प्रजनन, (प्रजनन), आनुवांशिक प्रपांतरण तथा जीन निष्पीड़न को समावेशित किया गया है।

मॉलिक्यूलर मार्कर–असिस्टेड प्रजनन

ऐसे डीएनए सीक्वेंस जो किसी निश्चित अनुवांशिक गुण को प्रदर्शित करने वाले कारक से जुड़े होते है तथा जिनके माध्यम से उन विशिष्ट आनुवांशिक गुणों को पहचाना जा सकता है, मॉलिक्यूलर–मार्कर कहलाते हैं। यह मॉलिक्यूलर–मार्कर उन्नत की गई फसलों के अप्रत्यक्ष चयन प्रक्रिया में सहायक होते है। शीघ्रता पूर्वक वांछित गुणों को पहचानने हेतु उपलब्ध तकनीके प्रयोग में लायी जाती हैं। मॉलिक्यूलर–मार्कर का प्रयोग ऐसे आनुवांशिक गुणों को पहचानने हेतु बहुत सुविधाजनक होता है जिनका नियंत्रण एक से अधिक जीन्स के द्वारा होता है। सब्जियों को प्रभावित करने वाले के संदर्भ में विभिन्न मॉलिक्यूलर–मार्कर का प्रयोग किया जाता है जिनमें रैंडम एम्प्लिफिएड पोलीमॉर्फिक डीएनए (आर.एफ.एल.पी.), रेस्ट्रिक्शन फ्रेगमेंट लेंथ पॉलीमॉरफिस्म (आर.एफ.एल.पी.), एम्प्लिफिएड पिग्मेंट लेंथ पॉलीमॉरफिस्म (ए.एफ.एल.पी.) व सिम्पल सीक्वेंस रिपीट (एस.एस.आर.) इत्यादि प्रमुख है।

उपरोक्त मॉलिक्यूलर–मार्कर की मदद से विभिन्न सब्जियों की उपजाति में विविध जैविक व अजैविक कारकों के विरूद्ध उत्पन्न प्रतिरोधक क्षमता का क्यू.टी.एल. (क्वांटिटेव ट्रेट लोसि) स्थापित किया जा चुका है।

जीन पिरॅमिडिंग

सब्जियों में विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के विरूद्ध स्थायी प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने हेतु विविध प्रतिरोधी जीनों को एक ही जीनोम में जीन पिरॅमिडिंग के माध्यम से समावेशित किया जाता है। इस प्रकार जैव प्रौद्योगिकी द्वारा एक ही सब्जी की किस्में कई तरह के (बीमारियों के विरूद्ध) प्रतिरोधी जीनों को डालकर विविध प्रकार के जैविक व अजैविक कारकों द्वारा उत्पन्न बीमारियों के विरूद्ध प्रतिरोधी फसल को प्राप्त किया जा सकता है (चित्र 1)।

पौधों में जब किसी रोगाणु के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता मात्र एक ही जीन द्वारा नियंत्रित होती है, ऐसे प्रतिरोधी गुणों की रोगाणुओं की नई रेस द्वारा आसानी से निष्प्रभावी किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में एम.ए.एस.(मार्कर–असिस्टेड सिलेक्शन) के साथ ही जीन पिरॉमिडिंग प्रणाली का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

टिश्यू कल्चर

टिश्यू कल्चर की सहायता से विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के प्रति प्रतिरोधी ट्रांसजेनिक पौधों को जीवोत्पति तथा एम्ब्रियोजेनेसिस के द्वारा कृत्रिम परिवेशीय परिस्थिति में उत्पन्न किया जाता है। साथ ही इसके माध्यम से वांछित अनुवांशिक विविधिता की समकायिक विविधता (सोमाक्लोन वेरियशन), इन विट्रो म्यूटाजनेसिस, सोमा क्लोनल, डबल हैप्लोइड व वायड हाईब्रिडाईजेसन प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जा सकता है (चित्र 2)।

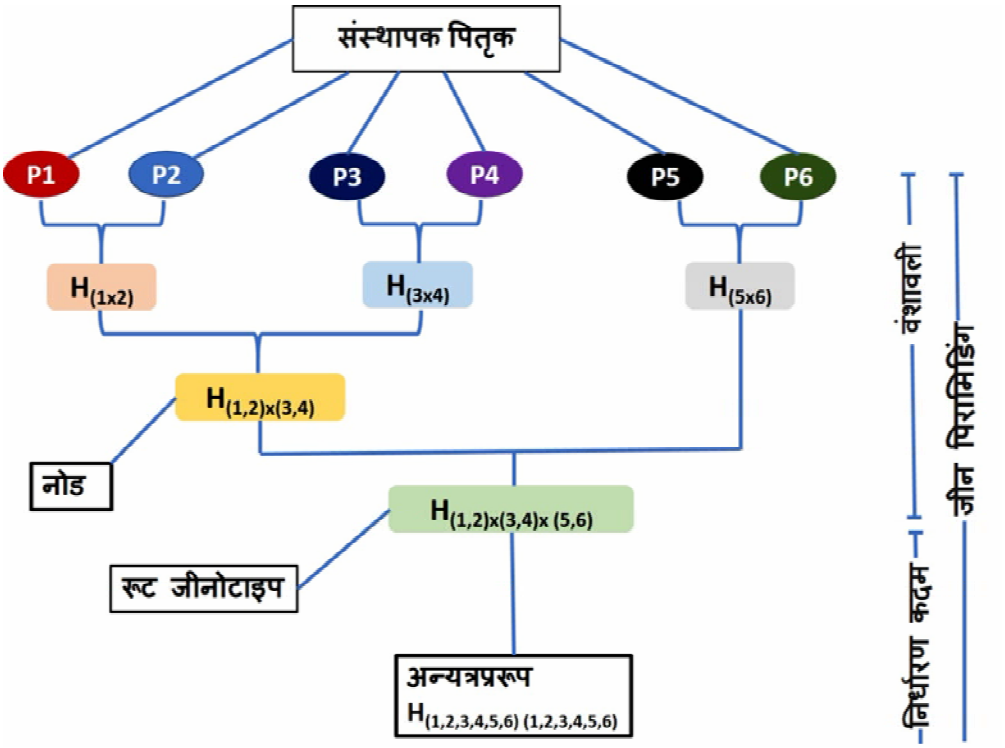

चित्र 1: विशिष्ट जीन पिरॉमिडिंग योजना संचय छह लक्ष्य जीन

चित्र 2: टमाटर का टिश्यू कल्चर की सहायता से जैविक व अजैविक कारकों के प्रति प्रतिरोधी ट्रांसजेनिक पौधों को जीवोत्पति

सोमाक्लोनल वेरिएशन

टिश्यू कल्चर के माध्यम से कृत्रिम परिवेशीय परिस्थिति में कैलोस कल्चर व एम्बयोजनेसिस प्रयोग करते हुए विविध प्रकार की आनुवांशिक विविधता उत्पादन की जा सकती है, जिसे सोमाक्लोनल वेरिएशन के नाम से जाना जाता है।

इन विट्रो म्यूटाजेनेसिस

जैविक व अजैविक कारकों के विरूद्ध प्रतिरोधी सब्जियों के पौधे उत्पन्न करने के लक्ष्य को इन विट्रो **म्यूटालेजेनेसिस** के माध्यम से (सहजतापूर्वक) प्राप्त किया जा सका है। इस प्रक्रिया में इ.एम.एस. सोडियम ऑक्साइड, तेज न्यूट्रॉन विकिरण इत्यादि म्यूटाजेन्स का प्रयोग होता है। इ.एम.एस. के प्रयोग से पॉइंट म्युटेशन द्वारा टमाटर व आलू जैसी विभिन्न सब्जियों में सफलतापूर्वक विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न की जा चुकी है।

इन विट्रो चयन

हाल के वर्षों में टिश्यू कल्चर आधारित *इन विट्रो* चयन प्रक्रिया के प्रयोग द्वारा जैविक व अजैविक कारक रोधी पौधों का बहुतायत किया जाता रहा है। विविध सेलेक्टिंग एजेंट्स जैसे Nacl (नमक सहनशील के लिये) पी. इ. जी. या मैनीटोल (सूखा सहिष्णुता के लिये) पैथोजन (रोगाणु) कल्चर फिल्ट्रेट या फायटोटोक्सिन (रोग प्रतिरोध के लिये) का कल्चर माध्यम में प्रयोग करके विभिन्न जैविक व अजैविक कारक रोधी पौधों का चयन किया जाता है। परन्तु अधिकांशतया कृत्रिम परिवेशीय इस चयन प्रक्रिया का प्रयोग मुख्य रूप से अजैविक कारक रोधी पौधे उत्पन्न करने हेतु किया गया है।

डबल हपलोईड्स (डी.एच.)

डबल हपलोईड्स (डी.एच.) एक टिश्यू कल्चर आधारित प्रक्रिया है जिसमें मुख्य रूप से एंड्रोजेंसिस (पराग–कोश कल्चर) व गयनोजेनेसिस (ओवरी कल्चर) द्वारा अगुणित भ्रूण प्राप्त किया जा सकता है। इसमें एंड्रोजेंसिस का प्रयोग बहुतायत होता है। इस प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हैप्लोइड कोशिकाएं में गुणसूत्र द्विगुणन के माध्यम से डबल हपलोईड्स प्राप्त कर सकते हैं। गुणसूत्र द्विगुणन की प्रक्रिया हेतु कोल्सिसिन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लॉरॅफेनिकोल इत्यादि रसायनों का प्रयोग होता है। प्याज व गोभी जैसे द्विवार्षिक पौधों की एक ही पीढ़ी में स्थायी डबल हपलोईड्स लाइन उत्पन्न कर बीमारियों व अन्य कारकों के विरूद्ध प्रतिरोधी सब्जियों के पौधे तैयार किये जा सकते हैं (चित्र 3)।

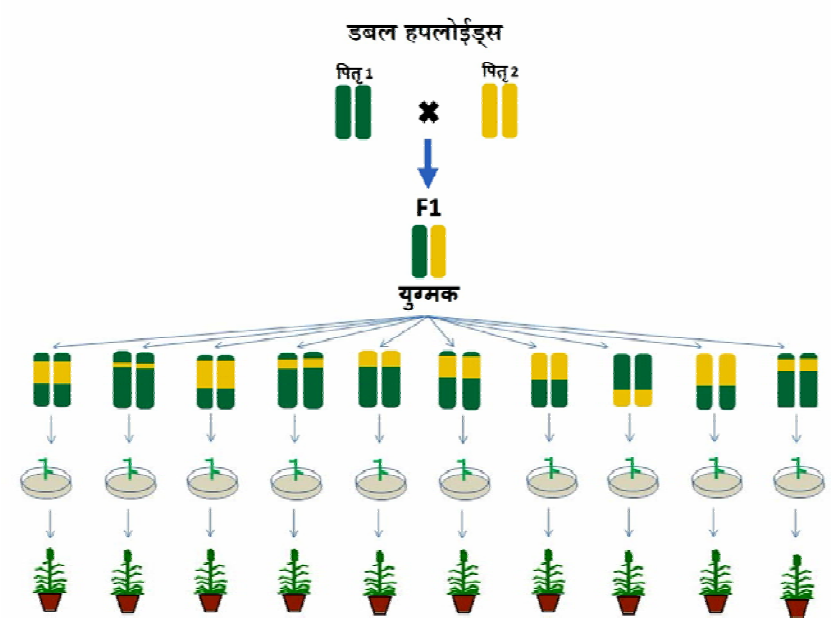

चित्र 3: डबल हपलोईड्स प्रजनन

वायड हाईब्रिडाईजेसन

खेती योग्य पौधों में वांछित गुणों को उत्पन्न करने के उद्देश्य से भिन्न–भिन्न उपजाति के बीच जीन स्थानांतरण की प्रक्रिया को वायड हाईब्रिडाइजेसन या दूरस्थ संकरण कहते हैं। इसके द्वारा विभिन्न प्रचलित सब्जियों की जंगली प्रजाति के पौधों में विद्यमान तनाव सहनशीलसम्बन्धी उपयोगी जीन को खेती योग्य सब्जियों के पौधों में समाहित किया जाता है। इस प्रक्रिया में भ्रूण उद्धार तथा प्रोटोप्लाज्म संलयन तकनीक का सहारा लिया जाता है। उपरोक्त विधि के माध्यम से मिर्च, भिण्डी, मटर व अन्य कई सब्जियों में विभिन्न बीमारियों के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता सफलतापूर्वक उत्पन्न की जा चुकी है।

प्रोटोप्लाज्म संलयन के द्वारा कई प्रकार की सब्जियों में लैगिंक प्रजनन की बाधा को दूर करते हुए अलग–अलग उपजाति के बीच में जीन स्थानांतरण सम्भव हो पाया है तथा इसके माध्यम से कई नए जीन संयोजन प्राप्त हुए है।

जीन स्थानांतरण

जीन स्थानांतरण वो प्रक्रिया है जिसमें किसी वांछित बाहरी जीन को प्रचलित पौधों में सफलतापूर्वक स्थापित करके ट्रांसजेनिक पौधे उत्पन्न कराए जाते हैं तथा इसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के जैविक व अजैविक तनाव सहनशील पौधे उत्पन्न करवाए गए है। जेनेटिक स्थानांतरण हेतु एग्रोबेक्टेरियम मध्यस्थ जीन स्थानांतरण, बायोलिस्टिक प्रक्रिया प्रोटोप्लाज्म संलयन, माइक्रोइंजेक्शन, एलेक्ट्रोपोरशन आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

आलू, टमाटर इत्यादि द्विबीजपत्रीय सब्जियों में, *एग्रोबेक्टेरियम ट्यूबीफेक्सन्स* नामक जीवाणु में Ti प्लाज्मिड विद्यमान की सहायता से वांछिता जीन को सफलतापूर्वक (इन पौधों के) जीनोम में स्थापित करवाया गया है। जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से विभिन्न प्रकार की कीट प्रतिरोधी सब्जियों को तैयार किया गया है। इस सन्दर्भ में *बेसिलस थुरिंजेंसिस* नामक जीवाणु में व्याप्त बी. टी. जीन (क्राई 1 ए. सी. जीन) प्रमुखता से प्रयुक्त व कौतुहल का विषय रहा है।

बी. टी. ट्रांसफोर्मड सब्जियों में मौजूद क्राई प्रोटीन स्तनधारियों के लिए तो काफी हद तक हानि रहित है परन्तु विभिन्न हानिकारक कीट को मारने का कार्य करता है। जीन स्थानांतरण के माध्यम से विभिन्न प्रकार के जैविक व अजैविक तनाव सहनशील ट्रांसजेनिक पौधे भी उत्पन्न किए गए है। ट्रांसजेनिक आलू में ग्लाइसिन बीटेन जैसे सेल सोलुटेस द्वारा तथा ट्रांसजेनिक टमाटर में ट्रेहलोज सुगर के स्तर को कोशिका द्रव्य में बढ़ा कर सूखा व लवणता रोधी गुणों को प्राप्त किया जा सकता है।

जीन अभिव्यक्ति

तनाव सहनशील से सम्बन्धित जीन की अभिव्यक्ति प्रक्रिया सम्बन्धित विस्तृत जानकारी के आधार पर ही एम. ए. एस. व ट्रांसजेनिक पद्धति को सम्पन्न करना पूरी तरह सम्भव है। इस हेतु जीन अभिव्यक्ति का ट्रांस्क्रिप्टोमिक, प्रोटॉमिक तथा मेटाबोलोमिक्स के स्तर पर परिमाणात्मक व गुणात्मक विश्लेषण अति आवश्यक है।

• ट्रांस्क्रिप्टोमिक

पौधों को किसी निश्चित् अवस्था के दौरान कोशिका में उपस्थित आर.एन.ए. के विस्तृत अध्ययन को ट्रांस्क्रिप्टोमिक कहते हैं। कोशिका में मौजूद ट्रांसक्रिप्ट (आर.एन.ए.) अवस्था व वाह्य वातावरण के आधार पर भिन्न होते है। अतः हर तरह के तनाव सहनशील प्रक्रिया को समझने के लिए यह आवश्यक है कि निश्चित् अवस्था में पादप जीनोम के क्रियात्मक गुणों व कोशिका की संरचना की पूर्ण विवेचना की जाए। इसके लिए नॉर्थेर्न ब्लॉटिंग जैसी पुरानी तकनीक के साथ–साथ माइक्रोअर्रेस, सप्रेशन सब्ट्रैक्टिवे हयब्रिडि लाइब्रेरी, सीरियल एनालिसिस ऑफ जीन एक्सप्रेशन तथा ट्रांसक्रिप्शन कारक के परिमाणात्मक मापन जैसे नवीन विधियों का भी सहारा लिया जाए।

• ट्रांसक्रिप्शन कारक

ऐसे प्रोटीन जो जीन की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं उन्हे ट्रांसक्रिप्शन कारक कहा जाता है। अतः विभिन्न प्रकार के जैविक व अजैविक तनाव को नियंत्रित करने तथा उनके प्रति पौधों में सहनशील या प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने हेतु ट्रांसक्रिप्शन कारक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इस सम्बन्ध में कई वर्गों के ट्रांसक्रिप्शन कारक जैसे इ.आर.एफ. (ईथीलीन–रेस्पॉन्सिव एलिमेंट बंधन फैक्टर्स) प्रोटीन डब्ल्यूआईआरकेवाई इत्यादि को पहचाना गया है। एक ही ट्रांसक्रिप्शन कारक को कई तरह के तनाव सहनशीलता में प्रभावी पाया गया है। अतः पौधों में मात्र एक ट्रांसक्रिप्शन कारक से जीन की स्थापना के द्वारा कई प्रकार की तनाव सहनशीलता व प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न कराई जा सकती है। जैसे इ. आर. एफ. वर्ग के ट्रांसक्रिप्शन कारक को सूखा, कोल्ड व परजीवी के संक्रमण में प्रभावी पाया गया है।

• प्रोटिओमिक्स

वृहद् स्तर पर जीव धारी या कोशिका के प्रोटीन प्रोफाइल के अध्ययन को प्रोटिओमिक्स कहा जाता है (इसके अन्तर्गत किसी निश्चित् अवस्था में मौजूद प्रोटीन की संरचना, कार्य व व्यवहार को देखा जाता है)। इसके अन्तर्गत प्रोटीन का आपसी सम्बन्ध व परिमाणात्मक किया जाता है। किसी निश्चित् समय में कोशिका प्रोटीन का स्तर ट्रांसक्रिप्शन प्रक्रिया की गति, ट्रांसलेशन दक्षता व निम्नीकरण पर निर्भर करता है। 2 डी. जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस, प्रोटीन अनुक्रमण मास्स स्पेक्ट्रोमेट्री के साथ ही एक्स–रे क्रिस्टलोग्राफी द्वारा प्रोटीन का अध्ययन किया जाता है।

तनाव की अवस्था में कोशिका के भीतर एम.–आर. एन. ए. तुलना में प्रोटीन के स्तर में भारी विविधता देखी गयी है। प्रोटिओमिक्स आधारित तकनीक के माध्यम से पौधों में विभिन्न जैविक व अजैविक तनाव के सापेक्ष सम्बन्ध क्रियाशील

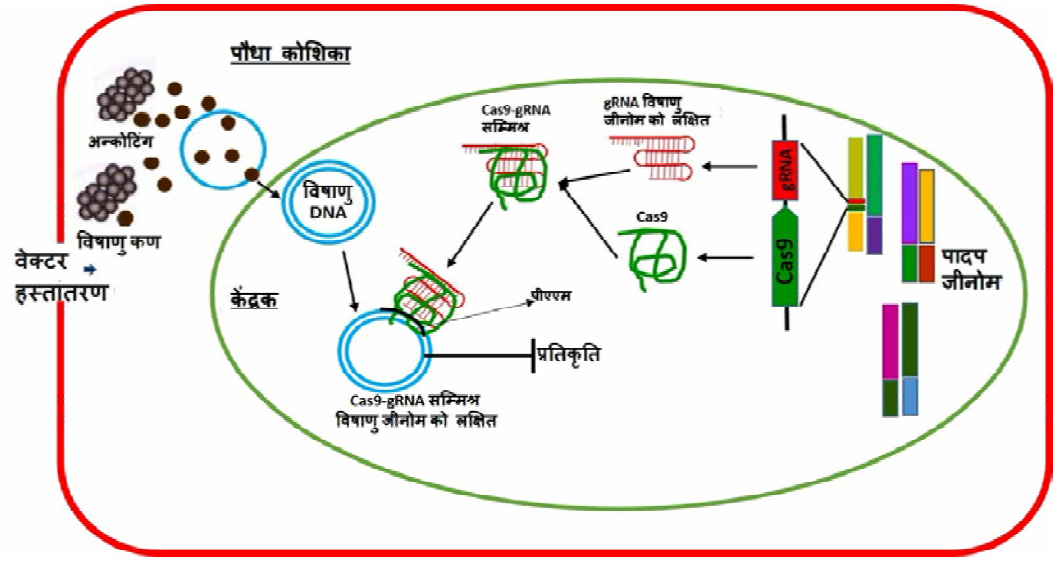

चित्र 4: जीनोम एडिटिंग के तहत सी. आर. आई. एस. पी. आर./ कैस–9 द्वारा विषाणु का प्रबंधन

प्रोटीन को जाना जा सकता है। मटर, फराशबीन इत्यादि के पौधों में लवण व परजीवी पौधे ऐरोबरांचे के प्रभाव से अत्यधिक उत्प्रेरित प्रोटीन की अभिव्यक्ति को देखा गया है।

मेटाबोलोमिक्स

इसके अन्तर्गत कोशिकाओं में होने वाले तमाम रसायनिक (मेटाबोलोमिक्स) क्रियाओं के फल स्वरूप उत्पन्न रसायनिक पदार्थों (आई. मेटाबॉलिट्स) का अध्ययन किया जाता है। इस विधा में पौधों में जैविक व अजैविक तनाव के फलस्वरूप इकट्ठा हुये मेटाबॉलिट्स का परिमाणात्मक व गुणात्मक विश्लेषण होता है। इस सन्दर्भ में तनावसे सम्बन्धित ज्यादातर अध्ययन फ्लैवोनॉइड पर आधारित पाये गये हैं। खासतौर पर सूखे, कम या अधिक तापमान व जल के खारापन से प्रभावित पौधों में फ्लैवोनॉइड जैसे विभिन्न मेटाबॉलिट्स का स्तर उल्लेखनीय पाया गया है जो इस तरह के मेटाबॉलिट्स की तनाव सहनशील में भागीदारी को इंगित करता है। इस आधार पर मटर तथा अन्य कई सब्जियों के पौधों में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न कराई गयी है। अध्ययन हेतु खास तौर पर नुक्लेअर मैग्नेटिक रेजोनेंस (एन.एम.आर.) स्पेक्ट्रोस्कोपी तथा मास स्पेक्ट्रोस्कोपी का प्रयोग किया जाता है।

जीनोम एडिटिंग

नवीन तकनीक क्लस्टरर्ड रेगुलर इंटरस्पेस्ड शॉर्ट पार्लिड्रोमिक रिपेट्स। सी. आर. आई. एस. पी. आर. द्वारा जीनोम संपादन संबंधित 9 (सी.आर.आई.एस.पी.आर./कैस–9) ने फसल सुधार के लिए प्रजनन की काफी उन्नत किया है। पूर्व तकनीक जैसे जस्ता फिंगर न्यूक्लियस, ट्रांसक्रिप्शन एक्टिवेटर प्रभावक न्यूक्लियस उन्नत से ये उत्तम तकनीक है सी. आर. आई. एस. पी. आर./कैस–9 टूल के साथ एक गैर विशिष्ट कैस 9 नुक्लिएसे और एक गाइड आर. एन. ए. है जो कैस–9 को निर्देशित करता है तथा विशिष्ट जीनोमिक स्थान पर डबल स्ट्रैंड ब्रेक और बाद की मरम्मत प्रक्रिया में सम्मिलन या विलोपन म्युटेशन करता है। यह वर्तमान में व्यापक रूप से अपनाया जाने वाला टूल है जो बड़ी संख्या में कृषि फसलों में आनुवंशिकी, फसल सुधार और फसल बीमारी में रोकथाम के लिए उपयोग किया जा रहा है किन्तु सब्जियों में अपर्याप्त टिश्यू कल्चर विधि तथा अपर्याप्त सीक्वेंस जानकारी के कारण ये सी. आर. आई. एस. पी. आर./कैस–9 विधि कुछ सब्जियों तक ही सीमित है। जैसे ही सभी सब्जियों का टिश्यू कल्चर विधि मानकीकरण होगा निश्चित् रूप से निकट भविष्य में ये तकनीक गति प्राप्त करेगी (चित्र 4)।

निष्कर्ष

सब्जियों में जैविक व अजैविक तनाव सहनशील जेनेटिक ट्रांसफॉर्मेशन, एम. ए. एस. के माध्यम से काफी प्रगति हुयी है। परन्तु अभी भी इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता हेतु पौधों में तनाव के दौरान होने वाले विभिन्न आन्तरिक परिवर्तनों को और अधिक जानने की आवश्यकता है। जैव प्रौद्योगिकी व जेनेटिक इंजीनियरिंग की विभिन्न पद्धतियों व उनसे प्राप्त परिणामों के समन्वय के द्वारा विभिन्न जैविक व अजैविक कारकों से उत्पन्न तनाव पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

सब्जियों एवं फूलों की संरक्षित खेती

प्रदीप कुमार सिंह

सब्जी विज्ञान विभाग

शेर–ए–कश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, शालीमार, श्रीनगर–190025 (जम्मू एंड कश्मीर)

बेमौसमी सब्जियों एवं फूलों की अधिकतम उत्पादकता लेने एवं उनकी गुणवत्ता बनाये रखने के लिए एक ढाँचे के ऊपर पॉलीथीन जो पारदर्शी एवं सूर्य की पराबैगनी किरणों के प्रति प्रतिरोधी होती हैं, से ढककर अंदर से सूक्ष्म वातावरण को पूरी तरह से या आंशिक रूप से नियंत्रित किया जाता है। इस तरह के ढाँचे को पालीहाउस या संरक्षित गृह कहते हैं। संरक्षित गृह का तापमान पॉलीथीन के कारण 5–10 डिग्री बढ़ जाता है। इस तापमान को गर्मी एवं सर्दी में अनेक तरीके से नियंत्रित कर सकते हैं। संरक्षित गृह के अंदर हम एक वर्ष में तीन से चार सब्जी वाली फसलें उगा सकते हैं क्योंकि इसके अंदर के वातावरण को फसल के अनुसार नियंत्रित किया जा सकता है। संरक्षित वातावरण में खेती करने से गुणवत्तायुक्त पैदावार ली जा सकती है। संरक्षित वातावरण में रोग एवं नाशीजीवों का प्रभावी नियंत्रण भी संभव है। विपरीत मौसम (अत्यधिक पाला, कोहरा, ओला, वर्षा, ठण्डी एवं गर्म हवा आदि) से फसलों का बचाव किया जा सकता है। पाली हाउस के अंदर बीजों का अंकुरण व जमाव शीघ्र होता है, परिणामतः सब्जियों की पौध एवं फूल शीघ्र तैयार होते हैं। यह तकनीक ग्रामीण महिलाओं एवं बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार का भी सुअवसर प्रदान करती है।

संरक्षित वातावरण में खेती की तकनीक 200 वर्षा से अधिक पुरानी है एवं इसका प्रयोग यूरोप में बहुतायत से होता आ रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय से इस तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। युद्ध के समय से ग्रीन हाउस तकनीक का उद्भव हुआ था। वर्तमान में 90 प्रतिशत नये ग्रीन हाउस का निर्माण अल्ट्रा वायलेट स्टेबिलाइज्ड पॉलीथीन की चादर से किया जाता है। भारत में यह तकनीकी अपने प्रारम्भिक अवस्था में है। भारत में ग्रीन हाउस उत्पादन के अन्तर्गत वर्ष 1999–2000 में कुल क्षेत्रफल 275,000 हे. था। पर्वतीय कृषि की विधि मैदानी क्षेत्रों से अलग होती है जिसका मुख्य कारण वातावरण के साथ–साथ अन्य कारक का अलग होना होता है। इसी को ध्यान में रखकर पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस तकनीकी को अपनाया गया है जिसमें तापमान, आर्द्रता, सूर्य का प्रकाश एवं हवा का आगमन फसलों की आवश्यकता अनुसार परिवर्तन करके फसलों के उत्पादकता के साथ–साथ गुणवत्ता भी बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार इस तकनीकी का उपयोग करके वर्ष भर बेमौसमी सब्जियों का उत्पादन आसानी से कर सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में सर्दियों के मौसम में तापमान इतना कम हो जाता है कि पौधों की बढ़वार रूक जाती है। इन्हीं पौधों को अगर संरक्षित वातावरण में उगाया जाता है तो इसमें पौधों की बढ़वार संतोषजनक रहती है। इस प्रकार यह तकनीकी पर्वतीय कृषि विकास को अधिक मजबूत बनाने में कारगर सिद्ध हो रही है।

संरक्षित वातावरण में कृषि विकास व रोजगार की दिशा में एक ऐसी तकनीक है जिससे अब लघु व सीमान्त किसान भी आय वृद्धि के सुनहरे भविष्य का सपना देख सकते हैं। यह तकनीक उन क्षेत्रों के किसानों के लिए विशेषकर उपयोगी है जहाँ पानी की कमी है। अतिवृष्टि या ओले तथा आवारा पशुओं व बंदरों आदि की समस्याएँ कृषि विकास में बाधा बन रही है। इसके द्वारा सब्जी उत्पादन क्षमता, मुक्त वातावरण के उत्पादन से न केवल 5 से 6 गुणा तक अधिक हो जाती है बल्कि उत्पादों की गुणवत्ता अति उत्तम हो जाती है। इसके अलावा समय पर नर्सरी तैयार की जा सकती है जिससे पॉलीहाउस के बाहर भी सब्जी एवं फूलों का क्षेत्रफल बढ़ाया जा सकता है। संरक्षित वातावरण में खेती एक पूँजी सघन व्यवसाय है जिसमें प्रारम्भिक पूँजी की बहुत आवश्यकता होती है। हालाँकि 80 से 85 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है, फिर भी किसानों को काफी प्रारम्भिक व कार्यकारी पूंजी की आवश्यकता रहती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 250 वर्ग मीटर वाले पालीहाउस के लिए सब्सिडी के अलावा लगभग 42 हजार रूपये प्रारम्भिक पूंजी तथा 16 से 20 हजार रूपये कार्यकारी पूंजी के रूप में खर्च करने पड़ते हैं। अतः उत्पाद के मूल्य संवर्धन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यहाँ पर उत्पाद का मूल्य ही सम्भावित आय व लाभ का द्योतक है। इसलिए उत्पादन के साथ मण्डी पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। किसान अपने क्षेत्र की जलवायु के अनुसार नगदी फसल को अपनाकर सीमित भूमि से उत्पादकता में वृद्धि करके अपनी आय को धीरे–धीरे बढ़ा सकता है। संरक्षित खेती के अन्तर्गत पौधों को ऐसा वातावरण प्रदान करना होता है, जिसमें पौधे आसानी से बढ़ सकें एवं जीवित

रह सकें। पौधो को जिस तापमान की आवश्यकता हो, आर्द्रता, नमी, प्रकाश इत्यादि को उनकी आवश्यकतानुसार प्रदान करना संरक्षित खेती कहलाती है। पौधों की बढ़वार हेतु अनुकूल वातावरण देने की तकनीक प्रदान की जाती है। बदलते परिवेश, बढ़ती जनसंख्या, घटते संसाधन, सिमटती भूमि के कारण भारत की जनसंख्या को उत्तम स्वास्थ्य के लिए 300 ग्राम गुणवत्तायुक्त व रासायनों के विषाक्ता से मुक्त सब्जियाँ प्रतिदिन उपलब्ध कराने का लक्ष्य है। विभिन्न प्रकार के जैविक व अजैविक कारक (बायोटिक एवं एबायोटिक) से प्रभावित साग–सब्जियाँ लम्बी अवधि तक (वर्ष भर) आवश्यकतानुसार उत्पादन देने में समर्थ है। इसलिए गुणवत्तायुक्त, आवश्यक मात्रा में सब्जियों एवं फलों की पैदावार बढ़ाने हेतु आज संरक्षित खेती करना अत्यन्त आवश्यक है। संरक्षित खेती में पौधों की बढ़वार के लिए उपयुक्त वातावरण, वर्ष भर उत्पादन, निर्यात योग्य उत्पादन, प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक उत्पादन, पौध लगाने के लिए उत्तम व्यवस्था, कीट रोग तथा खर–पतवार का उचित प्रबन्ध सम्मिलित होते हैं। संरक्षित खेती के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. बेमौसम में सब्जियाँ एवं फूल उगाकर भरपूर लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
2. गुणवत्तायुक्त उत्पादन किया जा सकता है। पॉलीहाऊस में उगने वाली सब्जियों एवं फूलों का आकार सुडौल, नियमित, आदर्श प्रकृति का तथा एक समान होते हैं जिससे ग्रेडिंग व पैंकिंग में काफी सुविधा होती है। इसके साथ–साथ उत्पादों के रंग में ज्यादा चमक व आकर्षण होता है।
3. संरक्षित खेती में सब्जी एवं फूल उगाकर विभिन्न प्रकार के जैविक (रोग व्याधियाँ एवं कीड़े मकोड़े) एवं अजैविक (वातावरणीय कारक जैसे वर्षा, तेज धूप, प्रकाश अतिवृष्टि इत्यादि) से फसल को बचाया जा सकता है जो खुले वातावरण में संभव नही है।
4. वर्ष भर (लम्बे समय तक) भरपूर पैदावार प्राप्त किया जा सकता है।
5. सामान्य की अपेक्षा 5–10 गुना अधिक सब्जियों एवं फूलों की पैदावार प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक पैदावार प्राप्त किया जा सकता है।
6. गुणवत्तायुक्त रासायनों के अवशेष से मुक्त सब्जियाँ एवं फूल उत्पादित करने का एकमात्र विकल्प है।
7. उच्च मानक की सब्जियों एवं फूलों की खेती करके अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है।
8. पौधों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण 24 घण्टे उपलब्ध कराया जा सकता है।
9. लागत का सही प्रयोग एवं बचत (पानी की 30–70 प्रतिशत बचत एवं उर्वरक का 40–60 प्रतिशत) का उपयुक्त माध्यम है।
10. पॉलीहाऊस तकनीक का प्रयोग नर्सरी पैदा करने में भी कर सकते हैं। सब्जियों एवं फूलों की नर्सरी बेचकर आय वृद्धि कर सकते हैं।
11. आर्थिक दृष्टि से वही फसलें उगाई जानी चाहिए जिनमें कम समय में ज्यादा से ज्यादा आय अर्जित की जा सके।
12. भण्डारण क्षमता पारम्परिक उत्पादों की अपेक्षा अधिक होती है। विशेषज्ञों के अनुसार सुडौल छिलका होने से इन फसलों के उत्पाद में संक्रमण भी कम होता है।
13. किसान भाई जैविक तकनीक का प्रयोग करके अपने उत्पाद को अधिक मूल्य पर बेचकर अपनी आय को दुगना कर सकते हैं।

पॉलीहाउस की योजना एवं निर्माण– पॉलीहाउस का निर्माण करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

1. इस बात का निर्णय कर लें कि कौन से पौधे इसमें उगाने हैं, वर्ष में पॉलीहाउस का प्रयोग कब करें एवं उत्पादित फसलों को कहाँ पर बेचेंगे।
2. यह भी चयन करें कि किस प्रारूप का पॉलीहाउस बनाना है।
3. स्थान का चयन करना भी संरक्षित खेती का एक मुख्य पहलू है। छायायुक्त स्थान की अपेक्षा अच्छी धूप वाले क्षेत्र का चुनाव करें। ठंडे बर्फीले क्षेत्रों में ऐसी जगह का चयन करें जिसमें पॉलीहाउस के उत्तर दिशा की तरफ घर की दिवार हो (चायनीज टाईप पॉलीहाउस) जो सौर ऊर्जा को दिन में संरक्षित करके रात को अवषोशित करें।
4. पॉलीहाउस कितने क्षेत्र में बनाना है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उसमें कितनी मात्रा में फसल को उगाना है।

5. ढकने के लिए पराबैगनी किरण स्थायीकृत चादर (शीट) का चयन करें।
6. निर्माण सामग्री का चयन करके हूपस बनाएं तथा उचित दूरी पर सीमेंट तथा रेत का मिश्रण बनाकर दबाकर रिज लाइन के साथ बाँध दे।
7. आखिर में प्रयुक्त होने वाली फ्रेम को हूपस के साथ कस कर बांध दे, तदोपरान्त सीमेंट के साथ भूमि में गाड़ दें।
8. इसकी संरचना को परख लें तथा नुकीले जोड़ को समतल करें तथा प्लास्टिक शीट से ढक दें।
9. कवरिंग शीट को कसकर फ्रेम के आखिर में पेंच तथा स्ट्रिप से बाँध दे ताकि यह हवा से क्षतिग्रस्त न हो।
10. बची हुई शीट को जमीन में दबा दें।
11. पॉलीहाउस के ऊपर छायादार जाली के सही संचालन के लिए पहली और आखरी ट्रस पर मोटी प्लास्टिक चादर (शीट) या रिब्बन का प्रयोग करें।
12. सामान्यतया पॉलीहाउस पूर्व दिशा में बनाए परन्तु अधिक हवा वाले क्षेत्रों में पॉलीहाउस हवा की दिशा के समानान्तर बनाएँ।
13. आदर्श पॉलीहाऊस का निर्माण करें जिसमें दोहरा दरवाजा, साइड वेन्टीलेशन, पर्याप्त टॉप वेन्टीलेशन, टपक विधि द्वारा सिंचाई, फॉगर या मिस्टर, 50 मैश यू.वी. स्टैब्लाइज्ड नाईलॉन की जाली व बाहर या अंदर से 50 प्रतिशत यू. वी. स्टैब्लाइज्ड छायादार जाले आदि घटक आवश्यक है। यदि किसान उपरोक्त छः घटकों का पॉलीहाउस निर्माण में सुनिश्चित करें तो अधिकतर समस्याओं का निदान आसानी से कर सकते हैं।

संरक्षित खेती के अंतर्गत संरचना के प्रकार– संरक्षित खेती के अंतर्गत वातावरण को नियंत्रित करने वाले कारक के आधार पर संरक्षित वातावरण कई प्रकार के होते हैं जिनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है:

1. ग्रीन हाउस/पॉलीहाऊस (फाइटोट्रानिक प्रकार)

इस प्रकार के ग्रीन हाउस में विभिन्न वातावरणीय कारक जैसे तापमान, आर्द्रता, वायु संचार, प्रकाश इत्यादि को नियंत्रित करने के लिए स्वचालित उपकरण लगे होते हैं जिनका नियंत्रण कम्प्यूटर द्वारा किया जाता है। इसके अलावा इसमें उगाये गये पौधों की बढ़वार एवं फूलने एवं फलने की

कार्यिकी को नापने के लिए भी यंत्र लगे रहते हैं। इस तरह के पॉलीहाउस बहुत महंगे होते हैं अतः इसमें निर्यात के लिए उगाई जाने वाली फसलें जैसे अल्प प्रचलित एवं कीमती सब्जी एवं फूल को ही उगाया जाता है ताकि किसान भाई को अच्छी आय प्राप्त हो सके। यह संरक्षित विधि अपेक्षाकृत अधिक महंगी होती है परन्तु इसमें कुछ बातें ध्यान में रखें तो निश्चित ही थोड़े समय बाद आय बढ़ने लगती है कुछ समय बाद किसान भाई की लागत निकल आती है एवं समय बितने के साथ आय भी बढ़ने लगती है।

इजरायली टाइप पॉली हाउस

इस प्रकार के पालीहाउस को साधारण जी. आई. पाइप के ऊपर अल्ट्रावायलेट स्टेबिलाइज्ड पॉलीथीन (80 गज) की चादर से बनाया जाता है। वायु संचार के लिए इक्जास्ट फैन लगाया जाता है। इसके साथ ही पैड एवं फैन सिस्टम का भी प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के पॉलीहाउस हमारे देश में जाड़े की सब्जियों को उगाने के लिए उपयुक्त है। इसमें तापक्रम 5–7 डिग्री सेंटीग्रेड तक नियंत्रित किया जा सकता है। शेडनेट हाउस– इस प्रकार के ढाँचे का प्रयोग अधिक तापमान को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है। इसमें ग्रीष्म ऋतु में टमाटर, शिमला मिर्च की खेती करके किसान भाई बेमौसमी सब्जियाँ एवं फूल लगाकर अपनी आय प्राप्त कर सकते हैं।

पलवार (पालीथीन मल्च)

खेत में पालीथीन का प्रयोग पलवारया पलवार के रूप में करते हैं ताकि तापमान नियंत्रित कर सकें, जमीन की सतह से पानी उड़ने से बचाने (वाष्पोत्सर्जन), खर–पतवार नियंत्रण,

कीड़े–मकोड़ों से बचाव पौधों को मृदा में पाये जाने वाले जीवाणु रोगों से बचाया जाता है। खेत में पलवार करके किसान अपनी लागत में कमी ला सकता है एवं उत्पादन में गुणवत्ता के साथ उपज बढ़ाकर दुगनी आय प्राप्त कर सकता है।

चायनीज टाइप पॉलीहाऊस

चायनीज पाईप पॉलीहाउस का आकार 100 × 20 फीट होता है। इस प्रकार के पॉलीहाउस का व्यवसायिक स्तर पर उपयोग मुख्य रूप से लद्दाख क्षेत्र में किया जाता है। इस तरह का पॉलीहाउस जाड़े के महीने में सब्जी उत्पादन हेतु उपयुक्त है। जाड़े के मौसम में इस तरह के पॉलीहाउस के पालक की 20 कटिंग ले सकते हैं। इसके अलावा पत्तागोभी के हेड 800–2000 ग्राम भार के फरवरी माह के अंत तक तैयार कर लेते हैं। शिमला मिर्च की भी खेती करते हैं। इस प्रकार के पॉलीहाउस में सब्जियों की पौध भी तैयार कर सकते हैं। परिणामस्वरूप किसान अपनी आय में वृद्धि करते हैं। सारिणी–1 में इस प्रकार की संरचना में खेती करने के समय का वर्णन निम्नलिखित है।

सारिणी–1 : चायनीज टाइप पॉलीहाउस में उत्पादन का कार्यकाल

सब्जियाँ	उगाने का समय
पालक, पत्ता गोभी, चायनीज कैबेज, लेट्यूस, केल	15 दिसम्बर से 15 अप्रैल
सब्जियाँ एवं वार्षिक फूल नर्सरी	1 अप्रैल से 1 मई
रंगीन शिमला मिर्च (हरा, लाल, पीला, नारंगी)	मई से नवम्बर

ट्रेंच तकनीक

यह तकनीक बहुत पुरानी है एवं यह सस्ती भी है। ट्रेंच तकनीक द्वारा सब्जियों का उत्पादन अधिक ठंडे प्रदेशों में किया जाता है। ट्रेंच विधि द्वारा चार कक्ष जमीन के अंदर बनाये जाते हैं। प्रत्येक कक्ष का आकार 6 मी. × 4 मी. × 1.5 मी. के आकार के होते हैं। जमीन की सतह पर पॉलीथीन की चादर से ढक देते हैं ताकि इनको सुरक्षित रखा जा सके। इसके निर्माण के लिए अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता नहीं होती है। इसका रख–रखाव भी बहुत सरल है। इसके निर्माण में लागत बहुत कम लगती है। संरक्षित खेती में यह विधि बहुत सस्ती एवं टिकाऊ है। इस तकनीक द्वारा निर्मित कक्ष में ऊर्जा एवं ताप की खपत बहुत कम होती है। तेज हवाएँ इसको किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाती है जिसके फलस्वरूप इसकी पॉलीथीन अधिक समय तक चलती है। यह संरक्षित संरचना ठंडे क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई है। इस ट्रेंच संरचना के द्वारा सब्जियों की पौध अगेती एवं पहले तैयार हो जाती है जिसके द्वारा किसान भाई को पौधशाला से ही आय हो जाती है। प्रस्तुत सारिणी 2 में उत्पादन तकनीक का वर्णन निम्नलिखित है।

सारिणी–2: ट्रेंच तकनीक द्वारा उत्पादन का कार्यकाल

सब्जियाँ	उगाने का समय
पालक	15 जनवरी से 15 अप्रैल
सब्जियाँ एवं एकवर्षीय फूल नर्सरी	1 अप्रैल से 1 मई
कद्दू वर्गीय सब्जियाँ, टमाटर, पालक	जून से नवम्बर

प्लास्टिक लो टनल तकनीक

प्लास्टिक लो टनल तकनीक के द्वारा ऑफ सीजन सब्जियों का उत्पादन करके किसान भाई बाजार में वर्ष भर सब्जियों को उपलब्ध करवा सकते हैं एवं सब्जियों को अच्छे भाव या कीमत पर बेच कर अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। यह तकनीक सस्ती एवं कम खर्चीली है। लो टनल के द्वारा खेती करने के बहुत लाभ हैं– जैसे प्रतिकूल वातावरण में फसल को सुरक्षा प्रदान करता है एवं साथ ही इन फसलों को

20–25 दिन पहले तैयार होने में मदद करता है फलस्वरूप किसान की फसल मुख्य समय से पहले बाजार में उपलब्ध हो जाती है और उचित मूल्य मिलता है। लो टनल तकनीक के द्वारा पौधशाला में पौधे स्वस्थ एवं अगेती (पहले) तैयार हो जाते हैं। इस विधि द्वारा किसान भाईयों ने समर स्कैवश में उत्पादन दुगना किया है एवं अधिक लाभ कमाया है। उत्पादन की विस्तृत जानकारी सारिणी–3 में निम्नलिखित है।

सारिणी–3: लो टनल द्वारा उत्पादन का कार्यकाल

सब्जियाँ	उगाने का समय
लहसुन	15 जनवरी से 15 अप्रैल
सब्जियाँ नर्सरी	15 अप्रैल से 15 मई
कद्दू वर्गीय	जुलाई से नवम्बर

अपने ही मन से कुछ बोलें

क्या खोया, क्या पाया जग में, मिलते और बिछुड़ते मग में, मुझे किसी से नहीं शिकायत, यद्यपि छला गया पग–पग में एक दृष्टि बीती पर डालें, यादों की पोटली टटोलें। पृथ्वी लाखों वर्ष पुरानी, जीवन एक अनन्त कहानी, पर तन की अपनी सीमाएं, यद्यपि सौ शारदा की वाणी। इतना काफी है अंतिम दस्तक पर, खुद दरवाजा खोलें। जन्म–मरण अविरत फेरा, जीवन बंजारों का डेरा, आज यहाँ, कल कहाँ कूच है, कौन जानता किधर सवेरा। अंधियारा आकाश असीमित, प्राणों के पंखों को तौलें, अपने ही मन से कुछ बोलें।।

– अटल बिहारी वाजपेयी

कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती फसल उगाने की विधियाँ

डी. आर. भारद्वाज, त्रिभुवन चौबे, के. के. गौतम, ए. के. सिंह, डी. पी. महारणा' एवं संदीप कुमार

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश
'उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005, उत्तर प्रदेश

भूमि उपयोग सुधारने, फसल विविधता को बढ़ावा देने, रोजगार के अवसर बढ़ाने तथा देश की जनता को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान करने तथा किसानों की आय की वृद्वि के लिये सब्जियों की अगेती सब्जी उत्पादन आवश्यक है। भारतवर्ष में अगेती सब्जियों की खेती मैदानी, नदियों के किनारे एवं पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर समुद्र के तटवर्ती भागों तक सफलतापूर्वक की जा रही है। उदाहरण के लिये बिहार राज्य के सोन नदी के किनारे दिसम्बर महीने में ककड़ी एवं उत्तर प्रदेश में गंगा के किनारे अगेती कद्दू वर्गीय सब्जियों की उपलब्धता एक मिशाल है। उत्पादन योजना एवं तकनीकी समावेश के द्वारा देश के किसी न किसी भू–भाग में कम लागत पर सब्जियों का अगेती खेती हमेशा किया जा सकता है, जिससे सब्जियों की उपलब्धता पूरे वर्ष बनी रह सकती है तथा निर्यात को बढ़ावा देकर आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में भी आशातीत सफलता प्राप्त की जा सकती है।

नदियों के किनारे कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती खेती

नदियों के किनारे यानि दियरा क्षेत्र में कद्दू वर्गीय सब्जियों की खेती करना एक प्राचीनतम पद्धति है। वर्तमान समय में दक्षिण एशिया के कई देशों में नदियों के किनारे बाढ़ समाप्त होने के बाद अनेकों कद्दू वर्गीय सब्जियां जैसे–लौकी, खीरा, खरबूजा, तरबूज, चिकनी तोरी, नसदार तोरी, करेला आदि की खेती व्यापक पैमाने पर की जाती है। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि कद्दू वर्गीय सब्जियों के कुल खेती का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्रफल दियरा या शीतों के किनारे का होता है। गर्मी के मौसम में सामान्यतः 75–80 प्रतिशत कद्दू वर्गीय सब्जियाँ इन्हीं क्षेत्रों से उत्पादित होकर बाजार में उपलब्ध होती हैं। दियरा क्षेत्र को भारतवर्ष में खादर जमीन, चार जमीन या ताल दरियारी, कोचर, नद तली या नदियारी आदि नामों से जाना जाता है। सब्जियों की खेती करने के लिए दियरा क्षेत्र में थाले व नालियों का निर्माण बाढ़ समाप्त होने के बाद किया जाता है। सामान्यतः यह समय अक्टूबर व नवम्बर का महीना होता है। नालियों का निर्माण पूरब–पश्चिम दिशा में किया जाता है क्योंकि इस दिशा में नालियां बनाने से खेत में उपलब्ध नमी व उच्च तापमान को नियन्त्रित करने में सफलता मिलती है। नालियों को 50.0–60.0 सेन्टी मीटर चौड़ा व 45.0–90.0 सेन्टी मीटर गहरा (सतही जल की स्थिति के अनुसार) रखते हैं। कहीं–कहीं पर 60.0–90.0 सेन्टी मीटर पर ही उपयुक्त मिट्टी व नमी प्राप्त हो जाती है। थाले का निर्माण अगार या चोंगा द्वारा 35.0–40.0 सेन्टी मीटर व्यास में 90.0 सेन्टी मीटर की गहराई तक करते हैं और बालू को निकाल देते हैं। प्रत्येक थाले में 4–5 किलोग्राम अच्छी प्रकार सड़ी हुई गोबर की खाद, मिट्टी, 40.0 ग्राम यूरिया, 60.0 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश व 80.0 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट मिश्रित कर भरना चाहिए। थाले में उपरोक्त मिश्रण को भरकर एक सप्ताह तक के लिए छोड़ देना चाहिए। सम्भव हो तो इन नालियों व थालों में हल्का पानी लगा देना चाहिए जिससे उर्वरक व खाद आपस में मिश्रित होकर सतह बना लें। नालियों व थालों की आपसी दूरी फसल के अनुसार 2.0–2.5 मीटर रखते हैं। यह दूरी फसल की किस्मों के अनुसार भी घटाया–बढ़ाया जा सकता है। थाले बनाते समय यह ध्यान देना चाहिए कि थाले की ऊँचाई जमीन की सतह से 10.0 सेन्टी मीटर उपर हो। इतनी ऊंचाई रखने से थाले में नमी पर्याप्त मात्रा में बनी रहती है और जड़ को मजबूती मिलती है अन्यथा तेज हवा के कारण बालू की सतह जड़ों के पास से हट जाती है। पहले दियरा क्षेत्र में खाद व उर्वरक का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता था लेकिन वर्तमान समय में कई प्रकार के उर्वरकों का प्रयोग किया जा रहा है। दियरा क्षेत्र में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग सावधानी पूर्वक करना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि इन क्षेत्रों में फसल केवल एक मौसम में ही ली जाती है। अतः कम मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग केवल जड़ क्षेत्र में आधारीय रुप में किया जाता है। दियरा क्षेत्र में कद्दू वर्गीय सब्जियों से अच्छी फसल लेने के लिए गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट, मूंगफली की खली, अरण्डी की खली व महुवा की खली सर्वप्रथम थालों में गड्ढा बनाकर देना चाहिए। थाले में प्रचुर मात्रा में सिल्ट का प्रयोग जरुर करना चाहिए इससे जड़ क्षेत्र में जल

की उपलब्धता बनी रहती है। उपरोक्त कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से जड़ क्षेत्र में गर्मी भी बनी रहती है, जिसके कारण पौधों का विकास होता रहता है। विकसित हो रहे पौधों के उपर पुष्पन से पूर्व पर्णीय छिड़काव का भी सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त हुए है। सामान्यतः उत्तर पश्चिम भारत में दिसम्बर एवं जनवरी के महीने में तापमान 1.0–2.0 डिग्री सेन्टीग्रेड तक नीचे आ जाता है। इस दशा में कोमल पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। इसी प्रकार अप्रैल से जून तक तापमान 46–48 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुँच जाता है जिससे पौधे झुलसने लगते हैं तथा फल की वृद्धि–विकास एवं परिपक्वता प्रभावित होती है। अतः विपरीत परिस्थितियों से पौधों को बचाने के लिए स्थानीय रुप से उपलब्ध सरपत, गन्ने की पत्ती या अन्य खर–पतवार से थैच बनाना चाहिए। ठण्डक के समय घास की पत्तियों को पौध के पास पड़े बालू पर फैला देना चाहिए। उससे बढ़ते पौधों को नुकसान से मुक्ति मिलती है। उसी प्रकार इनके प्रयोग से गर्म हवाओं व तापमान की अधिकता के समय कोमल फलों को भी नुकसान नहीं होता है। वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि खेत में पाला से बचाव के लिए पालीइथीलीन के चादरों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाये।

कद्दू वर्गीय सब्जियों की संरक्षित दशा में अगेती खेती

शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, बाजार आदि के बढ़ने से भारतवर्ष में प्रति व्यक्ति जोत की उपलब्धता मात्र 0.8 –0.12 हेक्टेयर है। भारत वर्ष में 1999–2000 में संरक्षित खेती का क्षेत्रफल 275000 हे. था जो आज बढ़कर 486000 हे. हो गया है। इसके अलावा कुल उपज को प्रभावित करने वाले घटकों जैसे–भौगोलिक (ऊँची–नीची जमीन, रेगिस्तान, पहाड़, नदी–नाले आदि) प्राकृतिक प्रकोप (कीड़े बीमारियों का प्रकोप, बाढ़, सूखा आदि), भूमण्डली करण, उष्णता आदि को समाहित कर लिया जाये तो स्थिति और भी भयावह हो जाती है। भारतीय परिदृश्य में सब्जियों की संरक्षित खेती समय की माँग है। आज जिस प्रकार से आबादी बढ़ी है, उनकी पोषण सुरक्षा में संरक्षित खेती के महत्व को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। कद्दू वर्गीय सब्जियों की प्रतिकूल वातावरण में सब्जी उत्पादन करने के लिए अनुकूल व नियंत्रित दशा देने वाली विकास करना पड़ेगा। मौसम व बेमौसम पौधों के संतुलित विकास के लिए उपयोगी सूक्ष्म वातावरण तकनीकी का संरचनात्मक ढांचा व आवश्यक पोषक तत्व पौधे के आस–पास आंशिक या पूर्ण रूप से नियंत्रित दशा से उपलब्ध हो तथा उन्हें जीवीय व अजीवीय सुरक्षा प्रदान करते हुए गुणवत्तायुक्त उत्पाद को अधिक मूल्य पर बाजार में विक्रय करना है।

(1) ग्रीन हाउस

ग्रीन हाउस का तात्पर्य ''प्लास्टिक + ग्लास हाउस'' होता है, जिसके अन्तर्गत केवल 2,79,000.0 हेक्टेयर क्षेत्रफल आता है। वर्ष 1992 में डच ग्रीन हाउस उत्पादित सब्जियों का मूल्य 1.6 यू. एस. विलियन डालर था जबकि कनाडा में 98.0 यू. एस. डालर था। अमेरिका में ग्रीन हाउस सब्जी उद्योग के अन्तर्गत सन् 1988 में कुल क्षेत्रफल 120.0 हेक्टेयर था, जिससे 31.7 यू.एस. मिलियन डालर का विक्रय किया गया था (सिन्डेर, 1993)। ग्रीन हाउस के अन्तर्गत नियंत्रित वातावरण उत्पन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार के कम्प्यूटर युक्त संसाधन, यांत्रिक मशीने तथा संरचनात्मक ढाँचा की आवश्यकता पड़ती है। इसके अलावा भौतिक, रसायनिक एवं जैविक घटक जो वातावरण उत्पन्न करती हैं और पौधों के साथ क्रिया कर उत्पाद देती हैं, फसल विकास, कैसे पौध विकास को परिवर्तित किया जाये और फसल पर लगने वाले कीट–रोग आदि का तकनीकी प्रबन्धन का ज्ञान आवश्यक है। संरक्षित खेती करने के लिए प्रयोग की जाने वाली संरचनाएं निम्नवत हैं:

1. ग्लास हाउस
2. पाली हाउस
3. मिस्ट हाउस
4. पाली टनल हाउस
5. छायादार जाली घर (शेडिंग नेट हाउस)
6. कीटरोधी जाली घर
7. वर्षारोधी घर (रेन सेल्टर)
8. लठ हाउस
9. फ्रेम हाउस
10. हाट बेड
11. क्लोचेज
12. फाइट्रोट्रान ग्रोथ चैम्बर

(2) टनेल

1. लो टनेल
2. फ्लोटिंग कवर

1. ग्लास हाउस

ग्लास हाउस का निर्माण एल्यूमिनियम की फ्रेम संरचना पर पारदर्शी काँच या शीशे से ढककर बनाया जाता है। अतः इसे ग्लास से ढककर बने होने के कारण इस हाउस को ग्लास हाउस के नाम से पुकारते हैं। संरक्षित खेती करने के लिए सर्वप्रथम ग्लास हाउस का निर्माण द्वितीय विश्व युद्ध के समय बनाया गया था, जिसमें ज्यादातर बेमौसमी सब्जियाँ पूरे वर्ष उगाई जाती थी। ऐतिहासिक तथ्यों से पता चलता है कि 18वीं शताब्दी में ग्लास हाउस के माध्यम से टमाटर, खीरा, सलाद, ऐस्पारगस आदि फसलें शौकिया तौर पर फ्रांस व ब्रिटेन में उगाई जाती थी। चूँकि ग्लास हाउस में प्रयोग होने वाला पदार्थ शीशा (काँच) काफी महँगा व आँधी, ओला आदि से जल्द टूटने के कारण सामान्यतः ज्यादा प्रचलन में नहीं आ सका। इस प्रकार के हाउस का प्रयोग महँगा केवल बहुत आवश्यक फसलों व गहन वैज्ञानिक शोध के लिए उपयुक्त पाया गया है। क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुसार इसकी संरचना वर्गाकार, त्रिभुजाकार, गुम्बदाकार आदि होती है। पारदर्शी होने के कारण ज्यादा ऊष्मा का आगमन व निर्गमन प्रकाश पर अनियंत्रण (90.0–95.0 प्रतिशत) आदि अनेकों समस्याएँ आती हैं। वर्तमान समय में सामग्री के आधार पर पारदर्शी ग्लास हाउस या ''पारदर्शी फाइबर ग्लास'' का निर्माण गुणवत्ता व लागत के आधार पर पूर्ण नियंत्रित, अर्द्ध नियंत्रित या प्राकृतिक वातायन ग्लास हाउस के निर्माण का प्रचलन है। ग्लास हाउस में टमाटर, भिण्डी, खीरा, ऐस्परागस, मिर्च आदि को उगाकर लाभ कमाया जा सकता है।

2. पाली हाउस

जैसा कि पाली नाम से स्पष्ट है कि संरचनात्मक ढाँचे पर प्लास्टिक से ढककर तैयार हाउस को पाली हाउस कहते हैं। यह संरचना संरक्षित खेती के लिए सबसे उपयोगी एवं कम लागत वाली है। ठण्डे क्षेत्रों या मैदानी भागों में शीत ऋतु में तापमान काफी नीचे चला जाता है, अतः ऐसी स्थिति में सामान्य दशा में खेती करना मुश्किल होता है। इस संरचना में ठण्डक में तापमान व आर्द्रता दोनों ज्यादा होती है। बन्द संरचना के कारण हाउस में कार्बन डाई आक्साइड में वृद्धि हो जाती है, जिससे पौधों की वृद्धि ज्यादा होती है और फलत उपज में वृद्धि होती है। पाली हाउस में सब्जियों का उत्पादन महँगा तो होता है, लेकिन निश्चित रूप से गुणवत्ता अच्छी होती है तथा लाभ भी अच्छा होता है।

सारिणी 1: पाली हाउस में प्राप्त उपज का तुलनात्मक अध्ययन

सब्जी फसल	पाली हाउस में उपज (किलो ग्राम/वर्ग मीटर)	प्राकृतिक वातावरण में उपज (किलो ग्राम/वर्ग मीटर)
खीरा	18.00	8.00
चप्पन कद्दू	10.50	3.70

पाली हाउस के अन्दर प्रमुख घटक जैसे सूर्य का प्रकाश, तापमान, आर्द्रता, आक्सीजन, कार्बन डाई आक्साइड, ठण्डक, वाष्पोत्सर्जन व पूर्ण वातायन का समायोजन तकनीकी रूप से स्थिर करने से उपज में आशातीत वृद्धि होती है। पाली हाउस का निर्माण जी. आई. पाइप द्वारा करते हैं, जिसकी उम्र 20–25 वर्ष तक होती है या स्थानीय स्तर पर उपलब्ध बाँस या लकड़ी द्वारा करते हैं, जिसकी उम्र केवल 3–4 वर्ष तक होती है। पारदर्शी पालीथीन चादर से हाउस के अन्दर 70.0–80.0 प्रतिशत तक सूर्य की रोशनी प्राप्त होती है। ढकने वाली संरचना अल्ट्रावायलेट किरणों से प्रतिरोधी पालीथीन की चादर, पाली विनायल क्लोराइड फिल्म पालीस्टर फिल्म, एल. डी. पी. ई. पी. वी. सी. ई. वी. ए. एक्रीलिक, पालीकार्बोनेट आदि का बना होता है। पाली हाउस में 50.0–100.0 किलो ग्राम/मीटर दबाव सहन करने की क्षमता होती है। एक अध्ययन में पाया गया है कि पाली हाउस के अन्दर ढकने वाली संरचना से कितनी प्रकाश एक पर्त या दो पर्त लगाने से होगी, नीचे की सारिणी में दिया गया है:

सारिणी 2: ढकने वाली संरचना में प्रकाश हेतु पर्त

पारदर्शी सामग्री	प्रकाश उपलब्धता (प्रतिशत)	
	एक पर्त	दो पर्त
पारदर्शी शीशा (3.0 मिली मीटर)	88	78
पारदर्शी पालीथीन चादर (100 माइक्रान)	89	79
पारदर्शी पालीकार्बोनेट चादर	84	73
पारदर्शी पालीएस्टर	86	78
पारदर्शी फाइबर शीशा (1000 माइक्रान)	79	62

स्रोत: ग्रीन हाउस डिजाइन एण्ड इनवायरान्मेन्टल कन्ट्रोल, एन. सी. पी. ए. एच., कृषि, सहकारिता और किसान कल्याण विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

पाली हाउस का निर्माण हमेशा हवा चलने के अनुरूप पूरब–पश्चिम दिशा में बनाना उपयुक्त रहता है। इसके संरचनात्मक ढाँचा की तैयारी भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार अर्द्धचन्द्राकार, त्रिभुजाकार, बहुस्तरीय, लीन–टू टाइप, भूमिगत ट्रेन्च टाइप, आर्क टाइप, इलियोटिकल टाइप, हापरवोलिक या पैरावोलिक टाइप, लो टनेल टाइप, छातानुमा आदि के प्रकार अपनी आवश्यकतानुसार कम, मध्यम व अधिक लागत वाली बनायी जा सकती है। अगर वातावरणीय प्रभाव को देखा जाये तो पाली हाउस प्राकृतिक वातायन वाले, कृत्रिम वातायन वाले या वाष्पीकृत शीतलन पाली हाउस बनाये जाते हैं। भारतीय परिस्थितियों के अनुसार अनेकों माडल जैसे–पूसा माडल, पूना माडल, बेंगलौर माडल, लेह–लद्दाख माडल, जोरहट माडल, आई.आई.टी. माडल आदि प्रचलित है।

पाली हाउस को चलाने के लिए सबसे ज्यादा मांग बिजली की होती है। विश्लेषण में पाया गया कि पाली हाउस में नियंत्रित वातावरण उत्पन्न करने के लिए आकार के अनुसार बिजली की मांग निम्नवत है–

सारिणी 3: पाली हाउस के आकार के अनुसार बिजली की माँग

पाली हाउस का आकार (वर्ग मीटर)	बिजली की आवश्यकता एम्पीयर/वोल्ट
500.0–1000.0	60/240
1000.0–2000.0	100/240
2000.0–3000.0	150/240
3000.0–4000.0	200/240
4000.0–8000.0	400/240
8000.0–12000.0	600/240

स्रोत: ग्रीन हाउस डिजाइन एण्ड इनवायरान्मेन्टल कन्ट्रोल, एन. सी. पी. ए. एच., कृषि, सहकारिता और किसान कल्याण विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

3. लो टनेल पाली हाउस

लो टनेल पाली हाउस या रो कवर एक अस्थायी संरचना है, जो वर्तमान समय में संरक्षित खेती का प्रमुख अंग है। यह पाली हाउस/ग्रीन हाउस के सिद्धान्त पर कार्य करता है, लेकिन आकार कम होता है। इसकी संरचना छोटे–छोटे सुरंग या गुफा जैसी प्रतीत होती है। लो टनेल बनाने के लिए 25–30 पतली व पारदर्शी पालीथीन चादर से ढककर बनाते हैं। इसका प्रयोग केवल एक ही बार किया जा सकता है क्योंकि पतला चादर होने के कारण फट जाता है। पाली लो टनेल हाउस के निर्माण के लिए 50–100 माइक्रान या 100 जी. एस. एम. वाली पारदर्शी पालीथीन चादर का इस्तेमाल करते हैं। विदेशों में ज्यादा संख्या में इस प्रकार की संरचना मशीन द्वारा बनाई जाती है। संरचना हेतु 4.0–6.0 मिली मीटर मोटी लचीली लोहे या एल्यूमिनियम की तार या बाँस की फट्टियों या लकड़ी या प्लास्टिक पाइप से अर्द्धवृत्ताकार चाप बनाकर करते हैं। लो टनेल का आकार 1.0–1.5 मीटर चौड़ा तथा 0.5–1.0 मीटर ऊँचा होता है। आवश्यकतानुसार लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई बढ़ा सकते हैं।

4. छायादार जालीधर

वर्तमान समय में छायादार जालीधर जिसे शेडनेट हाउस भी कहा जाता है, का सब्जी उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है। इसके लिए विभिन्न रंगों वाली नायलान या प्लास्टिक की जाली प्रयोग की जाती है। छाया प्रदान करने के कारण इसे छायादार जाली कहते हैं। बाजार में 25.0–90.0 प्रतिशत छाया प्रदान करने वाली जाली उपलब्ध है। उपयोगिता के आधार पर 25, 35, 40, 50, 60, 75, 90 प्रतिशत या 25.0–

सारिणी 4: लो टनेल के अर्न्तगत वायु एवं मृदा तापक्रम (डिग्री फारेन हाइट)

उपचार		दिन		रात्रि	
		औसतन	अधिकतम	औसतन	अधिकतम
वायु तापक्रम	खुला (बिना कवर)	73.7	90.00	51.40	32.00
	छिद्र युक्त कवर	83.8	107.00	53.00	36.00
	बिना छिद्र युक्त कवर	99.1	130.00	57.40	38.00
मृदा तापक्रम	खुला (बिना कवर)	68.20	89.00	60.70	50.00
	पालीथीन कवर	71.30	90.00	66.30	56.00
	छिद्र युक्त कवर	75.80	95.00	67.00	56.00
	बिना छिद्र युक्त कवर	89.40	112.00	73.00	60.00

सारिणी 5: टनेल में अगेती सब्जियों की अनुमानित उपज व आर्थिकी

सब्जी फसल	फसल अवधि	उपज (टन/हेक्टेयर)	अनुमानित लागत लाभ अनुपात
चप्पन कद्दू	मध्य नवम्बर–मध्य फरवरी	40.0–50.0	1:2.0–2.5
लौकी	मध्य अक्टूबर–मध्य फरवरी	25.0–30.0	1:2.5–3.0
खीरा	मध्य अक्टूबर–30 फरवरी	15.0–20.0	1:2.5–3.0

30.0, 40.0–45.0, 50.0–55.0, 65.0–70.0, 85.0–90.0 प्रतिशत औसत छाया वाली पराबैंगनी किरणों से प्रतिरोधी 2.0 मीटर, 2.6 मीटर, 3.0 मीटर, 4.0 मीटर, 5.3 मीटर व 7.0 मीटर तक चौड़ी तथा 25.0 मीटर, 30.0 मीटर और 50.0 मीटर लम्बी हरे, काले, पीले, नीले, चाँदनी, सफेद, लाल आदि रंगों में प्राप्त किया जा सकता है। छायादार जाली का उपयोग भी सब्जियों की नर्सरी में पौध उत्पादन हेतु उपयुक्त पाया गया हैं। इस संरचना में पत्तीदार सब्जियों की खेती ज्यादा लाभकारी हैं। इसके प्रयोग से खुले खेत की तुलना में जमीन से नमी ज्यादा समाप्त नही होती है। अगर एकाएक वर्षा हो जाये तो नीचे विकसित हो रहे पौधों को कोई नुकसान नही होता है। गर्मी में तेज लू व आधी से भी बचाव होता है।

5. कीट रोधी जालीघर

संरक्षित खेती के अन्तर्गत कीट जाली घर बनाकर खेती का प्रचलन भी धीरे–धीरे बढ़ रहा है। इसके पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि मुक्त/प्राकृतिक वातावरण में खेती करने से 30.0–40.0 प्रतिशत उपज कीड़ों के प्रकोप से प्रभावित होकर सड़ जाते हैं या टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं, जिससे कुल उपज व गुणवत्ता दोनों खराब हो जाती है। अगर इनके बचाव के लिए कृषि रसायनों का उपयोग किया जाये तो उपज बाजार में विक्रय योग्य नही रहती है। कीट रोधी जाली घर बनाने के लिए 20–40 मेस प्रति वर्ग इंच वाली महीन जाली (मच्छरदानी जैसी) उपयुक्त होती है, जिसके अन्दर कीड़े–मकोड़े

चित्र: मचान पर कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती

प्रवेश नहीं कर पाते हैं। परा बैंगनी किरणों से अवरोधी जाली 20 x 20, 40 x 40, 50 x 50, 50 x 60 व 120 x 60 मेस प्रति वर्ग इंच वाली 48.0–52.0 इंच चौड़ी एवं 50.0–100.0 मीटर लम्बी रोल बाजार में उपलब्ध है। किसी प्रकार की संरचना (अर्द्धचन्द्राकार, त्रिभुजाकार, वर्गाकार, लो टनेल टाइप ऊपर उठी टनेल) स्थायी या अस्थायी रूप से प्लास्टिक या नायलान या लोहे की महीन जाली को चढ़ा देने से कीटरोधी संरक्षित जाली बन जाती है। संरचना बनाने के लिए जी. आई. पाइप, लोहे की सरिया, बांस या लकड़ी, सीमेन्ट के खम्भे या पत्ती का उपयोग किया जा सकता है। इसमें सबसे ज्यादा फायदा यह है कि कुछ स्तर तक पौधों को प्राकषतिक वातावरण मिल जाता है। कीड़ों द्वारा फैलने वाले रोग बिल्कुल नहीं फैलते हैं। महीन जाली होने के कारण वर्षा की तेज बूँद से जाली के अन्दर पौधे टूटते नही व फूल झड़ते नहीं है। अचानक ओला आदि से बचाव भी होता है।

अगेती प्रजातियों का समावेश

कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती पौध तैयार करना

नियन्त्रित दशा/पाली हाउस में सब्जियों की पौध तैयार करने का अभिप्राय नवोद्भिद व विकसित हो रहे पौधों को तेज धूप व वर्षा तथा अन्य विषम अवस्थाओं से बचाना है। वर्तमान समय में कम लागत से निर्मित होने वाले पाली हाउस, कांच घर, ग्रीन हाउस आदि काफी प्रचलित हो रहे हैं। उदाहरण के लिए "लो टनेल पाली हाउस/पाली हाउस बड़े पैमाने पर तैयार कर अनेक स्तरीय सब्जी पौध तैयार की जा सकती है। नियन्त्रित पौधशाला में पौध गुणवत्तायुक्त ओजस्वी व रोपण के पश्चात् शीत वृद्धि विकास करने लगती है। अगेती कद्दू वर्गीय सब्जियों के उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाने के लिए आवश्यक घटकों का सन्तुलित समन्वयन एवं उपयोग अति आवश्यक है। बीज द्वारा कद्दू वर्गीय सब्जियों जैसे–लौकी, खीरा, कुम्हड़ा, पेठा करेला, खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, टिण्डा आदि एवं वानस्पतिक संवर्धन द्वारा प्रसारित परवल, कुन्दरु, करतोली, ककरोल आदि की स्वस्थ पौध तैयार कर रोपण करना भी उन्हीं महत्वपूर्ण घटकों में से एक

सारिणी 6: कद्दू वर्गीय सब्जियों की उन्नतशील प्रजातियाँ

सब्जी फसल	उन्नतिशील अगेती प्रजातियाँ
लौकी	काशी गंगा, काशी किरन, काशी बहार (संकर), आजाद नूतन, पूसा संदेश (गोल), पूसा नवीन (लम्बी), पन्त कोमल, वरद (संकर) अर्का बहार, पूसा समृद्धि, नरेन्द्र रश्मि
करेला	काशी मयूरी, पूसा विशेष, प्रिया, कल्याणपुर सोना, पूसा दो मौसमी, कल्यानपुर बारामासी, अर्का हरित, काशी उर्वशी, विवेक (संकर)
कुम्हड़ा	काशी हरित, पूसा विकास, पूसा विश्वास, पूसा रत्नाकर, पूसा अलंकार, अर्का चन्दन, पूसा अर्का सूर्यमुखी, अम्बाली, नरेन्द्र अमृत
टिण्डा	पंजाब टिण्डा, अर्का टिण्डा
खीरा	पूसा संयोग, पूसा बर्खा, पूसा उदय, बालम खीरा, हिमांगी, स्वर्ण अगेती, जापानीज लॉंग ग्रीन
खरबूजा	काशी मधु, पूसा रसराज, पूसा मधुरस, हरा मधु, पंजाब, सुनहरी, लखनऊ सफेदा, पंजाब हाइब्रिड–1, दुर्गापुरा मधु, अर्का राजहंस, अर्का जीत, पूसा शरबती
नसदार तोरई	काशी शिवानी, पूसा नसदार, सतपुतिया, पंजाब सदाबहार, पूसा नूतन
सतपुतिया	काशी खुशी
चिकनी तोरई	काशी ज्योति, काशी श्रेया, काशी सौम्या (संकर), काशी रक्षिता (संकर) काशी दिव्या, पूसा चिकनी, पूसा सुप्रिया, कल्यानपुर चिकनी
परवल	काशी अलंकार, काशी सुफल, स्वर्ण रेखा, स्वर्ण अलौकिक, राजेन्द्र परवल–1, फैजाबाद परवल–1, 4, 3,
पेठा कद्दू	काशी धवल, काशी उज्जवल, काशी सुरभि, इन्दू, कोयम्बटूर–1,2, पूसा उज्जवल

है। बीज प्रसारित कद्दू वर्गीय सब्जियों की पौध को तैयार करने हेतु विभिन्न प्रकार की पालीथीन की थैलियाँ 8.0–10.0 सेन्टी मीटर लम्बी व 3.0–5.0 सेन्टी मीटर चौड़ी उद्देश्य के अनुसार उपयोगी होती है। वर्तमान में स्वस्थ पौध तैयार करने हेतु विभिन्न प्रकार की पाटिंग प्लग का उपयोग बड़े पैमाने किया जा रहा है। व्यावसायिक रुप से प्लास्टिक के बने पाटिंग प्लग (प्रो ट्रे, नर्सरी ट्रे या प्लग ट्रे) बाजार में उपलब्ध हैं। ये पाटिंग प्लग जड़ों के विकास की स्थिति व पौध वृद्धि के अनुसार (52.0 × 27.0 सेन्टी मीटर (98 छिद्रों वाली) आकार, 52.0 × 27.0 सेन्टी मीटर (50 छिद्रो वाली) आकार, 55.0 × 30.0 सेन्टी मीटर (120 छिद्रो वाली) आकार) बनाये गये हैं। इसमें उपयोग होने वाला पाटिंग मिडिया के रूप में वर्मीकुलाइट, परलाइट, कोकोपिट मिश्रण बाजार में उपलब्ध है। मिश्रण में आवश्यक पोषक तत्व (1 भाग परलाइट + 1 भाग वर्मी कुलाइट + 1 भाग वर्मीकम्पोस्ट + 1/4 भाग नीम की खली + 3/4 भाग कोक पीट) पौधे के वृद्धि काल के अनुसार है अतः अलग से किसी प्रकार के तत्वों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है। बीज बुआई के बाद हल्की सिंचाई कर 100 माइक्रान मोटी पारदर्शी या काली पालीथीन चादर से ट्रे को ढ़क देते हैं। बीज अंकुरित होने पर पालीथीन चादर को तुरन्त हटा देते हैं। वर्ततान समय में पूरे ट्रे की भराई मशीन द्वारा सुगमतापूर्वक की जाती है। उपरोक्त सभी साधनों में सबसे महत्वपूर्ण यह है कि व्यावसायिक रुप से तैयार ''पॉटिग प्लग'' को छोड़कर किसी में भी सतह में (पेदी) में छिद्र नहीं होता है। अतः प्रत्येक साधन प्रयुक्त होने वाले बर्तन में कम से कम 2–3 छिद्र अवश्य बना देना चाहिए।

वानस्पतिक प्रसारित फसलों के लिए गोबर की सड़ी हुई खाद, मिट्टी व बालू बराबर मात्रा में मिलाकर तैयार किये गये मिश्रण जो फफूँदनाशक दवाओं जैसे कैप्टान या थिरम से उपचारित हो, को पालिथिन की 20.0 × 10.0 सेन्टी मीटर की आकार की थैलियों में भरकर उसमें कुंदरु की 15.0–30.0 सेन्टी मीटर तने की कलम जिसमें 2–3 गांठे हों, का दो–तिहाई भाग इस थैली के अन्दर व एक–तिहाई भाग बाहर करके लगाया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य सब्जियों की कलम भी लगायी जाती है। सिंचाई करने के उपरान्त इन थैलियों को पाली हाउस, छप्पर के नीचे या खाई बनाकर रखते हैं।

चित्रः पाली हाउस में तरबूज की खेती

सारिणी 7: संस्तुत प्लास्टिक प्रो–ट्रे का आकार (स्टायरोफोम में स्थिर)

सब्जियाँ	कोशिका का आकार (इंच में)	अगेती पौध उत्पादन हेतु उपयुक्त कोशिका का आकार (इंच में)
तरबूज	1.5–4.0	3.0
खरबूजा	1.5–4.0	3.0
खीरा	1.5–4.0	2.0
चप्पन कद्दू	1.5–3.0	2.0
करेला	1.5–3.0	2.0
लौकी	1.5–4.0	2.0
पेठा	1.5–4.0	3.0
कुम्हण	1.5–4.0	3.0
टिण्डा	1.5–4.0	3.0
ककड़ी	1.5–3.0	2.0

सामान्यतः 30–45 दिन बाद जब इनमें नई शाखाएं निकल आती हैं तो इनका मुख्य खेत में रोपण किया जाता है। पौध प्रसारण का कार्य कुंदरु में फरवरी–मार्च या फिर जुलाई तथा ककरोल में जुलाई–अगस्त (तना द्वारा), फरवरी–मार्च (कन्दों द्वारा) माह में करना अच्छा होता है।

''शेडनेट'' व ''एग्रोनेट'' से पौधों को ढकना

बीजों के जमाव के बाद पौधों को ''शेडनेट' व ''एग्रोनेट'' से ढकने से स्वस्थ पौधों का विकास होता है। शेडनेट (छायादार जाली) के द्वारा तेज धूप से कोमल पौधों की सुरक्षा होती है बाजार में छायादार जाली विभिन्न छाया प्रतिशत (60 व 70 प्रतिशत) के अनुसार उपलब्ध है, का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार ''एग्रोनेट'' के प्रयोग करने से कीट व कीट जनित रोगों से पौधे बचे रहते हैं। उदारण के लिए करेला, खीरा, कुम्हड़ा आदि में ''पत्ती मरोड़ विषाणु'' बीमारी का प्रसार कीड़ों के द्वारा होता है। अतः पौधशाला में स्वस्थ पौधे उगें इसके लिए इनकी उपलब्धता अवश्य होनी चाहिए जिससे आवश्यकता के अनुसार इनका उपयोग किया जा सकें।

कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती फसल हेतु उपयुक्त फसल चक्र

कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती फसल लगाते समय सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इनकी उपलब्धता वर्श भर बनी रहे। फसल चक्र में मुख्य सब्जी के साथ–साथ अन्य फसलों का ध्यान रखना चाहिए। जिस जगह पर एक बार फसल लग जाये तो उस जगह पर पुनः वही फसल नही

सारिणी 8: अगेती कद्दू वर्गीय सब्जियों को उगाने की कृषि क्रियाओं का अभिलेख

फसल	बोने का समय	बीज दर (प्रति हेक्टेयर लगाने हेतु)	खाद/उर्वरक की मात्रा प्रति हेक्टेयर	अन्तरण सेमी. पौधे x पौधे	सिंचाई, निकाई–गुड़ाई	कटाई एवं उपज कु./हे.
लौकी	फरवरी–मार्च, जून–जुलाई	3.5–4.0 किग्रा.	गोबर की खाद 20–25 टन/हे. + नाइट्रोजन–40–50 कि.ग्रा. फास्फोरस–30–40 किग्रा. पोटाश–25–40 कि. ग्रा.	लौकी का बीज गड्ढ़ों में या नालियों में या क्यारियों में बोया जाता है। 15 × 1.0 मी. या 2.50–0.60 मी. वर्षा ऋतु–3.0 × 1.5 मी.	गर्मी की फसल को 5 वें दिन और जाड़े की फसल को 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करें; 2–3 निकाई–गुड़ाई	ग्रीष्म फसल अप्रैल से वर्षा ऋतु तक फल देती है। वर्षा ऋतु–अक्टूबर–दिसम्बर, अक्टूबर–नवम्बर वाली फसल फरवरी–मार्च में, उपज 15–20 टन/हे.
चिकनी तोरई	ग्रीष्म ऋतु–फरवरी–मार्च वर्षा ऋतु–जून–जुलाई	4.0 किग्रा. ग्रीष्म (जायद) 3. 50 किग्रा. (बरसाती फसल)	गोबर की खाद 20–25 टन/हे. + नाइट्रोजन– 30–40 कि.ग्रा. फास्फोरस–25–30 किग्रा. पोटाश–25–40 कि. ग्रा.	बुआई लौकी की तरहर्षा ऋतु–3 × 0.75 मी.	सिंचाई आवश्यकतानुसार; 1–2 निकाई–गुड़ाई	फलों को नरम अवस्था में तोड़ें। 70–75 दिन बाद फल मिलने लगते हैं उपज 15–25 टन/हे.

काशी फल	ग्रीष्म ऋतु–फरवरी–मार्च वर्षा ऋतु–जून– जुलाई	4.0 किग्रा. ग्रीष्म (जायद), 3.0 किग्रा. (बरसाती फसल)	गोबर की खाद 20 टन/हे. + नाइट्रोजन–100 कि.ग्रा. फास्फोरस–60 किग्रा. पोटाश–80 कि.ग्रा.	30 × 20 सेमी., 3–4 सप्ताह की पौध लगाई	ग्रीष्म फसल में 4–5 दिन के अन्तराल पर 2–3 निकाई–गुड़ाई	बाजार के मांग के अनुसार हरे या पके फल तोड़े जा सकते हैं। उपज– 30–40 टन/हे.
करेला	ग्रीष्म फसल–फरवरी–मार्च, वर्षा ऋतु–जून–जुलाई	6–7 किग्रा. (जायद), 4–5 किग्रा. (खरीफ)	गोबर की खाद 30–40 टन/हे. + नाइट्रोजन–30–40 कि.ग्रा. फास्फोरस–25–30 किग्रा. पोटाश–20–30 कि. ग्रा.	ग्रीष्म 2 × 0.5 मी., वर्षा ऋतु– 2.5 × 0.60 मीटर	सिंचाई आवश्यकतानुसार; जायद में प्रति सप्ताह सिंचाई करें; 2–3 निकाई–गुड़ाई	फलों की तुड़ाई मुलायम एवं छोटी अवस्था में करें। उपज– 10–12 टन/हे.
खरबूजा	फरवरी–मार्च (नदियों के किनारे इसकी बुआई नवम्बर–दिसम्बर में करें)	3–4 किग्रा.	गोबर की खाद 25–30 टन/हे. + नाइट्रोजन–30–40 कि.ग्रा. फास्फोरस–25–30 किग्रा. पोटाश–20–30 कि. ग्रा.	2 × 0.60 मी. या 1.5 × 0.90 मी. खरबूजा नालियों में या गड्ढों में बोते हैं नालियाँ 60 सेमी. चौड़ी रखे	बोने के तुरन्त बाद पहली सिंचाई; बाद की सिंचाईयाँ 7 दिन के अन्तर से; 2–3 निकाई–गुड़ाई	बोने के 90 –100 दिन बाद फल पकते हैं। उपज–20–25 टन/हे.
परवल	जुलाई – अगस्त या सितम्बर – अक्टूबर	2000–2500 कुन्तल/हे.	20 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन –150 कि.ग्रा. फास्फोरस–60 किग्रा. पोटाश–40 कि.ग्रा.	कतार से कतार की दूरी 4 मीटर तथा पौध से पोध की दूरी 1 मीटर रखी जाती है।	7–8 दिन के अन्तराल पर गर्मियों में सिंचाई अवश्य करना चाहिए।	प्रथम वर्ष– 12–13 टन/हे. दूसरे वर्ष– 2530 टन/हे.
पेठा कद्दू	प्राथमिक बुवाई– जून – जुलाई तथा द्वितीयक बुवाई – फरवरी – मार्च	5–6 किग्रा./हे.	20 टन गोबर की खाद, नाइट्रोजन –100 कि.ग्रा. फास्फोरस–50 किग्रा. पोटाश–कि.ग्रा.	थाले से थाले की दूरी 2.5–3.0 मीटर	ग्रीष्मकालीन फसल में 7–8 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए।	35–40 टन/हे.
खीरा	1. **ग्रीष्मकालीन** – जनवरी – फरवरी 2. **वर्षाकालीन**– जून–जुलाई	2.5–3.5 किग्रा./हे.	20 टन गोबर की खाद, 250 किग्रा. अमोनियम फास्फोरस–50 किग्रा. पोटाश–50 कि.ग्रा.	कतारों से कतारों की दूरी 1.5–2.5 मीटर तथा टीले से टीले की दूरी 45–60 सेमी. रखते हैं।	गर्मियों में 4–6 दिन के अन्तराल पर अवश्य करना चाहिए।	**स्लाइसर खीरा**– 26– टन/हे. **पिकलिंग खीरा**– 15–30 टन/हे.

उगाना चाहिए। इस प्रकार फसल चक्र अपनाकर कीड़ों एवं रोगों से फसल की सुरक्षा भी होती है। कद्दू वर्गीय सब्जियों की अगेती फसल में कुछ महत्वपूर्ण फसल चक्र इस प्रकार है:

1. टिण्डा (फरवरी)–मूली (जून)–आलू (अक्टूबर)–गाजर (नवम्बर)
2. कुम्हड़ा (जून)–मिर्च (अक्टूबर)–भिण्डी (फरवरी)
3. लौकी (जून)–फूलगोभी (नवम्बर)–लोबिया (फरवरी)
4. बैंगन (जुलाई)–टिण्डा (अप्रैल)
5. कुम्हड़ा (जुलाई)–आरा तोरई (मार्च)–चौलाई (नवम्बर)
6. करेला (जुलाई)–पालक (अक्टूबर) –धनिया (मार्च)
7. टिण्डा (फरवरी)–ग्वार (जुलाई)–पत्ता गोभी (नवम्बर)
8. चिकनी तोरई (अप्रैल)–शकरकंद (अगस्त)–सब्जी मटर (नवम्बर)
9. धनिया (जून)–खीरा (अगस्त)–संकर टमाटर (दिसम्बर)
10. खीरा (अप्रैल)–भिण्डी (जुलाई)–फराश बीन (दिसम्बर)
11. धनिया (मार्च)–खीरा (जून)–पालक (सितम्बर)
12. खीरा (मार्च) आलू (सितम्बर)–प्याज (दिसम्बर)
13. करेला (मई)–ब्रोकोली (जून)–आलू (सितम्बर)

हम जो कुछ भी हैं वो हमने आज तक क्या सोचा इस बात का परिणाम है। यदि कोई व्यक्ति बुरी सोच के साथ बोलता या काम करता है, तो उसे कष्ट ही मिलता है। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध विचारों के साथ बोलता या काम करता है, तो उसकी परछाई की तरह खुशी उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।

– भगवान गौतम बुद्ध

औषधीय एवं सगंधीय पौधों की खेतीः आज की माँग

सुरेश कमार वर्मा, राम चन्द्र, डी.आर. भारद्वाज, रामेश्वर सिंह, पी.एम. सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

औषधीय पौधों की दवाओं में चार प्रमुख खंड हैं, जैसे भारतीय प्रणाली के लिए पौधों की दवा, आयुर्वेदिक, यूनानी और वैद्य प्रणालियाँ, पौधों के हिस्सों से गैलेनिकल, आवश्यक तेल और फाइटोफर्मास्यूटिकल्स के अलावा भारी मात्रा में कच्ची सामग्रियों का उपभोग होता है। जब हम औषधीय विज्ञान की बात करते हैं तो हमे अपने प्राचीन ग्रंथ चरक संहिता व सुश्रुत संहिता को नहीं भूलना चाहिये जहाँ प्राचीन भारतीय वैद्य गुणियों ने विभिन्न पौधों को जडों, फूलों, पत्तियों, छालों आदि का रोग निदान के अनुसार वर्णन किया है। विश्व में प्राप्त हर एक पौधा किसी न किसी रूप में औषधीय गुण समाहित किये हुये है। परन्तु वह पौधा या वनस्पति जिसके किसी भाग का उपयोग किसी खास रोग के निदान एवं उपचार में सहायक हो व उससे प्राप्त मूल सक्रिय तत्व अन्य सभी वनस्पतियों से एक निर्धारित भाग से ज्यादा पायी जाये उसे औषधीय पौधा की श्रेणी में रखा जाता है। विश्व स्तर पर 3000 तरह के सुगंधीय व औषधीय पौधे प्रचलित हैं जिनमें से मात्र 300 प्रकार के ही पौधों का व्यापार होता है उनमें प्रमुख है– पिपरमिन्ट, यूकेलिप्टस, लेमनग्रास, लेवेन्डर, वेटिवर, सेज, थाइम, मारजोरम, तुलसी, पामारोजा, कैमोमिल, कैरम कार्वी, गुलाब, ट्यूबरोज बछ व पिपली हैं।

प्राचीन युग की पुस्तक चरक संहिता में वर्णित आठ पुस्तकों के 120 अध्यायों के पन्नों को खंगाला जाये तो स्पष्ट पता चलाता है कि आयुर्वेद का ज्ञान विश्व में सर्वोपरि था और पूर्णतः वनस्पतियों व घरेलू पादप औषधियों पर आधारित था। आज भी हमारे समाज के मध्य कुछ वैद्य जन हैं, जो मानवता की सेवा विशिष्ठ क्षेत्रीय प्रखण्डों से प्राप्त वनस्पतियों एवम् अन्य सममिश्रणों द्वारा रोगों का निदान कर रहे हैं। भारत सरकार द्वारा भी अब इस पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप हर राज्य में राज्य औषधीय बोर्ड की स्थापना व अब अग्रणी आयुष के रूप में हो रही है। आज तक हम पूर्व में संरक्षित वनों में आने वाली प्राकृतिक वनस्पतियों द्वारा अथवा गाँवों, खेतों, खलिहानों, बंजर व परती भूमि में स्वयं से आने वाली वनस्पतियों के बीच से ही चुनिंदा औषधीय व सगंधीय पौधों का उपयोग किया जाता है। लेकिन प्रकृति के अनियंत्रित दोहन के कारण प्रतिदिन धीरे–धीरे हमें सर्वसुलभ यही वनस्पतियॉ विलुप्त हो रही है या उसके कगार पर खड़ी है। इनमें से कुछ औषधीय व संगधीय पौधों का उत्पादन वैज्ञानिक विधि द्वारा सरकार के सहयोग से उत्पादित करना प्रारम्भ कर दिया गया है और किसान भी अच्छा मुनाफा कमा रहे हैं।

राजस्थान में टीट, तुम्बा, गुग्गल, गूंदी, थोर, खेजड़ी, सब्जी ग्वार आदि प्रमुख रूप से औषधीय पौधों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं, वहीं पर्वतीय प्रक्षेत्र में अतीस, बछ, कालमेघ, किलमोडा, पाषाण भेद, स्याहजीरा, बनतुलसी, मंजेठी, लैवेन्डर, चिरायता, थुनेर, थाइम, जटामांसी, कुटकी, टिमरू, बिच्छू बूटी, बनफ्सा का प्रयोग बहुतायत से विभिन्न प्रकार की औषधीयों को बनाने में किया जाता है। मैदानी भागों में हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में बेसिल, इसबगोल, चित्रक, निर्गुण्डी तथा सभी प्रकार की जलवायु में तुलसी, ब्राहमी लेमनग्रास, कलिहारी, कैमोमिल, पिपरमिंट, पुदीना, लेमन बाम, सहजन, गेंदा, गिलोय, वेटिवर व अश्वगंधा प्राकृतिक रूप से मिलते हैं। कुछ प्रमुख औषधीय व सगंधीय पौधों की विवरणिका प्रस्तुत है।

इन औषधीय एवम् सगंधीय पौधों में से कुछ पौधों को व्यवसायिक स्तर पर जैसे लेमनग्रास, स्याहजीरा, कलिहारी, बनहल्दू, तुलसी, लेमन बाम, कैमोमिल, पुदीना, पिपरमिंट, आरीगेनी तथा इसबगोल उगाया जा रहा है तथा किसान इससे अच्छा मुनाफा कमा रहे हैं। साथ ही सरकार का यह भी प्रयास है कि बहुत सी परती बंजर भूमि खाली पड़ी है अगर वहाँ पर कम लागत वाली जैसे ग्वार पाठा, ऐलोवीरा, वेटिवर आदि लगा दिये जाये एवम् बगीचों में पौधों पर गिलोय, हड़ जोजन आदि लगा कर कम लागत में खाली पड़ती भूमि से भी किसानों को आय में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

कुछ प्रमुख संस्थान जिनके द्वारा कृषि प्रोत्साहन व अन्य गुणवत्तायुक्त पौधों पर प्रशिक्षण आजकल दिया जा रहा है, इनमें प्रथमतः लखनऊ स्थित सी. मैप/एन. बी. आर. आई. द्वारा अर्ली मिंट टेक्नोलॉजी, मेंथाल मिंट आयल के उत्पादन में काफी सहायक सिद्ध हो रही है। ''सिम ज्योति'' तुलसी की उन्नति प्रजाति इसी संस्थान की देन है जिससे 70–80 दिनों में उच्च सिट्रोल (70–75 प्रतिशत) की वांछित गुणवत्ता प्राप्त

सारिणी 1: विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ व उनके उपचार में प्रयुक्त पादप प्रजातियाँ

क्र.स.	बीमारियों के नाम	प्रयुक्त पादप प्रजातियाँ
1	छाती का दर्द	*अंजेलिका ग्लॉका* एडग्यू, *सॉसूरिया कोस्टस* एल.
2	दमा	*अर्नेबिया बैंथामी* डी,सी एक्स. झोंसन, *पिक्रोरिजा कुरूवा* रॉयल एण्ड बैंथ.
3	काली खांसी	*हयोसायमस नाइजर* एल. *पयोनिया इमोडी* वॉल. एक्स. रॉयल
4	शीत अनुकूलन	*अरीसेइमिया* स्पे.
5	एलर्जी	*ऑक्सीरिया डिग्याना* एल.
6	नजला	*सांयरिंगा इमोडी* एक्स. रॉयल, *टैक्सस बकाटा* जका. एक्स. पिल्जर.
7	सर्दी	*एलीयम अरिकुलेटम* कुंथ., *एलीयम कोरोलियेनम* डी. सी.
8	सर्दी व जुकाम	*विओलो बाइफ्लोरा* एल.
9	जोड़ों का दर्द	*महरंगा इमोडी* वॉल. डी. सी.
10	हड्डी में दरार	*पाइनस वालीचियाना* ए. बी. जैक्स., *रियूम ऑस्ट्रेल* डी. डॉन, *अल्नस वालाचियाना* प्लांच.
11	गुमचोट, अतः क्षति	*अकोरस कैलमस* एल., *एलीयम वालीचियाना* हुंट., *रियूम मूक्रोफ्टिएनम* रॉयल, *वेलेरियाना जटामांसी* जोन्स
12	खून का शुद्धिकरण	*डेल्फीनियम डेनुडेटम* वॉल.
13	कैंसर	*पोडोफायलम हेक्सैण्ड्रम* रॉयल, *टैक्सस बकाटा* जका. एक्स. पिल्जर.
14	विषमारक, मूकता	*बरबेरिस चित्रिया* एडवार्डस.
15	मुँह के छाले	*सीडियम ग्वाजावा* एल.
16	कब्ज	*स्वर्सिया चिरायता* डी. डॉन
17	पेचिश	*रियूम इमोडी* वॉल. एक्स. मेइसन., *जैन्थोंजायलम आर्मेटम* डी. सी.
18	आंतो के कृमि	*अकोनिटम हिटिरोफायलम* वॉल. एक्स. रॉयल, *हयोसायमस नाइजर* एल.
19	पेट दर्द	*पिक्रोरिजा कुरूवा* रॉयल एण्ड बैंथ.
20	खाज खुजली	*अकायरैंथस अस्परा* एल.
21	बुखार	*अकोनिटम हिटिरोफायलम* वॉल. एक्स. रॉयल, *मैगाकार्पिया पॉलीयण्ड्रा* बैन्थ., *पिक्रोरिजा कुरूवा* रॉयल एण्ड बैंथ., *पिक्रोरिजा स्क्रांफलेरीफ्लोरा पैनल., सॉसूरिया कोस्टस* एल., *स्वर्सिया चिरायता* डी. डॉन.
22	हिस्टीरिया	*प्यूनिका ग्रेनेटम* एल.
23	पीलिया	*बरबेरिस चित्रिया* एडवार्डस., *पोर्चुलाका ओलेरेसिया* एल., *टेरेक्सकम ऑफिसीनेलिस* नूची.

24	यकृत की पथरी	*बर्जीबिया स्ट्रेचायी* एच. एच. बी. एण्ड टी. एच.
25	माइग्रेन दर्द	*कैलोट्रोपिस प्रोसेरा* एट. आर. बी. आर.,
26	मुँह में घाव	*हयोसायमस नाइजर* एल.
27	फोड़े	*डेलिफीनियम ब्रुनोनिएयम रॉयल*
28	त्वचा की देखभाल	*रूबिया कार्डीफोलिया* लिंन्न.
29	त्वचा की बीमारी	*बरबेरिस चित्रिया* एडवार्डस.
30	गले का दर्द	*पोलीगोनम नेपालेंस* मइसिन.
31	दांत का दर्द	*हयोसायमस नाइजर* एल., *जैंन्थोंजायलम आर्मेटम* डी. सी.
32	पेशाब की समस्या	*बर्जीबिया स्ट्रेचायी* एच. एच. बी. एण्ड टी. एच., *ब्युटिया फ्रोन्डोसा* कोइन. एक्स. रॉक्स., *जुरिनिया डोलोमोया* बोइस., *सॉसूरिया ओबवालाटा* डी. सी. एडग्यू
33	घाव	*क्लैमैटिस मोंटाना* बच. हैम. डी. सी., *डैक्टायलारिजा हटाजीरिया* डी. डॉन., *डेल्फीनिया वेस्टीएनम* वॉल. एक्स. रॉयल, *पोटेंटिला फुलगेंस* हुक, *रेननकुलस हिर्टेलस* रॉयल, *रियूम इमोडी* वॉल. एक्स. मेइसन., *सायरिंगा इमोडी* एक्स. रॉयल

की जा सकती है। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, झांसी, ललितपुर और महोबा के विभिन्न अंचलों में किसानों के खेतों में मेंथा, लेमन, ग्रास, पामारोजा, कालमेघ और तुलसी की खेती प्रारम्भ की गई है, जिनका प्रशिक्षण भी किसानों को दिया जा रहा है।

कुछ प्रमुख निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखकर किसान भाई औषधीय व सगंधीय पौधों का उत्पादन कर अपनी आय बढ़ा सकते हैं:

1. सर्वप्रथम किसी भी औषधीय वनस्पति उगाने से पहले यह देखना चाहिए कि कौन सी औषधीय व सगंधीय फसल किस प्रक्षेत्रों में किस जलवायु व भूमि में कहाँ उच्च गुणवत्तायुक्त उगायी जा सकती है।
2. उत्पादन से पहले हमारी प्राथमिकता यह होनी चाहिये कि हमारा उत्पाद किस रूप में बाजार में जा रहा है तो उसकी प्रसंस्करण इकाई (प्रोसेसिंग यूनिट) कितनी दूर कहाँ पर है आदि।
3. कच्चा माल या पौधा उत्पादन, समूह में अनवरत होना चाहिए जिससे प्रसंस्करण की कड़ी चलती रहे और आय बढ़ती रहे।
4. साथ ही साथ यह भी देखना होगा कि भविष्य में क्या इस पौधे का उत्पादन बाजार भाव के अनुरूप है या नहीं। कही आवश्यकता से ज्यादा उत्पादन होने पर नुकसान की सम्भावना तो नहीं है।
5. साथ ही साथ किसान भाइयों को यह भी देखना होगा कि उत्पादन की कीमत बिक्री की कीमत से ज्यादा तो नहीं है। माँग व आपूर्ति के बीच एक सुदृढ़ समन्वयन होना अति आवश्यक होता है।
6. अन्तः यह भी देखना होगा कि हमारे उत्पाद की गुणवत्ता कैसी है। क्या यह बाजार के अनुरूप है या नहीं। किसी भी पौध उत्पादन के लिए यह भी सुनिश्चित होना पड़ेगा कि किस कम्पनी द्वारा हमारा उत्पाद क्रय किया जायेगा। कुछ प्रमुख बिन्दु जिस पर प्रारम्भ में ही उत्पादक व क्रय करने वाले के बीच करार हो जाये तो अच्छा रहेगा।

- **प्रभावोत्पादकता**– हमारा उत्पाद प्रचलन में है या बाहर हो चुका है जैसे पहले एन्टीकैन्सर की दवा मुनेर पौधे से उत्पादित टेक्सोक द्वारा बनायी जाती थी अब सिन्थेटीक टेक्सोल बाजार में आ चुका है अतः टेक्सेस की बाजार (मुनेर) की उपादेयता अब उचित नही है।
- **सुरक्षा व जागरूकता**– हमारा उत्पाद इकोफ्रेन्डली वातावरण को सुरक्षित व संरक्षित करने वाला होना चाहिए। भांग, भंगीरा, पोस्ता, पोपी के लिए उचित नियमावलियों का पालन पहले ही सुरक्षित कर लेना चाहिए।
- माँग व आपूर्ति के बीच एक सुदृढ़ समन्वयन होना अति आवश्यक होता है।

उत्तर प्रदेश में हल्दी की उन्नत उत्पादन तकनीकी

राम चन्द्र, रामेश्वर सिंह, नागेन्द्र राय, एस.के. वर्मा, बी. सिंह एवं अंजनी झा'

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश
'भा.कृ.अनु.प.–रिसर्च काम्प्लेक्स फार एन.इ.एच रिजन, बड़ापानी, मेघालय

हल्दी (*करकुमा लोन्गा*) एक शाकीय बहुवर्षीय पौधा है जो जिन्जीबरेसी कुल के अन्तर्गत आता है। यह प्राचीन समय से भारत में उगाया जाता है एवं इसका निर्यात किया जाता है। यह उष्ण शाक है जो भोजन में एवं परम्परागत प्रयोग भारत में प्रति जैविकी, भूख बढ़ाने वाला, क्षुधावर्धक, टॉनिक एवं खुजली उपचार में किया जाता है। इसके अलावा चोट लगने पर बने घाव को ठीक करने में किया जाता है। हल्दी की गुणवत्ता उसमें पाये जाने वाले करकुमीन्वायड्स की मात्रा एवं वाष्पशील तेल की मात्रा पर आधारित होती है। भारत में हल्दी एक महत्वपूर्ण प्राचीन मसाला है जिसे ''वण्डर स्पाइस'' या ''येलो गोल्ड'' के नाम से जाना जाता है। देश में मसाला वाली फसलों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल 3.7 मिलियन हे. है, जिसमें हल्दी का हिस्सा 6 प्रतिशत एवं मसालों के कुल उत्पादन 2.2 मिलियन टन का 13.8 प्रतिशत हल्दी के अन्तर्गत आता है। देश में हल्दी उगाने वाले अग्रणी राज्यों में क्रमशः तेलागांना, तमिलनाडु, असम, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक हैं।

मेघा हल्दी –1

मेघा हल्दी का प्रकंद

हल्दी उत्पादन की उच्च उत्पादन तकनीकी

कार्बनिक विधि से पोषक तत्व प्रवन्धनः मृदा में 30 टन/हे गोबर की सडी खाद वर्मीकम्पोस्ट 2 टन/हे. नीम तेल खली 0.8 टन/हे. देने से परम्परागत विधि में 125 कु./हे. की तुलना में 68 प्रतिशत अधिक उपज 210 कु./हे. प्राप्त होती है।

एजोस्पीरीलम का प्रयोगः मृदा में नत्रजन 150 किग्रा./हे. + एजोस्पीरीलम 1.5 किग्रा./हे. + गोबर की सडी खाद 5 टन/हे. देने से परम्परागत विधि की अपेक्षा 35 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है।

तीव्र संवर्धन हेतु राइजोम वीट को प्रोट्रे में उगानाः राइजोम वीट कलिका सहित 5–6 ग्राम को प्रो ट्रे में लगाकर उसके बाद रोपण करने से परम्परागत विधि की अपेक्षा 1/4 रोपण सामग्री की आवश्यकता होती है।

टपक सिंचाई द्वारा जल प्रबंधनः हल्दी की सिंचाई टपक विधि से दिन में एक बार 45 मिनट तक करने से 538.4 हे. मिली मीटर जल का प्रयोग होता है।

उपज बढ़ाने के लिए सूक्ष्म तत्वों का प्रयोगः देश के आयरन की कमी वाले क्षेत्रों में फेरस सल्फेट का 1.73 पी. पी. एम का पर्णीय छिड़काव रोपण के 60 एवं 90 दिन बाद करने से उपज में वृद्धि होती है।

यंत्रों का प्रयोगः हल्दी को उबालने के लिए स्टीम ब्वायलर, रोपण के लिए बेड बनाने के लिए बेड मेकर खुदाई के लिए हार्वेस्टर एवं हल्दी की पालिश करने के लिए पालीशर का प्रयोग करना चाहिए।

सारिणी– 1: हल्दी की उन्नतशील किस्में

किस्म का नाम	किस्म विकास केन्द्र	उपज (टन/हे.)	विशेषताएं	संस्तुत राज्य
नरेन्द्र हल्दी–2	एन.डी.यू.ए. एवं टी. फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)	35–40	उच्च उपज क्षमता, प्रकंद अच्छे आकार का	उत्तर प्रदेश
नरेन्द्र हल्दी–3	एन.डी.यू.ए. एवं टी. फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)	32–35	उच्च उपज, मूल ग्रन्थि सूत्रकृमि प्रतिरोधी लीफ स्पाट एवं लीफ ब्लाच की मध्यम प्रतिरोधी	उत्तर प्रदेश
एनडीएच–98	एन.डी.यू.ए. एवं टी. फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)	35–37	उच्च उपज क्षमता	देश के सभी हल्दी उगाने वाले क्षेत्रों के लिए आध्र प्रदेश, केरल, तमिलनाडु, तेलंगाना, उ.प्र. एवं गुजरात
हल्दी मेघा–1	आइसीएआर रिसर्च काम्प्लेक्स फार एनईएच रिजन, अभियाम, मेघालय	26–74	उच्च उपज क्षमता, उच्च करकुमिन 6.8 प्रतिशत एवं लीफ स्पाट एवं लीफ ब्लाच आवश्यक तेल 5.5 प्रतिशत की प्रतिरोधी	मध्यम ऊंचाई वाले मेघालय के क्षेत्र एवं उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र (कुशीनगर, महराजगंज, बस्ती गोड़ा एवं बंगाल के मैदानी क्षेत्र)
आइ.आइ.एस. आर–प्रभा	आइ.आइ.एस. आर–कालीकट (केरल)	37–47	उच्च उपज क्षमता उच्च करकुमिन (6.5 प्रतिशत) ओलिओरेजिन (15 प्रतिशत) वाष्पशील तेल (6.5 प्रतिशत) शुष्क हल्दी (19.5 प्रतिशत) फसल अवधि (205 दिन)	केरल एवं तमिलनाडु
आइ.आइ.एस. आर–प्रतिभा	आइ.आइ.एस.आर–कालीकट (केरल)	39–12	उच्च उपज क्षमता उच्च करकुमिन (6.5 प्रतिशत) ओलिओरेजिन (16.2 प्रतिशत) वाष्पशील तेल (6.2 प्रतिशत) शुष्क हल्दी (18.5 प्रतिशत) फसल अवधि (225 दिन)	केरल एवं तमिलनाडु एवं अन्य हल्दी उगाने वाले राज्य
आइ.आइ.एस. आर–एलप्पी सुप्रीम	आइ.आइ.एस.आर–कालीकट (केरल)	55–4	उच्च उपज क्षमता, लीफ ब्लाच की सहनशील, करकुमिन (5.55 प्रतिशत) ओलिओरेजिन (16 प्रतिशत) शुष्क हल्दी (19 प्रतिशत) फसल अवधि (210)	केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं उत्तर बंगाल

सारिणी– 2: हल्दी सुखाने की तकनीकियों का उपज एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

तकनीकी	सुखाने में लगा समय (घण्टा)	शुष्क पदार्थ (प्रतिशत)	पाउडर वसूली (प्रतिशत)	करकुमिन (प्रतिशत)	पाउडर रंग
धूप में सुखाना	56	19.42	18.58	6.45	हल्का नारंगी
ओवन में सुखाना	46	20.42	19.60	6.72	नारंगी
कमरे में सुखाना	360	21.18	20.01	6.96	नारंगी
धूप + ओवन में सुखाना	340	19.67	19.66	6.56	हल्का नारंगी
कमरे + ओवन में सुखाना	246	20.94	19.81	6.86	नारंगी
उबालना + धूप में सुखाना	42	19.14	18.80	5.97	नारंगी
उबालना + रूम में सुखाना	288	20.18	19.22	6.25	हल्का नारंगी
उबालना + ओवन में सुखाना	38	20.35	19.39	6.22	हल्का नारंगी

अन्तर्वती फसल : मक्का, अरहर, प्याज, मिर्च आदि फसलों में अर्न्तवर्ती फसल के रूप में हल्दी उगाने से आय में वृद्धि होती है। हल्दी को नये रोपित नारियल, आम, चीकू, लीची, आमला आदि के बाग में लगाकर आय में वृद्धि होती है।

हल्दी सुखाने की विधियाँ: देश के ऐसे क्षेत्र जहाँ वर्षा अधिक होती है एवं आर्द्रता अधिक समय बनी रहती है वहाँ हल्दी को धूप में सुखाकर पाउडर बनाकर उपयोग में लाते हैं। हल्दी में आकर्षक पीले रंग (करकुमिन) एवं सुगन्ध के लिए क्यूरिंग आवश्यक होती है। ओवेन ड्रायर में 60–70 डिग्री सेन्टीग्रेड पर हल्दी सुखाने में 5–9 घंटे लगते हैं जो प्रकंद के आकार पर निर्भर करता है। करकुमिन (डीसीना मोयल मिथेन) की मात्रा हल्दी में रंग के लिए आवश्यक होती है। धूप की अनुपस्थिति में हल्दी का रंग ताप से प्रभावित नही होता स्थिर रहता है।

देश में उगायी जाने वाली हल्दी का केवल 1.08 प्रतिशत क्षेत्रफल एवं 0.72 प्रतिशत उत्पादन उत्तर प्रदेश द्वारा किया जाता है। उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है। तराई क्षेत्र के किसानों की पैदावार बढ़ाने के लिए भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी का क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, कुशीनगर, मेघा–1 हल्दी का प्रकंद तैयार कर किसानों को उपलब्ध कराता है एवं उच्च उत्पादन तकनीकी द्वारा हल्दी उत्पादन के लिए किसानों को प्रोत्साहित करता है। इसलिए तराई क्षेत्र में इसकी खेती करके अधिक आय प्राप्त होती है।

बुवाई के लिए प्रकंद सुरक्षित करना : बुवाई के लिए प्रकंद को वृक्ष की छाया में या हवादार कमरे में ढेरी बनाकर ऊपर से हल्दी की पत्तियों से ढंक देना चाहिए। कभी–कभी ढ़ेरी को मिट्टी या गोबर से लिपाई कर देते हैं। इसके अलावा प्रकंद को गड्ढे में धान की भूसी मिलाकर रखते हैं। ऊपर से लकड़ी के पटरों से ढक देते हैं एवं हवा के लिए खुले स्थान बना देते हैं। हल्दी की वृद्धि 20 डिग्री सेन्टीग्रेड से कम तापमान में रूक जाती है। इसलिए अगेती रोपण से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

वाष्पशील तेल : वाष्पशील तेल पीसी हुई हल्दी के स्टीम डिस्टीलेशन से 8–10 घण्टे बाद बनता है। तेल का रंग पीला से नारंगी पीला होता है। तेल का एरोमा ट्यूमरोन एवं आरट्यूम के कारण होता है।

फसल सुरक्षा

तना बेधक : ग्रसित तने को काटकर सूण्डी बाहर निकालकर नष्ट कर देते हैं एवं 0.5 प्रतिशत नीम आयल का 15 दिन के अन्तराल से छिड़काव करते हैं। लीफ स्पाट एवं लीफ ब्लाच के नियंत्रण के लिए कापर आक्सीक्लोराइड 0.2 प्रतिशत छिड़काव करते हैं।

बेबी कार्न उगायें: पौष्टिकता पायें

डी.के. सिंह, शेखर सिंह, अनन्त बहादुर, एस.एन.एस. चौरसिया, आर.एन. प्रसाद एवं जगदीश सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

किसान भाई सब्जियों की अधिकतर वही खेती करते चले आ रहे हैं जो उनके आस–पास हो रही होती हैं जैसे–गोभी, बैंगन, टमाटर, भिण्डी इत्यादि की खेती। खेती में और विविधता लाने एवं लाभ प्राप्त करने के लिए एक नई तरह की सब्जी, बेबी कार्न की खेती की जा सकती है। बेबी कार्न मक्के के समान होता है। केवल अन्तर यह है कि इसकी बालियां (काब्स) निकलने के 3–4 दिन बाद (जब इसके सिल्क 2–3 सेमी हो) इसकी तुड़ाई कर ली जाती है, जिसे बेबी कार्न कहते हैं। इसमें पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इसका प्रयोग सब्जी, सलाद और अनेकों प्रकार की व्यंजन बनाने में किया जा रहा है। बेबी कार्न चीन, अमेरिका, यूरोप, दक्षिण एशिया के रेस्तराँ में काफी लोकप्रिय है। बेबी कार्न हमारे देश में भी काफी पसंद किया जा रहा है। बेबी कार्न की बालियों की तुड़ाई के बाद पौधे का समस्त हरा भाग पशुओं के हरा चारा के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी खेती किसानों के लिये लाभदायक है, हमारे किसान भाई एक वर्ष में 2–3 बार बेबी कार्न की खेती कर सकते है।

बेबी कार्न में पाये जाने वाले पोषक तत्व

बेबी कार्न पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसमें फाइबर (खाद्य रेशा), कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस, लौह तत्व, थायमिन, राइबोफ्लेविन एवं एस्कार्बिक अम्ल इत्यादि पाये जाते हैं। यह कोलेस्ट्राल रहित होता है। बेबी कार्न तथा पत्ता गोभी, टमाटर, बैंगन, भिण्डी और मूली इत्यादि सब्जियों में पाये जाने वाले पोषक तत्वों की तुलनात्मक मात्रा सारिणी–1 में दर्शाई गयी है। इसमें फास्फोरस की मात्रा अन्य सब्जियों से अधिक पाई जाती है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी

बेबी कार्न की खेती के लिये बलुई व दोमट मिट्टी अच्छी होती है। मिट्टी का पी.एच. मान 6–7 तक होना चाहिए। सबसे पहले खेत की एक बार गहरी जुताई करते हैं, उसके बाद दो बार हैरो द्वारा जुताई करने के पश्चात् खेत में कम्पोस्ट डालकर कल्टीवेटर द्वारा जुताई कर दिया जाता है, अच्छी जुताई करने से खेत में खर–पतवार कम आते हैं। रिज मेकर द्वारा क्यारी या मेड़ बना लिया जाता है, जिनकी ऊँचाई 15 सेन्टी मीटर और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 35–40 सेमी. रखी जाती है।

खाद एवं उर्वरक

एक हेक्टेयर खेत में कम्पोस्ट लगभग 15 टन, नाइट्रोजन 120 किग्रा, फास्फोरस 60 किग्रा और पोटाश 60 किग्रा.

सारिणी 1: अन्य सब्जियों की तुलना में बेबी कार्न में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	बेबी कार्न	फूल गोभी	पत्ता गोभी	टमाटर	बैंगन	भिण्डी	मूली
नमी (प्रतिशत)	89.10	90.80	91.90	93.10	92.70	89.60	94.40
कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	8.20	4.00	4.60	3.60	4.00	6.40	3.40
प्रोटीन (ग्राम)	1.90	2.60	1.80	1.90	1.40	1.90	0.70
कैल्शियम (मिग्रा.)	28.0	33.00	18.00	20.00	18.00	66.00	50.00
फास्फोरस (मिग्रा.)	86.00	57.00	47.00	36.00	47.00	56.00	22.00
लौह तत्व (मिग्रा.)	0.01	1.50	0.90	1.80	0.90	1.50	0.40
थायमिन (मिग्रा.)	0.50	0.04	0.04	0.07	0.04	0.07	0.06
राइबोफ्लेविन (मिग्रा.)	0.08	0.10	0.11	0.01	0.11	0.01	0.11
विटामिन सी (मिग्रा.)	11.00	56.00	12.00	31.00	12.00	13.00	15.00

चित्र 1: खेत में बेबी कार्न की खड़ी फसल

प्रयोग किया जाता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा पूरा फास्फोरस एवं पोटाश खेत की अंतिम तैयारी के समय डाला जाता है। नाइट्रोजन का शेष आधा भाग दो बार में बुआई के 30 दिन एवं 45–50 दिन पर खड़ी फसल में दिया जाता है। खाद का प्रयोग ड्रिप द्वारा भी किया जा सकता है। ड्रिप विधि से घुलनशील उर्वरक फसल को देना फर्टिगेशन कहलाता है। फर्टिगेशन विधि से उर्वरक देने से इसकी वृद्धि अच्छी होती है और उर्वरक की मात्रा में भी बचत होती है। फसल को जितना शुद्ध उर्वरक की आवश्यकता होती है, उतनी ही मात्रा में उर्वरक इस विधि द्वारा दिया जाता है।

बीज की बुआई

उत्तर भारत में इसे फरवरी से नवम्बर के बीच लगाते हैं। अगस्त से नवम्बर के बीच बोये गये बेबी कार्न का उत्पादन अच्छा होता है। बीज की मात्रा 20–25 किग्रा/हेक्टेयर प्रयोग किया जाता है। बीज की बुआई क्यारी या मेड पर 4–5 सेमी. की गहराई पर किया जाता है। सामान्यतः पंक्ति से पंक्ति की दूरी 35–40 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 20–25 सेमी. रखते हैं। हर जगह (हिल) एक या दो बीज बोये जाते हैं। पौध ज्यामिति अपनाकर प्रति हिल एक बीज या दो बीज या तीन बीज या चार बीज की बुआई भी की जा सकता है। प्रति हिल एक बीज या दो बीज बुआई की उपज तीन या चार बीज की तुलना में अच्छी और शीघ्र होती है। बुआई से पहले बीज थीरम या कार्बन्डाजिम (2.5 ग्राम/किग्रा. बीज) से उपचारित कर लेना चाहिए।

सिंचाई

कूड़ विधि से बोई गई बेबी कार्न की सिंचाई बुआई के 10 दिन बाद किया जाता है। बेबी कार्न की फसल में मौसम, फसल की अवस्था तथा मिट्टी के अनुसार सिंचाई की जरूरत होती है। गर्मियों के मौसम में सामान्यतः 5–7 सिंचाई की आवश्यकता होती है जो कि लगभग हर सप्ताह की जाती है। अन्य मौसम में 4–5 सिंचाई पर्याप्त होती है। सामान्यतः पहली सिंचाई युवा पौधे की अवस्था, दूसरी फसल की घुटने के ऊँचाई के समय, तीसरी सिल्क आते समय और चौथी बेबी कार्न के तुड़ाई के समय अवश्य करनी चाहिए। जब सिंचाई ड्रिप विधि से किया जाता है तो फसल को जितनी सिंचाई की आवश्यकता होती है उतनी ही सिंचाई 1–2 दिन के अन्तराल पर किया जाता है। ड्रिप विधि का प्रयोग करने पर उर्वरक एवं पानी की लगभग 35–40 प्रतिशत बचत के साथ उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

अन्तःसस्य क्रियायें एवं फसल सुरक्षा

बेबी कार्न की फसल को 1–2 निराई की आवश्यकता होती है। जब ड्रिप विधि अपनाया जाता है तो निराई की आवश्यकता और भी कम हो जाती है। निराई करने के बाद उर्वरक डालकर गुड़ाई करके पौधों के जड़ों के पास हल्की मिट्टी चढ़ा दिया जाता है। इससे पौधे तेज हवा से गिरते नही है। बेबी कार्न के लिए तना भेदक, गुलाबी तना भेदक तथा ज्वारी तना मक्खी गम्भीर समस्या है। इसके रोकथाम के लिए बीज जमने के 15–20 दिन बाद 2.5 ग्राम कार्बेरिल प्रति लीटर पानी में घोलकर एक या दो छिड़काव किया जाता है।

नर पुष्प को तोड़ना (डिटेस्लिंग)

बेबी कार्न के टेसल (नर भाग) के बाहर निकलने पर परागकण बनने से पहले इसे तोड़ने की क्रिया को डिटेस्लिंग कहा जाता है। इस क्रिया में टेसल को काट दिया जाता है या ऊपर से पकड़ कर बाहर की ओर सावधानीपूर्वक निकल दिया जाता है। ऐसा न करने से परागण की क्रिया पूरी हो जाती है, जिससे फसल की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। डिटेस्लिंग करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि फसल का कोई और भाग प्रभावित न हो।

उपज

बेबी कार्न की बालियों की पहली तुड़ाई, बुआई के 45–50 दिन बाद करते है। जब बालियों से सिल्क 1–2 सेन्टी मीटर बाहर निकल आये। इस समय बालियों की लम्बाई 20–22 सेमी., व्यास 4–5 सेमी. और वजन 50–60 ग्राम हो और जब इससे छिलका हटा दिया जाता है तब इसकी लम्बाई 9–10 सेमी., व्यास 1–1.5 सेमी और वजन 11–12 ग्राम होता है। एक फसल में लगभग 3–4 बार तुड़ाई की जाती है। जब फसल ज्यामिती एक पौधा हो तो उसमें बालियां दो और तीन पौधों का फसल ज्यामिती की अपेक्षा पहले आती हैं, जहाँ पर फसल ज्यामिती चार पौधों का होता

चित्र 2: बेबी कार्न की तैयार बालियां

है वहा बालियां सबसे बाद में आती हैं, और उसकी तुड़ाई सबसे बाद में की जाती है। एक पौधे में 3–4 बालियां आती है। बालियों की तुड़ाई करते समय यह सावधानी रखा जाता है कि पौधे का कोई भाग प्रभावित न हो ताकि दूसरी और तीसरी तुड़ाई की जा सके। दूसरी और तीसरी तुड़ाई 2–3 दिन के अन्तर पर किया जाता है। छिलका सहित बेबी कार्न की बालियों का उपज लगभग 75–100 कुन्तल/हेक्टेयर होता है। छिलका रहित बेबी कार्न की बालियों का उपज लगभग 10–15 कुन्तल/हेक्टेयर होता है। बालियों की अंतिम तुड़ाई के बाद हरा चारा लगभग 150–400 कुन्तल/हेक्टेयर प्राप्त होता है। बाजार में नयी सब्जी होने के कारण बेबी कार्न को काफी पसन्द किया जा रहा है। इससे किसानों को अच्छे बाजार भाव मिलते हैं।

बेबी कार्न पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इससे तैयार कई तरह के व्यंजन काफी पसंद किये जा रहे है। इसकी खेती से अल्पावधि में अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सकता है। दूसरी उगाई जाने वाली फसलों के लिये खेत जल्दी खाली मिल जाता है। बेबी कार्न की खेती से प्राप्त हरे चारे से पशुपालन को बढ़ावा मिलता है। इससे किसान भाइयों को लाभ तथा ग्रामीण महिलाओं एवं युवकों को रोजगार मिलता है।

करूणा को रुई, सन्तोष को धागा, नम्रता को गांठ और सत्यता को मरोड़ बनाओ। यह आत्मा का पवित्र धागा है, तब आगे बपर डाल दो।

– गुरु नानक

संस्थान द्वारा विकसित भिण्डी की प्रचलित किस्मों की खेती

त्रिभुवन चौबे, बिजेन्द्र सिंह, शिवम् चौबे, रमेश कुमार सिंह एवं धनंजय कुमार उपाध्याय

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

भिण्डी की खेती ग्रीष्मकालीन एवं वर्षाकालीन मौसम में नकदी फसल के रूप में सबसे ज्यादा की जाती है। भारत 6.146 मिलियन टन भिण्डी उत्पादन के साथ प्रथम स्थान पर है जो विश्व उत्पादन का 66.3 प्रतिशत है। भिण्डी का उपयोग मुख्य रूप से सब्जी में तथा इसके जड़ों का उपयोग गुड़ बनाते समय उसको साफ करने में भी करते हैं। इसमें कई प्रकार के पौष्टिक तत्व मौजूद होते है। इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, फास्फोरस के अतिरिक्त विटामिन ए, बी, सी, एवं रिबोफ्लेविन पाया जाता है। इसके फल में आयोडीन की मात्रा अधिक पाई जाती है। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत फायदेमंद होती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में फाइबर होता है जो पाचन तंत्र के लिए अत्यधिक लाभकारी होता है। भिण्डी कब्ज रोगियों के लिए लाभदायक है। भिण्डी के सूखे हुए बीज के अन्दर 13 से 20 प्रतिशत तेल की मात्रा और 20 से 40 प्रतिशत प्रोटीन की मात्रा होती है।

सारिणी 1: संस्थान द्वारा विकसित भिण्डी की प्रचलित किस्में

• **काशी सातधारी (2001)** इसका पौधा लम्बा, फली गहरे हरे रंग की 13–15 सेमी. लम्बी होती है। औसत उपज 125–150 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। यह पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति रोगरोधी होती है।	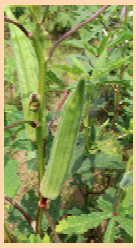
• **काशी मोहिनी (2001)** इसका पौधा लम्बा, फलियाँ 11.3 –12.6 सेमी. लम्बी हरे रंग की होती है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति रोगरोधी होती है। औसत उपज 140 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।	
• **काशी मंगली (2002)** इसका पौधा मध्यम लम्बा, फलियाँ 12.5–14.5 सेमी. लम्बी हरे रंग की होती है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति रोगरोधी होती है। औसत उपज 140 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।	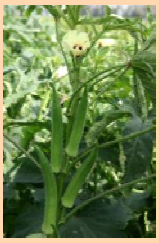
• **काशी प्रगति (2003)** इसके पौधे 130–175 सेमी. लम्बे होते हैं तथा फलियाँ 11–13 सेमी. लम्बी गहरे हरे रंग की होती है तथा उपज 150–200 कुन्तल/हेक्टेयर होती है। यह पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी एवं कुंचन विषाणु के प्रति रोगरोधी है। इसकी खेती ग्रीष्मकालीन एवं वर्षा कालीन दोनों ऋतुओं में की जा सकती है।	

- **काशी विभूति (2003)**
  यह बौनी किस्म है। इसमें बुआई के लगभग 38–40 दिन में फूल आने लगते हैं। फलियाँ 11–14 सेमी. लम्बी होती हैं औसत उपज 100 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी की पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति रोगरोधी है।

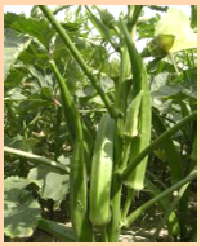

- **काशी लीला (2005)**
  इसके पौधे 130–135 सेमी. लम्बे होते हैं। फलियाँ गहरे हरे रंग की 10–13 सेमी. लम्बी मध्यम आकार की होती है। औसत उपज 160–180 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति रोगरोधी होती है।

- **काशी क्रांति (2011)**
  इसके पौधे गहरे हरे रंग के 110–130 सेमी. लम्बे होते हैं। फलियाँ गहरे हरे रंग की 8–10 सेमी. लम्बी, पतली होती है तथा उपज 150–170 कुन्तल/हेक्टेयर होती है। यह किस्म पीत शिरा मोजैक विषाणु एवं भिण्डी पर्ण कुंचन विषाणु के प्रति सहनशील है।

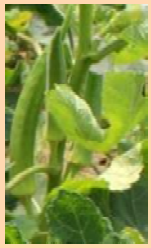

- **काशी वरदान (2015)**
  इस किस्म के पौधे की लम्बाई मध्यम आकार के साथ 6–7 शाखायें ली हुई होती है। प्रति पौध 19–20 फलियाँ तथा फलियों का वजन 12–14 ग्राम देखा गया है। फलने की अवधि 48–105 दिन व उपज 150–160 कु./हे. दर्ज की गयी है। यह प्रजाति पीत शिरा मोजैक विषाणु के प्रति रोगरोधी है।

भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा विकसित किस्में

मिट्टी एवं तापमान

भिण्डी की खेती सामान्यतः उत्तम जल निकास वाली सभी तरह की मृदा में की जा सकती है। मृदा का पी.एच. मान 6.0–6.8 तक उपयुक्त रहता है। सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए 25–30 डिग्री से. तापमान उपयुक्त रहता है।

खेत की तैयारी

प्रथम जुताई मिट्टी पलट हल से अच्छी तरह करें। इसके बाद डिस्क हैरो या कल्टीवेटर से 3–4 जुताई करें। उसके बाद खेत में पाटा लगाकर मिट्टी को भूरभूरा एवं समतल कर लें।

खाद एवं उर्वरक

बुवाई से एक महीने पहले 20 से 30 टन सड़ी हुई गोबर की खाद खेत की तैयारी के समय डालनी चाहिए। इसके अतिरिक्त 100 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस एवं 50 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना उचित होता है। नत्रजन उर्वरक का एक तिहाई तथा फास्फोरस एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुआई के पूर्व भूमि में अच्छी तरह से मिला दें। इसके बाद बची नत्रजन की शेष मात्रा को दो बार में समान रूप से खड़ी फसल में देना चाहिए।

बीज की मात्रा एवं उपचार

बीज की मात्रा बुआई के समय एवं पौधों की दूरी पर निर्भर करता है। सामान्यतया वर्षा कालीन बुवाई के लिए 8–10 किग्रा. एवं गीष्मकालीन बुआई के लिए 13–15 किग्रा.

बीज की मात्रा प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बुआई करने से पूर्व भिण्डी की बीजों को 3 ग्राम मैन्कोजेब या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करने से पौधों में मृदा जनित बीमारियों से सुरक्षा होती है।

बुवाई का समय एवं विधि

भिण्डी की बुवाई वर्षा ऋतु में जून से जुलाई एवं ग्रीष्म ऋतु में फरवरी से मार्च माह में करते हैं। वर्षाकालीन बुवाई के लिए कतार से कतार की दूरी 45–60 सेमी. तथा पौध से पौध की दूरी 25–30 सेमी. रखनी चाहिए एवं ग्रीष्मकालीन बुवाई के लिए कतार से कतार की दूरी 30–45 सेमी. एवं पौध से पौध की दूरी 20–25 सेमी. रखना चाहिए। बीज की बुवाई 2–3 सेमी. की गहराई पर करना अच्छा रहता है। भिण्डी की बुआई क्यारियों में या मेड़ बनाकर की जाती है।

खर–पतवार नियंत्रण

भिण्डी की फसल में लगभग 3–4 निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। प्रथम निराई–गुड़ाई बुआई के 15–20 दिन बाद करें, इसके बाद द्वितीय निराई–गुड़ाई 30–45 दिन बाद करें तथा द्वितीय गुड़ाई के उपरान्त पौधों पर मिट्टी चढ़ा देना आवश्यक होता है। बुआई के एक दिन बाद वार्षिक घास एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के रोकथाम के लिए पेन्डिमेथालिन 1 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 700–800 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें। गर्मी की फसल में पलवार का प्रयोग करने से खर–पतवार पर नियंत्रण के साथ–साथ सिंचाई जल की भी बचत की जा सकती है। अंकुरण के बाद प्रथम निराई–गुड़ाई करते समय ज्यादा घने पौधों को हाथ से निकालकर पौध से पौध की दूरी में उचित अन्तर रखना चाहिए।

सिंचाई

ग्रीष्मकालीन भिण्डी के लिए निरन्तर सिंचाई की आवश्यकता होती है इसलिए सिंचाई 5 से 7 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए। वर्षाकालीन फसल की सिंचाई वर्षा के ऊपर निर्भर करती है। यदि वर्षा अधिक समय तक न हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज

बुवाई के 40–45 दिन बाद सामान्यतः फलियाँ तुड़ाई योग्य हो जाती हैं। भिण्डी की प्रथम बार फलियाँ बनने के प्रत्येक 2–3 दिन बाद फलियों की तुड़ाई करें। देर से तुड़ाई करने से फलियाँ कठोर हो जाती है तथा खाने योग्य नहीं रह जाती। फल तोड़ने के लिए सर्वोत्तम समय फूल खिलने के 6–7 दिन बाद होता है। लेकिन फलियों की तुड़ाई उनकी किस्म एवं मौसम पर निर्भर करती है। निर्यात के लिए 8–12 सेमी. लम्बी फलियाँ अच्छी होती है। ग्रीष्मकालीन फसल से भिण्डी की हरी फलियों की औसत उपज 100 कुन्तल एवं वर्षाकालीन फसल से 150 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

मुख्य कीट एवं प्रबंधन

फली छेदक सुण्डियाँ

- यह फलियों के पास के स्थान पर पौधे की टहनियों तथा पत्तों में छेद करती है उसके बाद फल में सुराख करके फल को नुकसान पहुँचाती है।
- पौधों में लक्षण देखते ही इसके रोकथाम के लिए डेल्टामेथ्रिन 2.8 प्रतिशत ईसी. या फेनोप्रोपैथ्रिन 30 प्रतिशत ईसी. को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें, 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

सफेद मक्खी

- इसके शिशु एवं वयस्क कीट दोनों ही पौधों की पत्तियों के नीचे की सतह पर चिपके रहते हैं। पत्तियों के कोमल तने एवं फल के रस को चूसना आरम्भ कर देते हैं। यह विषाणु के द्वारा वर्षा ऋतु में अधिक तेजी से फैलता है।
- इसके रोकथाम हेतु एजाडायरेक्टीन 0.03 प्रतिशत (300 पी.पी.एम.) या फेनोप्रोपैथ्रिन 30 प्रतिशत ईसी. 50 ई.सी. को 200–300 लीटर पानी में छिड़काव करें।

हरा तेला या फुदका

- शिशु एवं वयस्क पौधे की पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते है जिसके कारण पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और अधिक प्रकोप होने पर मुरझाकर सुख जाती है।
- थायामेथोक्साम से बीज उपचार करें एवं इसके नियंत्रण के लिए डायमेथोएट 0.2 प्रतिशत का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल से करते हैं। अधिक संक्रमण होने पर इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत या थायामेथोक्साम 0.05 प्रतिशत का छिड़काव पुनः करते हैं।

लाल माइट

- माइट अधिक संख्या में कालोनी बनाकर पौधों की पत्तियों के निचले सतह पर रहते हैं। अपने मुखांगों से पत्तियों की कोशिकाओं में छिद्र करता है, जो द्रव्य उससे निकलता है माइट चूसते रहते है। प्रभावित पत्तियाँ पीली पड़कर टेढ़ी आकार ही हो जाती है। प्रकोप अधिक होने पर सम्पूर्ण पौधा सूखकर नष्ट हो जाता है।
- रोकथाम के लिए डाइकोफॉल 5 ई.सी. का 2.0 मिली मात्रा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

मुख्य रोग एवं प्रबंधन

सरकोस्पोरा झुलसा

- इस रोग के कारण भिण्डी की पत्तियों पर धब्बे उभर जाते हैं।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर तुरन्त डाइथेन एम–45 (0.25 प्रतिशत) 250 ग्राम का 200–300 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें तथा 15 दिनों के पश्चात् पुनः छिड़काव करें।

पीत शिरा मोजैक विशाणु

- पीत शिरा रोग एक विषाणु जनित बीमारी है जो सफेद मक्खी द्वारा फैलती है।
- इसके प्रकोप से पत्तियाँ पीली हो जाती है। पत्तियों में एक जाल जैसी संरचना बन जाती है तथा पौधे की बढ़वार भी रूक जाती है। इसके कारण फल का रंग भी पीला हो जाता है और फल भी कम लगता है। इस बीमारी के संक्रमण से भिण्डी की उपज में 20–30 प्रतिशत की हानि होती है।
- रोकथाम हेतु रोग अवरोधी किस्मों का चयन करें। प्रभावित पौधे को या जिस पौधे पर लक्षण दिखाई दे उसे तुरन्त खेत से निकालकर मृदा के अन्दर दबा दें।
- इससे बचाव के लिए एसिटामिप्रिड 20 प्रतिशत ए. पी. अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एस. एल. की 5 मिली प्रति ग्राम मात्रा प्रति 15 लीटर पानी अथवा डायमिथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. अथवा आक्सीमिथाइल डेमेटान 25 प्रतिशत ई.सी. की 5 मिली प्रति लीटर पानी छिड़काव करें।

सावधानियाँ

- दवा छिड़कने से पहले फलों की तुड़ाई कर लेना चाहिए।
- फसलों में दवाईयों के छिड़काव के 15 से 20 दिनों के बाद ही फलों की तुड़ाई करनी चाहिए।
- फलों की तुड़ाई के उपरान्त शुद्ध पानी से साफ करके ही प्रयोग करें।

काम हमारा है यही, भरे रहें खलिहान।
भाषा भी यदि हिंदी हो, सीधे जुडे किसान।।
हीन भावना छोड़कर, हिंदी में कर काम।
हिंदी भाषा ही नहीं, हम सबकी पहचान।।

खीरा की संरक्षित खेतीः किसान कमा सकते हैं अधिक मुनाफा

सुधाकर पाण्डेय, विकास सिंह, आर.के. दुबे एवं शिवम् चौबे

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

परम्परागत तरीके से खीरे की खेती भारत वर्ष में बहुत पहले से होती आ रही है। इस प्रकार की खेती से किसानों को उतना लाभ नही होता है। इसलिए अब परम्परागत खेती को छोड़कर किसान नवीन कृषि तकनीकों को अपनाकर खेती में अधिक से अधिक लाभ ले रहे है। कृषि की इसी तकनीक में से एक तकनीक है संरक्षित दशा में खीरे की खेती करना। संरक्षित दशा में खेती की जाने वाली सब्जियों में खीरा का स्थान प्रथम है। इसका मुख्य कारण है पार्थिनोकार्पिक प्रजातियों का विकास एवं संरक्षित दशा में वर्षभर फसल उगाये जाने की सम्भावना। संरक्षित दशा में खेती करने के मुख्य लाभ निम्न है–

1. खीरा का गुणवत्ता युक्त प्रति ईकाई अधिक उत्पादन
2. फसल की माँग के अनुसार वातावरण का समायोजन
3. वर्ष भर खीरे की खेती होने की सम्भावना
4. कीटों एवं रोगों का आसानी से प्रबंधन होना
5. प्रति क्षेत्रफल ईकाई में अधिक रोजगार का मिलना जिससे किसानों का परिवार वर्ष भर काम पाता रहता है।

खीरे की खेती हेतु संरक्षित संरचना

1. प्राकृतिक रूप से हवादार पालीहाउस (नेचुरली वेन्टिलेटेड पालीहाउस)
2. वाक इन प्लास्टिक टनेल
3. कीट रहित नेट हाउस
4. कृत्रिम रूप से संचालित हाइटेक पाली हाउस

संरक्षित दशा में खेती करने को बढ़ावा देने हेतु भारत सरकार की एम. आई. एच. डी. (एन.एच.वी.) द्वारा विभिन्न संरचनाओं हेतु 50–70 प्रतिशत तक अनुदान लघु एवं मध्यम जोत वाले किसानों को दिया जा रहा है। नेचुरली वेन्टिलेटेड पाली हाउस की लागत रू. 800–900 प्रतिवर्ग मीटर जबकि कीट रहित (इन्सेक्ट प्रूफ) नेट हाउस की लागत लगभग रू. 650–700 प्रति वर्ग मीटर है।

संरक्षित दशा में खीरे की खेती की योजना

अधिक उपज तथा गुणवत्ता युक्त फलों के उत्पादन के लिए निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

1. उचित संरक्षित संरचना का चुनाव

खीरा गर्म जलवायु की फसल है। बीज के जमाव के लिए तापक्रम 22–25 डिग्री सेन्टीग्रेट होना चाहिए। यदि तापमान 16 डिग्री सेन्टीग्रेट से नीचे आयेगा तो जमाव अच्छा नही होगा। पौधों की बढ़वार के लिए 30–35 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान बेहतर होता है। इसलिए किसान भाइयों को उनके क्षेत्र में संरक्षित संरचना में क्या तापमान होगा, उसी के आधार पर संरचना का चुनाव करना चाहिए।

2. प्रजातियों का चुनाव

मुख्य किस्में: पंत पार्थिनोकार्पिक खीरा–2, पंत पार्थिनोकार्पिक खीरा–3, टर्मिनेटर, बाई–225, रिका, डिफेन्डर, डाइनामिक, हिल्टन, कियान, इसाटिस, इनफिनिटी, मल्टीस्टार, वाई 52–32, कफका।

निजी क्षेत्र के ज्यादातर संकर प्रजातियाँ के एक पैकेट बीज का मूल्य लगभग रू. 5000–6000 होता है। खीरे की संरक्षित दशा में खेती करने हेतु प्रजातियों के चुनाव में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। खीरा पर–परागित फसल है एवं परागण कीटों द्वारा खासकर मधुमक्खी से ही होता है। संरक्षित संरचना में कीटों का प्रवेश नही हो सकता है अतः ऐसी प्रजातियों का उपयोग करना है जिसमें बिना परागण के फल बनने की क्षमता हो।

बीज की बुआई

बीज को नेटहाउस या पालीहाउस के अन्दर बनी क्यारियों में सीधे जमीन में या बड़े गमलों में बीज की बुआई कर नर्सरी तैयार करते हैं। जाड़े के समय में बुआई सीधे न करके पौध तैयार कर लेना चाहिए, जिससे जमाव में कोई समस्या नही होती है। गर्मी के दिनों में 3–4 दिन में जमाव हो जाता है जबकि जाड़े में लगभग 7–8 दिन लगते है। यदि तापमान 28–30 डिग्री सेन्टीग्रेट होता है तो पौध 15–17 दिन में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

दूरी तथा बुआई की विधि

पौधे से पौधे की दूरी गर्मी में 30 सेमी. एवं जाड़े में 45 सेमी. रखनी चाहिए। क्यारियों की चौड़ाई 90–95 सेमी. एवं ऊँचाई लगभग 30 सेमी. तथा क्यारियों में पौधों को दोनों तरफ लगाना चाहिए। दो बेड के बीच की दूरी 1.5 मीटर होनी चाहिए। प्रति वर्ग मीटर 3 पौधे होने चाहिए, इस प्रकार प्रति हेक्टेयर लगभग 25–30 हजार पौधे रखना उचित होता है।

उर्वरक एवं सूक्ष्म पोषक त्तवों का प्रयोग

मिट्टी की जाँच करायें

जिस भूमि में खीरा उगाना हो उस मिट्टी के नमूने की

जाँच करवा लें। मिट्टी की जाँच अपने घर की नजदीक की मृदा जाँच प्रयोगशाला में करायें। मिट्टी के नमूने की जाँच में पी. एच. मान, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम कैल्शियम, मैग्नीशियम की जाँच अवश्य करवायें। उर्वरक की मात्रा का निर्धारण जाँच परिणाम के आधार पर ही करना चाहिए।

यदि गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट उपलब्ध हो तो 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी की ऊपरी सतह (15 सेमी.) पर बीज बुआई अथवा रोपाई के 15 दिन पहले मिट्टी में मिला दे। इसके अलावा नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की 60, 60 एवं 80 किग्रा. मात्रा भी मिट्टी में मिलाना चाहिए।

ड्रिप सिंचाई के माध्यम से 60 किग्रा. नत्रजन, 80 किग्रा. फास्फोरस, 80 किग्रा. पोटाश, 12 किग्रा. कैल्शियम एवं 4 किग्रा. मैग्नीशियम/हे. के हिसाब से फसल अवधि में देना चाहिए। इसके अलावा एक सप्ताह के अन्तराल पर कामर्शियल ग्रेड के पोषक तत्व को भी देते रहना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर कैल्शियम एवं बोरान का छिड़काव भी करते रहना चाहिए।

पौधों को सहारा देना एवं कटाई छंटाई

- सहारे के लिए रस्सी या तार का प्रयोग करते है।
- अंग्रेजी के शब्द वी (V) आकार की संरचना का प्रयोग सहारा देने के लिए करना चाहिए।
- पौध के बगल से निकलने वाली शाखा को काटते रहना चाहिए।
- जाड़े के समय में मुख्य तने पर जमीन से 30–60 सेमी. फीट तक फूल को तोड़ देना चाहिए।
- फलों की तुड़ाई के साथ–साथ पुरानी पत्तियों को भी तोड़ते रहना चाहिए।

सिंचाई

- मिट्टी में उचित नमी हमेशा बनी रहनी चाहिए।
- टपक सिंचाई का प्रयोग करना अच्छा होता है।
- बलुई एवं बलुई दोमट मिट्टी में 30 सेमी. की दूरी पर लगे ड्रिपर से लगभग 2 लीटर पानी/घंटे देना चाहिए।
- सिंचाई हमेशा दोपहर से पहले करनी चाहिए।

तुड़ाई

- गर्मी में 45 दिन बाद एवं जाड़े में 60 दिन बाद तुड़ाई शुरू हो जाती है।
- एक दिन के अन्तराल पर तुड़ाई करते रहना चाहिए।

उपज

खीरे का उत्पादन लगभग 3–5 किग्रा. प्रति पौध होता है। उत्पादन का कम एवं ज्यादा होना मौसम एवं अन्य सस्य क्रियाओं पर भी निर्भर करता है। खीरे की पार्थिनोकार्पिक किस्मों को उगाकर 50–75 टन उपज प्रति 1000 वर्ग मीटर में प्राप्त की जा सकती है जिससे कुल आय रू. 150000–265000 तक प्राप्त की जा सकती है।

खीरे की संरक्षित खेती में होने वाली मुख्य समस्यायें एवं निवारण

- मिट्टी जनित रोग, सूत्रकृमि, चूर्णिल आसिता एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के कमी से फलों के आकार का बिगड़ना मुख्य समस्या है।
- गर्मी के मौसम में खासकर अप्रैल–मई में फलों की कीमत अच्छी मिलती है लेकिन इस समय फलों के आकार में विकृति होने की सम्भावनायें ज्यादा रहती है। इससे बचाव के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव, सिंचाई का प्रयोग, कुलिंग प्रणाली एवं उष्मा निस्तारीकरण यंत्र का प्रयोग करना चाहिए।
- मृदा जनित बीमारी एवं सूत्रकृमि से बचाव के लिए गर्मी के दिनों में गहरी जुताई, फार्मलीन (40 प्रतिशत) 1–1.5 प्रतिशत की दर से उपयोग करके 40 माइक्रोन की पालीथीन से 15 दिन के लिए ढ़क देना चाहिए। पालीथीन हटाने के बाद हल्की सिंचाई करना चाहिए। इसके अलावा मिट्टी में नीम की खली अथवा ट्राइकोड्रर्मा + स्यूडोमोनास + पैसीलोमाइसीज आदि बायोएजेन्ट का प्रयोग करना चाहिए।

सब्जी उत्पादन में प्लास्टिक मल्चिंग का महत्व

संजय कुमार सिंह, सन्दीप कुमार खरे एवं संत कुमार शर्मा'

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र टीकमगढ़

'आंचलिक कृषि अनुंसधान केन्द्र, पवारखेड़ा, होशंगाबाद (म.प्र.)

मल्चिंग का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके अंतर्गत पौधों के चारो ओर की भूमि को प्राकृतिक अवषेश या प्लास्टिक फिल्म से सुव्यवस्थित रूप से ढक दिया जाता है। औद्यानिकी में लम्बे समय से प्राकृतिक पलवार का प्रयोग होता रहा है एवं इसके लाभ से किसान भाई अवगत हैं किन्तु प्राकृतिक संसाधनों की उपयोगिता एवं कमी के कारण अन्य विकल्प की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए प्लास्टिक पलवार विकसित की गयी है कृषि क्रियाओं के अंतर्गत प्लास्टिक मल्चिंग एक महत्वपूर्ण क्रिया है। परन्तु सब्जियों के लिए प्राकृतिक एवं प्लास्टिक दोनों महत्वपूर्ण पलवार लाभप्रद है प्राकृतिक पलवार (पुआल, भूसा, सूखी घास, गन्ने की पत्तियों) का प्रयोग कर सब्जियों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार से प्लास्टिक मल्चिंग के द्वारा भी उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पलवार से कम जुताई, गुड़ाई, करने के साथ ही पानी की बचत भी की जा सकती है।

मल्चिंग की उपयोगिता

शुष्क खेती को प्रभावशाली बनाने, खर–पतवारों से रक्षा, अच्छी तरह से बीज अंकुरण एवं विकास, भूमि को कठोर होने से बचाने, पर्याप्त मात्र में नमी संरक्षण, उपज बढ़ाने, पौधों की उचित वृद्धि, अनुकूल वातावरण प्रदान करना, पानी की बचत, उत्पाद गुणवत्ता में सुधार एवं मृदा के तापमान को नियंत्रित करने हेतु मल्चिंग का उपयोग करते है।

आदर्श पलवार

एक आदर्श पलवार वह होता है जो तापमान के नियंत्रण, मृदा में आर्द्रता संरक्षण, खरपतवारों की रोकथाम के साथ ही साथ अधिक एवं उत्तम कोटि की फसल के उत्पादन में प्रभावकारी सिद्ध हो। इसके अलावा ऐसे पौधों की आसानी से उपलब्धता हो जिससे उनका प्रयोग एवं उसे खेत से हटाना दोनों ही आसान हो। ऐसे पलवार को सस्ता भी होना चाहिए। प्रकाश एवं तापक्रम का कुचालक हो, हवा के आवागमन को प्रभावित नही करता हो, जिसे शीघ्र न बदलना पड़ता हो, पौधों के लिए हानिकारक न हो एवं परिवहन में आसान हो।

प्लास्टिक पलवार के प्रकार

प्लास्टिक पलवार फिल्म का रंग दुधिया, पारदर्शी, प्रतिबिम्बित, नीला, लाल, काला आदि हो सकता है। सामान्यतः काले रंग की पलवार फिल्म का उपयोग किया जाता है। यह प्रकाश को परावर्तित नही करता है एवं शर्करा के विकास एवं फलों की गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक होता है। प्लास्टिक फिल्मों के रंगों का चुनाव विशेष लक्ष्य पर निर्भर करता है क्योंकि पलवार विभिन्न रंगों के पलवार विभिन्न प्रकाश किरणों को परावर्तित करते हैं।

काला पलवार फिल्म

बागवानी में अधिकतर काले रंग की प्लास्टिक पलवार फिल्म का प्रयोग किया जाता है। इस रंग का पलवार सूर्य की किरणों को अवशोषित करने के साथ–साथ दृश्य इन्फ्रारेड पराबैगनी प्रकाश को अवशोषित करता है। काली फिल्म भूमि में नमी संरक्षण, खरपतवारों से बचाने एवं मृदा के तापमान को नियंत्रित करने में सहायक होती है। मृदा की उष्मता उपयुक्त स्तर पर ही उचित रहती है। पलवार फिल्म सूर्य के प्रकाश को मृदा में प्रवेश नहीं करने देता इससे खरपतवारों का प्रकाश संष्लेशण नहीं हो पाता है एवं उसकी वृद्धि पलवार फिल्म के नीचे ही रूक जाती है।

नीले रंग की पलवार फिल्म

यह फिल्म भूमि में नमी संरक्षण, खर–पतवार नियंत्रण के साथ–साथ भूमि की तापक्रम को कम करती है। नीले रंग की पलवार से माहू एवं थ्रिप्स का प्रकोप कम होता है।

पारदर्शी पलवार फिल्म

पारदर्शी पलवार फिल्म का प्रयोग अधिकतर भूमि के सोलाराइजेशन में होता है। मृदा जनित रोगों की रोकथाम में भी यह पलवार सहायक होता है। यह फिल्म बहुत कम सूर्य के किरणों को अवशोषित करती है। पानी की बूंदें संघनित होकर पलवार के अंदर रहती हैं एवं गर्मी की ऊष्मता बाहर नहीं जाने देती है। ठण्डे मौसम में खेती करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

सफेद–काली पलवार फिल्म

पलवार का सफेद रंग ऊपरी सतह पर एवं काला रंग आंतरिक सतह पर फसल की उपज को बढ़ाता है क्योंकि काला रंग खर–पतवार की संख्या को कम करता है एवं सफेद रंग प्रकाश को परावर्तित करता है। मृदा के तापमान को कम करने के लिए सफेद पलवार का प्रयोग किया जाता है यह प्रकाश को परावर्तित करता है जिससे तापमान कम हो जाता है। यह फसल को ग्रीष्म ऋतु में वृद्धि करने में मदद करता है।

सिल्वर पलवार फिल्म

यह पलवार सामान्यतः मृदा को ठंडक देने में मदद करता है। रस चूसक कीटों जैसे– माँहू आदि को हटाने में लाभदायक होती है जो विभिन्न वायरस जनित बिमारियों को फैलाने में वाहक का कार्य करते हैं।

लाल पलवार फिल्म

यह पलवार अंशतः पारदर्शी होती है जो कि इन्फ्रारेड विकिरणों को बदलकर पौधों में विकास एवं उपापचय के द्वारा जल्दी फलन एवं कुछ फलों एवं सब्जियों के उपज को बढ़ाने में सहायक होता है। लाल पलवार में यह भी देखा गया है कि यह निश्चित रूप से मृदा के तापमान को बढ़ा देता है।

फल वाली फसल में प्लास्टिक पलवार बिछाने की विधि

सामान्यतः 0.90–1.80 मी. तक की चौड़ाई वाली प्लास्टिक फिल्म का उपयोग किया जाता है।

फसल काल	फसल का नाम	प्लास्टिक पलवार फिल्म की मोटाई
एक वर्षीय फसल	मुख्यतः सब्जियाँ	25 माईक्रोन
दो वर्षीय फसल	केला, पपीता एवं अन्य व्यवसायिक फसलें आदि	50 माईक्रोन
बहु वर्षीय फसल	सभी फलदर और काष्ठीय पौधे	100 माईक्रोन

1 माइक्रोन = 4 गेज

छोटे आकर एवं कम दूरी पर लगाये जाने वाले फलदार पौधे जैसे पपीता, स्ट्राबेरी आदि के पौधे रोपण से पूर्व मेढ़ के ऊपर पलवार फिल्म को बिछाना चाहिए एवं दोनों तरफ से लम्बवत किनारे को मिट्टी से दबा देना चाहिये पौधों को लगाने की दूरी के आधार पर पलवार फिल्म में छेद करके पौधों को लगा दिया जाता है। फलोद्यान में सामान्यतः 100 माइक्रोन मोटाई की प्लास्टिक पलवार फिल्म उपयोग की जाती है। फलदार वृक्षों के रोपण के बाद प्लास्टिक फिल्म को बिछाना चाहिए। बागों में वृक्षों के थाले के आकर के बराबर की प्लास्टिक पलवार फिल्म को खड़ा काटकर बिछाना चाहिए। बिछाने के बाद अच्छी तरह चारों तरफ से उसे मिट्टी में दबा देना चाहिए ताकि फिल्म हवा से उड़ने न पाये।

सब्जी वाली फसल में प्लास्टिक पलवार बिछाने की विधि

सामान्यतः प्लास्टिक पलवार फिल्म सब्जी वाली फसल की बुआई या पौध रोपण के समय पलवार बिछाने वाली मशीन या हाथों द्वारा पहले से बनी हुई मेढ़ पर बिछाया जाता है। हाथों द्वारा प्लास्टिक फिल्म को बिछाते समय ध्यान रखने योग्य बात यह है की फिल्म के किनारे सही तरह से दबे होने चाहिए जिससे की फिल्म तेज हवा चलने पर न उड़े। पलवार बिछाने वाली मशीन जो पलवार बिछाने के अलावा मेड़ बनाने, फिल्म पर मिट्टी चढ़ाने एवं ड्रिप लाइन भी बिछाने का काम करती है। इसके बाद बीज बोने और पौधे लगाने की दूरी के अनुसार फिल्म में छेद करके बुबाई और रोपाई की जाती है।

सिंचाई का प्रबंधन

प्लास्टिक पलवार लगाने के पश्चात् सिंचाई हेतु टपक सिंचाई पद्धति सर्वोत्तम घटक है। यदि हमारे पास ड्रिप सिंचाई की व्यवस्था नहीं है तो फिल्म को एक तरफ से खुला छोड़ कर सिंचाई की जा सकती है।

आवश्यक सावधानियाँ

पलवार लगाने के बाद उसको ज्यादा तनाव नहीं देना चाहिए। ऐसी स्थिति में जैसे ही तापमान में वृद्धि होगी या अन्य कृषि क्रियाएं करने पर इसके फटने की सम्भावना बढ़ जाती है। पलवार को अत्याधिक गर्मी के समय न बिछाएं। एक बार उपयोग होने के पश्चात् व्यवस्थित लपेटकर रखी गई फिल्म पुनः उपयोग की जा सकती है; परन्तु ध्यान रहे की यह फटने न पाए।

पलवार से उपज में वृद्धि

आलू, बैंगन, अदरक, हल्दी में 25–30 प्रतिशत एवं टमाटर, मिर्च, गोभी में 40–60 प्रतिशत की उपज वृद्धि पायी गई है।

लवणीय मृदाओं में सब्जी उत्पादन कैसे करें?

इन्दीवर प्रसाद, राजेश कुमार, पी.एम. सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

सभी फसलों को अपने जीवनकाल के दौरान विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय तनावों (प्रतिबलों) का सामना करना पड़ता है। पर्यावरणीय तनाव दो प्रकार के होते हैं: जैविक तनाव और अजैविक तनाव। जैविक तनाव रोगों, कीटों और पशुओं जैसे जीवों के कारण होते हैं, जबकि अजैविक तनाव पारिस्थितिकी तंत्र के अवयव जैसे मृदा एवं जल की लवणता, सूखा, गर्मी, ठंडा, जल जमाव, पोषक तत्व की कमी, धातु विषाक्तता, गैसीय प्रदूषण और पराबैंगनी विकिरण इत्यादि कारणों से होते हैं। पूरे विश्व में सूखा और लवणता फसल हानि के दो मुख्य कारण हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। भारत की कुल क्षेत्रफल के 47 प्रतिशत हिस्से (143 मिलियन हेक्टेयर) पर खेती की जाती है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ लवणों के निक्षालन हेतु पर्याप्त वर्षा का अभाव रहता है, वहां लवणता विकराल समस्या बनी रहती है। पूरे भारतवर्ष में मृदा एवं जल की लवणता कृषि के लिए एक गंभीर समस्या है। पूरे भारत वर्ष में कुल 6.72 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता की समस्या से ग्रसित है, जिसका 32 प्रतिशत भाग अथवा 2.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल गुजरात राज्य में फैला हुआ है। उत्तर प्रदेश लवणता से प्रभावित भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है जहाँ लगभग 1.32 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणता की समस्या से ग्रसित है। हमारे देश में लवणग्रस्त क्षेत्रों का विस्तार विभिन्न प्रदेशों गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल आदि में फैला हुआ है (सारिणी 1)। भारत की प्रभावित मृदाओं का लगभग 56 प्रतिशत क्षारीयता एवं 44 प्रतिशत लवणीयता से ग्रसित है। गंगा का उपजाऊ क्षेत्र क्षारीयता की समस्या से सर्वाधिक ग्रसित है।

चित्र 1: लवण प्रभावित काली मृदा

सारिणी 1: भारत के विभिन्न राज्यों में लवण प्रभावित मृदाओं का क्षेत्रफल (हेक्टेयर)

राज्य	लवणीय मृदाएँ	क्षारीय मृदाएँ	कुल
गुजरात	1680570	541430	2222000
उत्तर प्रदेश	21989	1346971	1368960
महाराष्ट्र	184089	422670	606759
पश्चिम बंगाल	441272	0	441272
राजस्थान	195571	179371	374942
तमिलनाडु	13231	354784	368015
आन्ध्र प्रदेश	77598	196609	274207
हरियाणा	49157	183339	232556
बिहार	47301	105852	153153
पंजाब	0	151717	151717
कर्नाटक	1893	148136	150029
ओडिशा	147138	0	147138
मध्य प्रदेश	0	139720	139720
अंडमान एवं निकोबार	77000	0	77000
केरल	20000	0	20000
कुल योग्य	**2956809**	**3770659**	**6727468**

स्रोत : राष्ट्रीय दूर संवेदी संस्थान एवं सहयोगी, 1996, मैपिंग साल्ट अफेक्टेड सोइल्स ऑफ इण्डिया, हैदराबाद।

लवणग्रस्त मृदाओं को विद्युत चालकता, विनिमय योग्य सोडियम एवं पी.एच. मान के आधार पर निम्नलिखित तीन वर्गों (सारिणी–2) में बाँटा गया है–

सारिणी 2: लवणीय, क्षारीय एवं लवणीय–क्षारीय मृदाओं का वर्गीकरण

मृदा का प्रकार	विद्युत चालकता (डेसीमन्स/मीटर)	विनिमय योग्य सोडियम (प्रतिशत)	पी.एच. मान	रंग	बनावट
लवणीय मृदा	> 4.0	<15.0	<8.5	दुधिया सफेद	खुरदरी
क्षारीय एवं ऊसर मृदा	< 4.0	> 15.0	<8.5	कालापन लिए सफेद	कठोर
लवणीय– क्षारीय मृदा	> 4.0	> 15.0	<8.5	काला भूरा रंग	खुरदरी एवं कठोर

मृदा की लवणता एवं सब्जी उत्पादन

मृदा की लवणता अधिकतर सब्जी फसलों की उत्पादकता कम कर देती है जिसका मुख्य कारण सब्जियों का लवणों के प्रति कम सहिष्णुता है। वैश्विक स्तर पर सब्जियों का उत्पादन एवं खपत बढ़ाना एक प्राथमिकता है। दैनिक जीवन में विटामिन सी, थियामिन, नियासिन, पाइरोडॉक्सिन, फोलिक एसिड, खनिज और आहार फाइबर के स्रोत के रूप में सब्जियाँ मानव पोषण और स्वास्थ्य के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

लवणता के कारण अंकुरण दर कम हो जाता है तथा सामान्यतः पौधों का विकास रूक जाता है (चित्र 2)। कम विकास दर के कारण पत्तियों की संख्या कम हो जाती है तथा उनका आकार भी छोटा होता है। लवणीय मृदा में पौधों के जड़ों की लम्बाई एवं मोटाई में कमी होती है। इन सबके अलावा पौधों में परिपक्वता दर में भी अनिश्चित बदलाव पाए जाते है। इन सभी प्रभावों के कारण अधिक लवणता स्तर पर सब्जियों की उत्पादन क्षमता में कमी होती है।

सब्जियों को उनकी लवण सहनशीलता के आधार पर तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है

1. परासरणी दाब के प्रति सहनशीलता
2. सोडियम बहिष्करण
3. ऊतक सहनशीलता

चित्र 2: मिर्च में लवणता के कारण कम पौध संख्या

सब्जी फसलों में लवणता/क्षारीयता को सहन करने की उनकी क्षमता में भिन्नता पाई जाती है। उन सब्जी फसलों, जिसमें पानी की अधिक आवश्कता होती है, लवणीय मृदाओं में उनका चुनाव नहीं करना चाहिए क्योंकि लवणता की समस्याओं को बढ़ाते हैं। बुआई का उचित समय भी सब्जी फसलों की लवण सहनशीलता में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, देर से बोई गयी फसल समय पर बोई गए फसल की तुलना में कम लवणता को ही सहन कर सकती हैं। गर्म जलवायु में उगाई जाने वाली सब्जियों की तुलना में ठण्डे जलवायु वाली सब्जियों में कम वाष्पीकरण के कारण लवणता की समस्यां कम पाई जाती है। विभिन्न सब्जियों में लवण सहनशीलता की सीमा सारिणी– 3 में दी गई है जिसके अनुसार फसलों का चुनाव करना चाहिए,।

लवणीय मृदाओं में सब्जी उत्पादन

1. **मृदा में सुधार द्वारा लवणता प्रबंधनः** निम्नलिखित तकनीकों से मिट्टी की लवणता को कम करके सब्जी उत्पादन कर सकते है :

क. **जिप्सम का प्रयोगः** क्षारीय भूमि सुधारने के लिए रसायनिक भूमि सुधारक पदार्थों जैसे जिप्सम, पाइराइट, फॉस्फोजिप्सम एवं गंधक का अम्ल आदि का प्रयोग किया जाता है। जिप्सम रसायनिक रूप से कैल्शियम सल्फेट है जिसमें कैल्शियम और गंधक होता है। क्षारीय भूमि सुधार के लिये यह आवश्यक है कि प्रयोग किये जाने वाले जिप्सम की शुद्धता 70 प्रतिशत से कम न हो। यदि मृदा का पीएच मान अधिक है तो जिप्सम का प्रयोग सीधे खेत में किया जा सकता है और यदि भूमिगत जल में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा 2 से अधिक है तो जिप्सम बेड तकनीक को उपयोग में लाना चाहिए। क्षारीय भूमि सुधार से पूर्व खेत से मिट्टी का नमूना लेकर प्रयोगशाला में उसकी जांच करानी चाहिए और भूमि सुधार के लिये आवश्यक जिप्सम की मात्रा की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। मृदा के

सारिणी 3: मृदा तथा सिंचाई जल की लवणता के प्रति विभिन्न सब्जियों की प्रतिरोधक क्षमता

सब्जी	मृदा		सिंचाई जल	निर्धारण
	थ्रेसहोल्ड (डेसी प्रति मी.) ईसीई	स्लोप (प्रतिशत प्रति डेसी प्रति मी. इकाई)	थ्रेसहोल्ड (डेसी प्रति मी.) ईसीई	
सतावरी	4.1	2.0	2.7	सहनशील
बीन	1.0	19.0	0.7	संवेदी
ब्रोकोली	2.8	9.2	1.9	अल्प संवेदी
गाजर	1.0	14.0	0.7	संवेदी
फूल गोभी	–	–	1.9	अल्प संवेदी
सेलेरी	1.8	6.2	1.2	अल्प संवेदी
बैंगन	1.1	6.9	0.7	अल्प संवेदी
सलाद	2.0	13.0	0.9	अल्प संवेदी
खरबूजा	1.0	1.0	–	अल्प संवेदी
भिण्डी	1.2	–	–	संवेदी
प्याज	1.2	16.0	0.8	संवेदी
मटर	1.5	14.6	–	अल्प संवेदी
मिर्च	1.5	14.0	1.0	अल्प संवेदी
आलू	1.7	12.0	1.1	अल्प संवेदी
पार्सले	6.3	9.6	–	कम सहनशील
चुकंदर	4.0	–	2.7	कम सहनशील
पालक	2.0	7.6	1.3	संवेदी
स्ट्रॉबेरी	1.0	33.0	0.7	संवेदी
टमाटर	2.5	9.9	1.7	अल्प संवेदी

स्रोत : मास एवं होफमैन (1977), मास एवं ग्रेटन (1999)

पीएच मान के अनुसार 10 से 15 टन प्रति हेक्टेयर जिप्सम की आवश्यकता पड़ती है।

ख. **उपसतही जल निकास तकनीक** : इस तकनीक मे भूमि सतह से 1.0–1.5 मीटर की गहराई पर 60 से 65 मीटर के अंतराल पर छिद्रयुक्त पाइप बिछाई जाती है। इन पाइपों के द्वारा घुलनशील लवणों को निक्षालित करके सम्प में एकत्रित किया जाता है जिसे बाद में खुली जल निकास की नाली में डाल दिया जाता है।

ग. **बरमा छेद तकनीक**: क्षारीय मृदा जिनकी उपसतह में कंकर की परत होती है उनमें वृक्षारोपण करने के लिए ट्रैक्टर चालित बरमा छेद तकनीक कारगर साबित हुयी है। इस तकनीक के तहत ट्रैक्टर चालित बरमें से 20 सेमी व्यास के 120–140 सेमी गहरे गड्ढे बनाये जाते हैं। गड्ढों की गहराई कंकर की परत की गहराई पर निर्भर करती है। इस विधि द्वारा कंकर परत को तोड़ा जाता है। सामान्यत 20 ग्राम जिंक सल्फेट के बने हुऐ मिश्रण से भरकर वापस इनमें क्षार सहनशील किसमें लगायी जाती हैं।

2. **जैविक तथा सस्य विधियों द्वारा लवणता प्रबंधन**: निम्नलिखित जैविक एवं सश्य क्रियाओं को अपनाकर लवणता की समस्या से निबटा जा सकता है–

क) सब्जी फसल एवं उनकी सहनशील प्रजातियों का चुनाव

लवणीय मृदाओं में सब्जी फसलों की सहनशीलता में काफी भिन्नता पाई जाती है। इसलिए मृदा की लवणता के अनुसार सब्जियों का चयन काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। लवणीय सिंचाई जल वाले क्षेत्रों में लवण सहनशील सब्जियों को उगाना लाभदायक होता है जिनमें लवणों को सहन करने की अधिक क्षमता हो ताकि उत्पादन में न्यूनतम कमी हो सके। सब्जियाँ अनाज वाली फसलों की तुलना में लवणों के प्रति

अधिक संवेदनशील होती हैं। सब्जियों की लवण सहनशीलता उनकी किस्मों एवं मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती हैं। तुलनात्मक रूप से अधिक लवणीय जल का हल्की एवं रेतीली मृदा में उपयोग आसानी से किया जा सकता है। सब्जियों के साथ ही लवणों को अधिक सहन करने वाली किस्मों का चयन भी प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिये क्योंकि एक ही सब्जी की विभिन्न किस्मों की लवण सहनशीलता भिन्न होती है। भारतवर्ष में मुख्य रूप से उगाई जाने वाली सब्जियों की लवण सहनशील किस्मों का वर्णन सारिणी 4 में किया गया है।

सारिणी 4: भारत के विभिन्न राज्यों के लवण प्रभावित क्षेत्रों के लिए अनुमोदित फसले

सब्जी फसल की प्रजाति	तनाव सहने की क्षमता (ईसीई/पीएच)	लवणीय दशा में उत्पादन (कु./हे.)
विभिन्न राज्यों के लवण प्रभावित क्षेत्रों के लिए अनुमोदित		
भिण्डी		
काशी क्रांति	ईसीई 6.0–7.0 डेसी/मी. पी.एच. मान 8.8–9.0	55–60
पूसा सावनी	ईसीई 6.0–6.5 डेसी/मी. पी.एच. मान 8.5–8.8	50–52
पालक		
आल ग्रीन	ईसीई 6.0–6.5 डेसी/मी.	80–90
लहसुन		
एच.जी.–6	ईसीई 8.0–8.5 डेसी/मी. पी.एच. मान 8.5–9.0	60–75
यमुना सफेद	ईसीई 3.9 डेसी/मी.	60–75
सेलेरी		
विदेशी किस्में	ईसीई 10.0–11.0 डेसी/मी.	300
टमाटर		
काशी अमन	ईसीई 6.5–7.0 डेसी/मी.	300–325
अर्का रक्षक	ईसीई 6.0–6.5 डेसी/मी.	315–340
खरबूजा		
पूसा मधुरस	ईसीई 6.0–6.5 डेसी/मी.	180–200
चुकन्दर		
डेट्रॉइट डार्क रेड	ईसीई 8.0–8.5 डेसी/मी.	175–185
जीरा (गुजरात का भाल क्षेत्र के लिए अनुमोदित)		
जीसी–4	ईसीई 6.0 डेसी/मी.	8–10
प्याज		
हिसार–2 एवं पंजाब सेलेक्शन, एन–53	ईसीई 3.9 डेसी/मी.	
अरवी		
पानी सरू, श्री रश्मि, श्री पल्लवी	ईसीई 4.0 डेसी/मी.	
शकर कंद		
श्री नंदिनी, एच–41, सीएआरआई एसपी–1, सीएआरआई एसपी–2 (गौरी)	ईसीई 2.5 डेसी/मी. ईसीआईडब्लू 6.0–8.0 डेसी/मी.	
चुकंदर (ओडिसा के लवणीय तटीय एवं निकट के क्षेत्र के लिए अनुमोदित)		
पंत एस–1, पंत एस–10, आईआईएसआर–2, मेज्जान्पोली		

(ख) उपयुक्त फसल चक्र का चुनाव

लवण सहनशील सब्जियों को उपयुक्त फसल चक्र अपनाकर लवणग्रस्त मृदा को हानि पहुँचाए बिना अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। लवणीय क्षेत्रों में प्रायः उन सब्जी फसलों तथा फसल चक्रों को प्राथमिकता देनी चाहिए जिनको पानी की कम आवश्यकता पड़ती है ताकि भूमि में सिंचाई जल द्वारा लवणों की कम से कम मात्रा एकत्रित हो सके।

(ग) सिंचाई जल का प्रबंधन

जल प्रबंधन में सिंचाई निर्धारण का विशेष स्थान है, जिसमें प्रत्येक सिंचाई, सिंचाई अंतराल तथा लगाए जाने वाले पानी की गहराई मुख्य कारक है। सिंचाई के बीच अंतराल कम या अधिक होने से फसल उत्पादकता घटती है तथा जल उपयोग क्षमता कम होती है। मृदा की उच्च सोडियम विनिमयता सिंचाई जल व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है इसलिए ऊसर समस्या के समाधान में जल प्रबन्धन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऊसर भूमि में बाद की अवस्थाओं में लवणीय जल का उपयोग लाभदायक होता है।

(घ) खाद एवं उर्वरकों का प्रबंधन

उर्वरकों का उपयुक्त व संतुलित प्रयोग भी लवणग्रस्त मृदा प्रबंधन नीति का एक अहम भाग है। सामान्यतः लवणग्रस्त मृदा में सामान्य मृदा की तुलना में उर्वरकों की अधिक आवश्यकता होती है। इसका मुख्य कारण लवणग्रस्त मृदाओं में परासरणीय दबाव अधिक हो जाने के कारण पोषक त्तवों की उपलब्धता सामान्य मृदाओं की तुलना में कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप फसल की पोषण लेने की क्षमता कम हो जाती है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में सिंचाई जल के साथ–साथ घुलनशील उर्वरकों एवं आवश्यक पोषक त्तवों का साथ प्रयोग किया जा सकता है इस प्रक्रिया को फर्टिगेशन कहते हैं। फर्टिगेशन द्वारा उर्वरक की खपत 25–40 प्रतिशत कम हो सकती है। सब्जी वाली फसलों में 20–25 टन गोबर की खाद का उपयोग करते रहने से मृदा में लवणों द्वारा होने वाले दुष्प्रभावों को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है। हरी खाद के रूप में ढैंचा एवं मूंग का समावेश, अवशेष प्रबन्धन, खेती के संसाधनों का पुर्नचक्रण अपनाने से रसायनिक पोषकों की काफी मात्रा को बचाया जा सकता है तथा यह पर्यावरण के अनुकूल भी होते हैं।

(ड़) गहरी जुताई

लवण प्रभावित क्षेत्रों में खेत की तैयारी के समय लवण निक्षालन एक आवश्यक प्रकिया है। अगर खेत परती है, तो गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे निक्षालन सही रूप से हो सके। मृदा में जमा लवणों को निक्षालन द्वारा प्रभावी रूप से हटाया जा सकता है, लेकिन इसके लिए पर्याप्त पात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। विशेषतौर से अधिक पौध सघनता वाली फसलें जैसे गाजर, प्याज, मूँगफली इत्यादि एवं लवण निक्षालन उन फसलों के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है जो लवणों की अधिक मात्रा के प्रति संवेदनशील होती है जैसे मटर, गन्ना एवं दलहनी सब्जियाँ।

(च) भूमि का समतलीकरण

समान रूप से पानी का वितरण निश्चित् करने के लिए खेत को सावधानीपूर्वक समतल करना आवश्यक है। समतलीकरण से खेत समान रूप से बराबर हो जाता है जिससे पानी की गहराई खेत में एक समान रहती है जो उच्च जल उपयोगी क्षमता प्रदान करती है। समतलीकरण द्वारा पादप पोषक त्तवों का बेहतर उपयोग सुनिश्चित होता है जिसके कारण जल एवं उर्वरकों की लागत कम आती है, तथा खेत में अधिक जल इकट्ठा नहीं हो पाता तथा उसकी निकासी भी आसानी से हो जाती है।

(छ) पलवार (मल्च) का उपयोग

दो सिंचाई व परती के बीच अंतराल में उच्च वाष्पोत्सर्जन के दौरान निक्षालित लवण पुनः मृदा की उपरी सतह पर आने की प्रवृति रखते हैं ऐसी कोई भी गतिविधि जो वाष्पीकरण को कम करे तथा मृदा जल प्रवाह को नीचे की सतहों में बढ़ाती हो, मृदा लवणीयता को रोकने में सहायक होती है। शुरूआती दिनों में जब घुलनशील लवणों की सघनता अधिक होती है उस समय पलवार सार्थक रूप से सहायक सिद्ध होती है। पलवार की हुयी मृदा में बार–बार जल छिड़काव से मृदा की निक्षालन क्षमता में वृद्धि होती है जिससे फसल उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव पडता है।

(ज) सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली

सीमित अंतःस्पंदन क्षमता की वजह से क्षारीय मृदाओं की जल अवशोषक क्षमता कम होती है। इन मृदाओं की जल आपूर्ति क्षमता और भी कम हो जाती है क्योंकि इनका जल

संचालन कम होता है। ऐसी परिस्थितियों में टपक एवं फव्वारा विधि से सिंचाई सतही सिंचाई की अपेक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। टपक विधि, सिंचाई की ऐसी तकनीक है जिसमें जल नियंत्रित रूप में बूँद– बूँद लगाया जाता है। इससे मृदा में उच्च नमी की मात्रा बनी रहती है तथा अंतःस्रवण कम मात्रा में होता है। इस विधि की उपयुक्त विशेषताएं क्षारीय जल को भी कृषि में उपयोगी बनाती है।

(झ) अन्य सस्य क्रियाएं

लवणीय मृदाओं में फसलों को मेड़ के बीच में एक किनारे में लगाना चाहिए ताकि लवणों का प्रभाव पौधों की जडों पर कम पडे। वहीं दूसरी ओर क्षारीय मृदाओं में फसलों की बुआई कूड़ में करनी चाहिए। सूखी भूमि या कम नमी पर बुआई के बाद फुआरे से हल्की सिंचाई करने पर फसलों का जमाव अच्छा होता है। सतही सिंचाई में फसल की आवश्यकता से अधिक जल की मात्रा का उपयोग करना चाहिए, जिससे लवणों की अधिक मात्रा का निक्षालन जड़ क्षेत्र से हो सके।

(ञ) जैविक सुधारक

इसमें गन्ना मिल का प्रेसमड, शीरा, धान की पुआल, भूसी, तापीय विद्युत गृह की राख, जलखुंभी, कम्पोस्ट खाद, गोबर की खाद, कच्चा गोबर इत्यादि कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग भी ऊसर सुधार के लिये किया जाता है। जैविक पदार्थ का उपयोग करने से भूमि की भौतिक, रसायनिक एवं जैविक दशा में परिवर्तन होने के फलस्वरूप क्षारीय भूमि का सुधार होने लगता है। इसके अतिरिक्त ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग करके ऊसर के प्रति सहनशील सब्जियाँ जैसे चुकन्दर, पालक आदि उगायी जा सकती है जिससे भूमि का भली–भाँति सुधार हो जाता है। यह विधि प्राकृतिक होने के कारण सस्ती है किन्तु सुधार में अधिक समय लगता है।

वर्तमान समय में खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल लगातार घटता ही जा रहा है जबकि हमारी पोषण सुरक्षा हेतु सब्जी फसलों की मांग बढ़ती जा रही है। अतः आने वाले समय में हमें अपनी बढती हुई जनसंख्या को खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए 68 लाख हेक्टेयर ऊसर प्रभावित क्षेत्र में भी सब्जी उत्पादन को बढ़ावा देना पड़ेगा। लवणीय मृदा के प्रबंधन हेतु अनेक तकनीकें विकसित की गयी है तथा इन तकनीकों को अपनाकर उत्पादक ऊसर प्रभावित खेतों से भी सब्जी उत्पादन ले सकते है। लवण सहनशील सब्जियों एवं उनकी उपयुक्त किस्मों का चयन इस समस्या से निबटने में सबसे उपयुक्त तकनीक है। इसी क्षेत्र के सुधार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कुल सब्जी उत्पादन की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।

संसार एक कड़वा वृक्ष है, इसके दो फल ही अमृत जैसे होते हैं
– एक मधुर वाणी और दूसरी सज्जनों की संगति।

– चाणक्य

बूँद–बूँद (ड्रिप) सिंचाई द्वारा सब्जी उत्पादन

अनन्त बहादुर, डी. के. सिंह एवं जगदीश सिंह

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

विगत 50 वर्षों में (1965–2015) भारत ने खाद्य उत्पादन में लगभग 3.7 गुणा बढ़ोत्तरी दर्ज किया है जो सत्तर के दशक में हरित क्रान्ति के माध्यम से सम्भव हो सका है। जैसा हम जानते है कि हरित क्रान्ति की सफलता में उन्नतशील किस्मों के अलावा बेहतर सिंचाई व्यवस्था, उर्वरक एवं कृषि रसायनों के प्रयोग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिंचाई के लिए जल–स्रोतों के अविवेकपूर्ण अन्धाधुन्ध दोहन से भूमिगत एवं अन्य जल स्रोतों से जल की उपलब्धता लगातार घटती चली गई। उदाहरण के तौर पर जहाँ 1950 में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष पानी की उपलब्धता लगभग 55 लाख लीटर थी, वही 2010 में घटकर 15.45 लाख लीटर हो गयी, जिसके फलस्वरूप हमारा देश भी जल संकट वाले देशों की श्रेणी (17 लाख लीटर प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष से कम) में शामिल हो गया। कृषि के लिए भूमिगत जल के अन्धाधुन्ध दोहन से प्रति वर्ष लगभग 1–2 फीट जलस्तर नीचे गिर रहा है, और बहुत से क्षेत्रों में भूमिगत जल की स्थिति बहुत गम्भीर है। हमारे देश में कुल उपलब्ध ताजे जल का लगभग 80 प्रतिशत भाग सिंचाई के लिए प्रयोग होता है। अधिक जनसंख्या दबाव, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण इत्यादि के कारण भविष्य में कृषि के लिए समुचित जल उपलब्ध करा पाना एक चुनौती है। परम्परागत पुरानी सिंचाई पद्धति जिसमें पूरे खेत में लगभग 2 इंच पानी भर दिया जाता है, इस विधि से लगभग 60–65 प्रतिशत पानी बरबाद हो जाता है। बूँद–बूँद या ड्रिप सिंचाई भविष्य में जल उपलब्धता को देखते हुए हमारे देश के लिए एक अच्छा सिंचाई का विकल्प है। इस तकनीक के माध्यम से पानी को पूरे खेत में न देकर केवल पौधों की जड़ों में दिया जाता है जिससे लगभग 90 प्रतिशत जल पौधों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है।

भारत में ड्रिप सिंचाई के विस्तार की सम्भावना

भारत में कुल सिंचित क्षेत्रफल का केवल 5.5 प्रतिशत क्षेत्रफल सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप + स्प्रिंकलर) के अन्तर्गत आता है जबकि इजराइल में 90 प्रतिशत, रूस में 78 प्रतिशत, ब्राजील में 52 प्रतिशत तथा चीन में 10 प्रतिशत कृषि क्षेत्र पर सूक्ष्म सिंचाई का प्रावधान है। वर्ष 2015 में सूक्ष्म सिंचाई के अन्तर्गत कुल 77.30 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल था, जिसमें ड्रिप सिंचाई द्वारा सिंचित क्षेत्रफल लगभग 33.70 लाख हेक्टेयर था। वर्ष 2011–12 के आधार पर यह आंका गया कि सिंचित कृषि भूमि की उत्पादकता 35352 प्रति हेक्टेयर/वर्ष है। एक अन्य आंकलन के अनुसार उच्च मूल्य संवर्धन वाली फसलों जैसे फल, सब्जियाँ, तिलहन, मसालें, गन्ना इत्यादि जो सिंचाई के प्रति संवेदनशील है, उनकी प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बहुत अधिक यानि 1,41077/वर्ष है, जबकि मुख्य भोजन वाली फसलों जैसे धान, गेहूँ, मक्का एवं दलहन की उत्पादकता सिर्फ रू. 41169/हे./वर्ष है। यदि उच्च मूल्य संवर्धन वाली फसलों में फल एवं सब्जियों की आर्थिक उत्पादकता पृथक करके देखा जाये तो सब्जियों का प्रति हे. 244820 एवं फलों का 216458/वर्ष है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि यदि किसानों की आमदनी बढ़ानी है तो उच्च मूल्य संवर्धन वाली फसलों विशेषकर सब्जियों एवं फलों की खेती का ज्यादा से ज्यादा विस्तार करना होगा जिसके लिए बूँद–बूँद सिंचाई एवं पलवार को अपनाना एक विवेकपूर्ण एवं लाभकारी कदम होगा। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में ड्रिप सिंचाई के विस्तार की सम्भावना लगभग 270 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर है जिसमें सबसे अधिक (लगभग 26 प्रतिशत) विस्तार की सम्भावना अकेले उत्तर प्रदेश में है। केन्द्र एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा ड्रिप सिंचाई के विस्तार के लिए बहुत जोर दिया जा रहा है। ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों को 50 से 90 प्रतिशत तक छूट दिया जा रहा है जिससे भविष्य में इसके विस्तार की प्रबल सम्भावना है।

बूँद–बूँद सिंचाई से लाभ

बूँद–बूँद या ड्रिप सिंचाई में पानी एवं उर्वरक सीधे पौधे की जड़ों में दिया जाता है जिससे पानी की भारी बचत होती है। एक आंकलन के अनुसार ड्रिप सिंचाई से औसतन 30.5 प्रतिशत ऊर्जा की बचत, 28.5 प्रतिशत उर्वरक में बचत, 42.4 प्रतिशत फलों एवं 53 प्रतिशत सब्जियों के उत्पादन में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त ड्रिप सिंचाई पद्धति अपनाने से किसानों की औसत आय में लगभग 42 प्रतिशत वृद्धि होती है। इस पद्धति के अपनाने से सब्जियों में होने वाले फायदे निम्नलिखित हैः

1. फसल उत्पादकता में वृद्धि

ड्रिप सिंचाई एवं फर्टीगेशन से सब्जियों की उत्पादकता में बहुत वृद्धि दर्ज की गई है। भारत में सब्जियों पर हुए विभिन्न प्रयोगों से पता चलता है कि ड्रिप सिंचाई से सब्जियों में 25–55 प्रतिशत उपज में वृद्धि होती है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी में किए प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला गया कि ड्रिप सिंचाई एवं पलवार के प्रयोग से टमाटर में 27 प्रतिशत, ग्रीष्म ऋतु भिण्डी में 65–72 प्रतिशत एवं संकर मिर्च में 84 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि दर्ज की गयी।

2. पानी की बचत

जैसा कि हम जानते है कि ड्रिप सिंचाई का विकास सीमित जल उपलब्धता में प्रभावी उत्पादन प्राप्त करने के लिए किया गया था। चूँकि इस पद्धति में पानी पौधे के जड़–क्षेत्र में बूँद–बूँद करके पौधे की जल माँग के अनुरूप दिया जाता है इससे पानी की हानि (अन्तःशरण, पार्श्व बहाव या वाष्पीकरण) कम से कम होता है। ड्रिप पद्धति के साथ यदि पालीथीन पलवार का प्रयोग किया जाये तो अपेक्षाकृत और अधिक पानी बचाया जा सकता है। सब्जी की फसलों में किए गये प्रयोगों से पता चलता है कि सतही सिंचाई की अपेक्षा 35 से 65 प्रतिशत पानी की बचत ड्रिप पद्धति से किया जा सकता है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी में किए गये प्रयोगों से यह पता चला है कि सतही सिंचाई की अपेक्षा ड्रिप सिंचाई से टमाटर में 55–62 प्रतिशत, भिण्डी में 31–47 प्रतिशत, ब्रोकली में 45 प्रतिशत, खीरा में 34 प्रतिशत तथा मिर्च में 54 प्रतिशत पानी की बचत होती है। प्रयोग से यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि टमाटर में सतही सिंचाई की अपेक्षा ड्रिप सिंचाई में लगभग 4 गुना अधिक जल उपयोग दक्षता (उपज एवं सिंचाई जल की मात्रा का अनुपात) प्राप्त की जा सकती है। ड्रिप सिंचाई से दिया गया 85–90 प्रतिशत पानी सब्जियों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है जबकि सतही सिंचाई का 35–40 प्रतिशत ही पानी फसलों द्वारा उपयोग किया जाता है।

3. खर–पतवार नियंत्रण

ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत पानी सिर्फ पौधे की जड़–क्षेत्र में दिया जाता है, शेष लगभग 70 प्रतिशत भाग हमेशा सूखा रहता है जिससे खर–पतवार के जमाव एवं विकास के लिए अनुकूल परिस्थिति नही मिल पाता है, और खर–पतवार कम जमते हैं। सब्जियों में अच्छी उपज के लिए कम से कम 3–4 बार हाथ से निराई–गुड़ाई करनी पड़ती है जिसमें बहुत श्रम एवं धन खर्च होता है। ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत लगाई गयी सब्जियों में खर–पतवार की सघनता ड्रिपर एवं लैटरल पाइप के आस–पास ज्यादा रहती है, बाकी खेत में बहुत कम खर–पतवार देखे जाते है। ड्रिप पद्धति के साथ पलवार का प्रयोग काफी लाभप्रद होता है जिससे उत्पादन में वृद्धि एवं पानी की बचत के अलावा खर–पतवार समस्या से पूरी तरह नियंत्रण किया जा सकता है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी में किये गये अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि ड्रिप सिंचाई एवं पलवार के प्रयोग से सतही सिंचाई एवं बिना पलवार की अपेक्षा टमाटर में 89 प्रतिशत, भिण्डी में 65 प्रतिशत तथा मिर्च में 97.5 प्रतिशत कम खर–पतवार उगते हैं।

4. अधिक उर्वरक उपयोग दक्षता

ड्रिप सिंचाई पद्धति में पानी के साथ–साथ धुलनशील उर्वरकों को भी पौधे की जड़–क्षेत्र में सीधे दिया जाता है जिसे फर्टीगेशन कहते हैं। ड्रिप सिंचाई में उर्वरकों की थोड़ी–थोड़ी मात्रा कई बार (8–10 बार) दी जाती है जिससे उर्वरकों की अधिकतम उपयोग दक्षता प्राप्त होती है। जहाँ परम्परागत सिंचाई तकनीक से नत्रजन की 30–50 प्रतिशत, फास्फोरस की 20 प्रतिशत तथा पोटाश की 50 प्रतिशत उपयोग दक्षता होती है वही फर्टीगेशन के माध्यम से नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की उपयोग दक्षता क्रमशः 95 प्रतिशत, 45 प्रतिशत एवं 80 प्रतिशत प्राप्त की जा सकती है। सब्जियों में ड्रिप फर्टीगेशन से लगभग 35 से 40 प्रतिशत उर्वरकों की बचत होती है, जबकि फसल उत्पादकता में 15–35 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है।

5. कीड़े एवं बीमारियों की कम समस्या

मृदा में अधिक नमीं एवं पौधे की आस–पास अधिक आर्द्रता से कीड़े एवं बीमारियों के प्रकोप की सम्भावना बढ़ जाती है। फफूँद एवं जीवाणु जन्य बीमारियाँ जैसे आर्द्र विगलन, जड़ म्लानि, झुलसा आदि का प्रकोप अधिक नमी एवं आर्द्रता की दशा में बढ़ जाता है। चूँकि ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत पानी सीमित मात्रा में केवल जड़–क्षेत्र में दिया जाता है इससे कीड़े एवं बीमारियों के पनपने की सम्भावना कम होती है।

6. अन्तःसस्य क्रियाओं में आसानी

ड्रिप सिंचाई पद्धति में सीमित क्षेत्र में ही पानी देने की वजह से सब्जियों की दो कतारों के बीच का स्थान सदैव सूखा बना रहता है जिससे फसल में अन्तः सस्य क्रियाएं जैसे

दवा का छिड़काव, मेड़ चढ़ाना, पौधों को सहारा देना, फलों की तुड़ाई, इत्यादि किसी भी समय आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। इसके विपरीत परम्परागत सिंचाई पद्धति से सिंचाई के बाद अन्तः सस्य क्रियाओं के लिए पूरे खेत को सूखने का इन्तजार करना पड़ता है।

7. उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार

सब्जियों में एक दिन के लिए भी जलभराव की स्थित में फसल उत्पाद की गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है। चूँकि परम्परागत सिंचाई पद्धति में 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई किया जाता है इसलिए फलों के रंग में गिरावट, फलों का फटना एवं अन्य दैहिकी व्याधियों की सम्भावना बढ़ जाती है, जबकि ड्रिप सिंचाई में मृदा नमी स्तर सदैव प्रक्षेत्र क्षमता पर सुनिश्चित होने के कारण उत्पाद की गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य अच्छा रहता है।

8. खारे जल का उपयोग

फसलों की जड़ों में लवण की मात्रा बढ़ जाने से उनकी वृद्धि एवं उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ड्रिप सिंचाई के तुरंत बाद जड़ों के पास लवणों की सांद्रता कम हो जाती है जो कि पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन के लिए उपयुक्त होता है। सिंचाई के कुछ दिनों बाद जैसे–जैसे मिट्टी सूखती है, पौधों के जड़ों के पास लवणों का स्तर बढ़ता है जो पौधों के लिए हानिकारक होता है। बूँद–बूँद सिंचाई जल्दी–जल्दी किए जाने के कारण पौधों की जड़ों के पास लवणों की सांद्रता का स्तर लगातार कम बना रहता है। इससे फसल की वृद्धि एवं उत्पादन ज्यादा प्रभावित नहीं होती है, इसलिए ड्रिप सिंचाई द्वारा खारे जल का भी उपयोग सम्भव हो पाता है।

चित्र : जड़ क्षेत्र में ड्रिप सिंचन

बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली के अवयव

बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली में दबाव के साथ पाइपों के माध्यम से जल प्रवाहित होता है। जल छनित्र (फिल्टर) से होता हुआ मुख्य पाइप व उप–मुख्य पाइप में जाता है। उप–मुख्य पाइप से जल लेटरल में तथा लेटरल में लगे ड्रिपर से होता हुआ पौधों की जड़ों के पास बूँद–बूँद पहुँचता है। ड्रिप पद्धति की सफलता के लिए आवश्यक है कि उपयुक्त फिल्टर (छन्नक) लगाया जाये। पानी से काई या शैवाल छानने के लिए बालू फिल्टर तथा महीन अशुद्धियों को अलग करने के लिए डिस्क या स्क्रीन फिल्टर लगाने की आवश्यकता होती है। इन छन्नकों को 10–15 दिन में कम से कम एक बार अवश्य साफ कर लें अन्यथा जल के लिए आवश्यक दबाव नहीं प्राप्त किया जा सकता है। पौधों की हर एक या दो पंक्तियों के लिए उप–मुख्य पाइप से एक लेटरल पाइप लिया जाता है। लेटरल के ऊपर एक निश्चित् दूरी पर फसल के अनुसार पौधों के पास ड्रिपर लगे होते हैं। इन ड्रिपर से जल पौधों की जड़ों के पास बूँद–बूँद टपकता है। पौधों से पौधों के बीच की दूरी के अनुसार ड्रिपर से ड्रिपर के बीच की दूरी बराबर रखी जानी चाहिए।

लेटरल को सतह या जमीन के नीचे (10–15 सेमी. गहराई पर) भी रखा जा सकता है। लैटरल अमूमन एल.एल. डी.पी.ई. का बना हुआ, 12 या 16 मिमी. के व्यास का होता है जो कि मुख्य या उप–मुख्य एच.डी.पी.ई. पाइप जो 50–90 मिमी. की होती है, से जुड़ा रहता है। उप–मुख्य पाइप को जमीन में 1.5–2 फीट नीचे दबा दिया जाता है। इससे पाइप सुरक्षित रहती है तथा खेती के कार्य तथा मशीनों के प्रयोग में दिक्कत नहीं होती है। ड्रिपर मुख्यतः दो प्रकार के होते है, पहला आन–लाइन ड्रिपर व दूसरा इन–लाइन ड्रिपर। इन–लाइन ड्रिपर लेटरल लाइन में पाइप के भीतरी सतह से जुड़े होते हैं। इनसे जल रिसाव की संभावना बहुत कम होती है जबकि आन–लाइन ड्रिपर को लेटरल लाइन के ऊपर बटन की तरह लगाते हैं। ऐसे ड्रिपर जिनमें दबाव परिवर्तन के साथ जल के बहाव दर पर प्रभाव नहीं पड़ता या बहुत कम प्रभाव बढ़ता है, उनको प्रेशर कम्पन्सेटिंग ड्रिपर कहते हैं। ऐसे ड्रिपर का मुख्य गुण यह है कि लेटरल लाइन में लगे सभी ड्रिपर से लगभग बराबर मात्रा में जल का बहाव होता है, जबकि नान–प्रेशर कम्पन्सेटिंग ड्रिपरों से बराबर मात्रा में जल प्राप्त नहीं होता, बल्कि जल दबाव के साथ जल बहाव दर में परिवर्तन होता रहता है। ड्रिपर 2, 4, 6, 8 और 10 लीटर प्रति घंटा बहाव दर में उपलब्ध होते हैं। अधिकांश सब्जियों की सिंचाई के लिए 2 लीटर प्रति घंटा बहाव दर वाले ड्रिपर

उपयुक्त होते हैं। लेटरल लाइन पर प्रथम और अंतिम ड्रिपर के मध्य बहाव दर में विभिन्नता 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

ड्रिप सिंचाई के माध्यम से फसलों में घुलनशील उर्वरकों का प्रयोग फर्टिगेशन कहलाता है। फर्टिगेशन द्वारा उर्वरक जल के साथ पौधों की जड़ों को उपलब्ध कराया जाता है, इसलिए फर्टिगेशन उर्वरकों के प्रयोग की सबसे दक्ष विधि मानी जाती है। इस विधि में उर्वरक की अल्प मात्रा कई बार में प्रयोग की जाती है। उचित मात्रा में जल और उर्वरक का प्रयोग होने से फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है। फसलों में फर्टीगेशन वेन्चुरी या उर्वरक पम्प द्वारा पानी के साथ दिया जा सकता है।

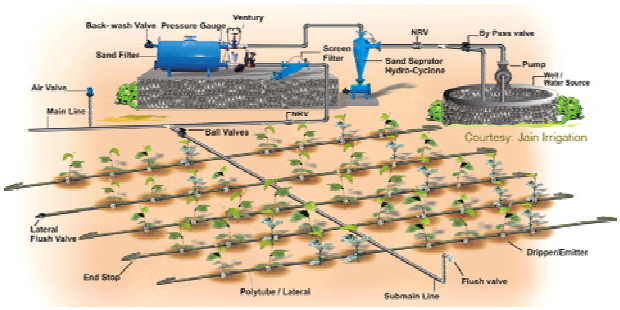

चित्र : ड्रिप सिंचाई के अवयव एवं प्रक्षेत्र में विन्यास प्रदर्शन

ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत पानी की मात्रा का निर्धारण

ड्रिप सिंचाई में पानी की मात्रा का निर्धारण मौसम, फसल एवं फसल की अवस्था पर निर्भर करता है। गर्मियों में जब तापमान अधिक एवं आर्द्रता कम होती हे तो अधिक वाष्पीकरण एवं वाष्पोत्सर्जन के कारण सब्जियों में जल्दी–जल्दी पानी देने की जरूरत पड़ती है। जहाँ दिसम्बर–जनवरी में प्रतिदिन लगभग 2 से 2.5 मिमी. पैन वाष्पीकरण दर्ज किया जाता है, वहीं अप्रैल–मई में प्रतिदिन 9–11 मिमी. जल वाष्पीकरण होता हैं। ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत सामान्यतया जो खुले पैन में जल वाष्पीकरण दर्ज किया जाता है उसका लगभग 70 प्रतिशत भाग ड्रिप द्वारा फसलों को दिया जाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि ड्रिप से 3 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी हो और उन तीन दिनों का कुल पैन वाष्पीकरण 10 मिमी. है, तो ड्रिप के माध्यम से फसलों में 7.0 मिमी. (अर्थात 70 हजार लीटर/हेक्टेयर) पानी देने की जरूरत पड़ेगी। सामान्यतया उत्तर भारत में सर्दियों में सब्जियों को प्रत्येक 3–4 दिन पर, जबकि ग्रीष्मऋतु में प्रत्येक दिन लगभग एक घंटे ड्रिप (जिसकी क्षमता 2 लीटर/घंटा) चलाने की आवश्यकता होती है। जब कभी भी पौधे के जड़–क्षेत्र में नमी का स्तर प्रक्षेत्र क्षमता से 20 प्रतिशत नीचे या 0.4 बार के आस–पास आ जाय तो सिंचाई अवश्य कर दें, जिससे पौधों में जलाक्रांति की स्थित पैदा न हो सके। ड्रिप सिंचाई में परंपरागत सतही सिंचाई के तुलना में ज्यादा बार, परन्तु कम मात्रा में पानी देने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर टमाटर की 155 दिन की फसल में सतही सिंचाई से 8–9 बार जबकि ड्रिप से 40–45 बार सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ती है। सतही सिंचाई में प्रत्येक बार लगभग 2 इंच या 5 लाख लीटर पानी/हेक्टेयर दिया जाता है, जबकि ड्रिप सिंचाई से प्रत्येक बार मात्र 36–38 हजार लीटर/हेक्टेयर पानी देने की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार टमाटर की फसल को पूरे जीवनकाल में लगभग 400–450 मिमी. पानी (40–45 लाख लीटर) सतही सिंचाई से दिया जाता है, जबकि ड्रिप के माध्यम से केवल 200–215 मिमी पानी देकर सतही सिंचाई की अपेक्षा ज्यादा उपज प्राप्त कर सकते हैं।

ड्रिप के साथ उर्वरकों का प्रयोग (फर्टीगेशन)

ड्रिप सिंचाई से सब्जियों में उसी दशा में अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है जब फसल की जरूरत के हिसाब से पानी एवं घुलनशील उर्वरकों का उचित समय पर एवं सही मात्रा में प्रयोग किया जाय (फर्टीगेशन सेड्यूलिंग)। सब्जी उत्पादकों को ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत पानी एवं उर्वरक की वास्तविक मात्रा एवं देने के समय की जानकारी आवश्यक होता है।

ड्रिप फर्टीगेशन के अन्तर्गत उर्वरकों की मात्रा फसल एवं उगाये जाने की दशा पर निर्भर करता है। टमाटर यदि बाहर (खुले) में उगाया जाता है तो नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश क्रमशः 120–150, 80 एवं 80–100 किग्रा./हे. की दर से

सारिणी 2: फर्टीगेशन में प्रयोग होने वाले घुलनशील उर्वरक और उसमें पाये जाने वाले पोषक तत्व (%)

क्र.सं.	उर्वरक	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश	कैल्शियम	मैग्नीशियम
1.	यूरिया	46	–	–	–	–
2.	घुलनशील 19:19:19	19	19	19	–	–
3.	घुलनशील 18:18:18	18	18	18	–	–
4.	यूरिया फास्फेट	17	44	–	–	–
5.	कैल्शियम नाईट्रेट	15.5	–	–	26	–
6.	पोटैशियम नाइट्रेट	13	–	46	–	–
7.	मैग्नीशियम नाइट्रेट	11	–	–	–	16
8.	पोटैशियम क्लोराइड	–	–	60	–	–
9.	मोनो अमोनियम फास्फेट	12	61	–	–	–
10.	फोस्फोरिक अम्ल	–	52	–	–	–
11.	मैग्नीश्यिम सल्फेट	–	–	–	–	15.6
12.	कैल्शियम क्लोराइड	–	–	–	35	–

दिया जाता है, जबकि असीमित बढ़वार वाली पालीहाउस टमाटर के लिए उपरोक्त उर्वरक 200–250, 100–150 एवं 150–200 किग्रा./हे. की दर से दिया जाता है। शिमला मिर्च में उर्वरक की मात्रा और अधिक हो सकती है, जबकि खीरा के लिए उपरोक्त उर्वरकों की लगभग आधी मात्रा की जरूरत पड़ती है। साधारणतया सब्जियों में फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नत्रजन एवं पोटाश की 25 प्रतिशत मात्रा फसल की रोपाई के 4 दिन पूर्व तथा शेष 75 प्रतिशत नत्रजन एवं पोटाश 10–12 दिन के अन्तराल पर 8–10 बार में ड्रिप के माध्यम से दिया जाता है। नत्रजन एवं पोटाश के फर्टीगेशन के लिए क्रमशः यूरिया एवं म्यूरेट आफ पोटाश का प्रयोग किया जा सकता है।

पालीहाउस में टमाटर एवं शिमला मिर्च की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए संस्तुति उर्वरक (100:60:100 किग्रा. नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश/एकड़) का 25 प्रतिशत भाग यानी 20:15:20 किग्रा. एन. पी.के./एकड़ रोपाई से पूर्व मिट्टी में मिला दिया जाता है। रोपाई के 15 दिन पूर्व गोबर या कम्पोस्ट की सड़ी खाद 8 टन/एकड़ तथा नीम की खली 8 कु./एकड़ की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। शेष बचे 75 प्रतिशत उर्वरक के लिए घुलनशील उर्वरक 19:19:19 को 4 किग्रा/एकड़ प्रति फर्टीगेशन की दर से सप्ताह में 2 बार देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पोटैशियम नाइट्रेट तथा कैल्शियम नाइट्रेट (प्रत्येक 1.5 किग्रा./ एकड़/फर्टीगेशन) को सप्ताह में 2 बार फर्टीगेशन करना चाहिए। इन फसलों में मैग्नीशियम की कमीं न होने पाए इसके लिए मैग्नीशियम सल्फेट उर्वरक को 50 किग्रा./एकड़ की दर से रोपाई से पूर्व ही मिट्टी में मिला दिया जाता है। पौधों में सूक्ष्म तत्वों की कमी न होने पाए इसके लिए माइक्रोन्यूट्रियन्ट मिक्चर का छिड़काव 3 सप्ताह के अन्तराल पर 5 ग्रा./लीटर की दर से करना चाहिए।

सब्जियों में फर्टीगेशन से लाभ

1. इसमें पोषक त्तवों की मात्रा एवं सांद्रता को फसल की अवस्था एवं मौसम के हिसाब से समायोजित किया जा सकता है।
2. चूँकि उर्वरक पौधों की जड़ों के पास दिया जाता है इसलिए दिए गये उर्वरक का 80–90 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है, जबकि परंपरागत छिड़काव तकनीक में लगभग 40–50 प्रतिशत उर्वरक पौधों की जड़–क्षेत्र में न होने के कारण व्यर्थ चला जाता है।

3. उर्वरक कम मात्रा में परन्तु जल्दी–जल्दी दिया जाता है जिससे फसलों में तत्वों की कमीं नही होती है और अच्छी उपज तथा गुणवत्ता प्राप्त होती है।

4. उर्वरकों का, विशेषकर अमोनिया उर्वरक का वाष्पशीलता (बोलेटलाइजेशन) द्वारा हानि नही होती है।

ड्रिप सिंचाई व्यवस्था में लागत एवं आय

ड्रिप सिंचाई के बहुत सारे लाभ होने के बावजूद इसका विस्तार अपेक्षित क्षेत्रफल पर नहीं हो सका जिसकी एक मात्र वजह इस व्यवस्था को लगाने में शुरूआती लागत ज्यादा लगती है। जहाँ तक सब्जियों की बात है जो कतार में कम अन्तराल पर लगाई जाती है उसमें फल एवं अन्य वृक्षों की अपेक्षा लागत ज्यादा आती है। उदाहरणस्वरूप टमाटर की फसल जो 75–90 x 50 सेमी. दूरी पर लगाई जाती है उसमें ड्रिप पद्धति लगवाने की आरम्भिक लागत रू. 2.50–2.75 लाख/हे. आती है जिसमें सबसे ज्यादा लागत 12 या 16 मिमी. लैटरल की होती है। इसमें विभिन्न फिल्टर, फर्टीगेशन यूनिट, वाल्ब, मुख्य तथा उप–मुख्य पाइप, टी, एल्बो, ज्वाइन्टर, फ्लश एवं कैप इत्यादि शामिल है। फलों में जो कि दूर–दूर लगाया जाता है उसमें शुरूआती लागत लगभग रू. 1.5–2.0 लाख/हे. पड़ती है।

सब्जियों में ड्रिप पद्धति का सही देखभाल एवं प्रबंध करके रखा जाये तो 8 से 10 वर्ष तक इससे सफलतापूर्वक काम लिया जा सकता है, और ड्रिप की लागत को 2 वर्ष में ही सब्जियाँ उगाकर भरपाई की जा सकती है। ड्रिप लैटरल एवं ड्रिपर की नियमित सफाई एवं फसल समाप्ति होने पर इसके रखने की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करना चाहिए।

जब दूसरे व्यक्ति सोए हों, तो उस समय अध्ययन करें; उस समय कार्य करें जब दूसरे व्यक्ति अपने समय को नष्ट करते हैं; उस समय तैयारी करें जब दूसरे खेल रहे हों और उस समय सपने देखें जब दूसरे केवल कामना ही कर रहे हों।

– वलियम आर्थर वार्ड

उचित खर–पतवार प्रबंधन अपनायें: सब्जी उत्पादन को लाभकारी बनायें

राघवेन्द्र सिंह, शुभदीप रॉय, एस.के. सिंह, नीरज सिंह, अनंत बहादुर एवं जगदीश सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

भारत एक विशाल देश है जहाँ 95 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में लगभग 70 प्रकार की सब्जियों की खेती की जाती है जिसमें लगभग 1628 लाख टन सब्जी का उत्पादन होता है। विश्व के सब्जी उत्पादक देशों में भारत दूसरे स्थान पर है। सब्जियाँ मानव भोजन का एक अति महत्वपूर्ण हिस्सा है, क्योंकि इनसे विटामिन, खनिज लवण एवं अन्य पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। सब्जियों की उत्पादकता अन्य फसलों से अधिक होने के कारण किसानों के लिए सब्जियों की खेती लाभकारी व्यवसाय है। इसे ज्यादा लागत वाला व्यवसाय माना जाता है, क्योंकि इसमें अधिक संसाधनों (पानी, जैविक एवं रसायनिक खाद, कीटनाशी, खर–पतवारनाशी आदि) की आवश्यकता होती है। सब्जियों को अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इसलिए सब्जी उत्पादन में अधिक खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है और अधिकतर सब्जियों की बढ़वार शुरूआती दिनों में काफी कम होती है इसकी वजह से खर–पतवारों का प्रकोप सब्जियों में अधिक होता है और वे सब्जियों की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अगर यह कहा जाये कि सब्जी उत्पादन में खरपतवारों का प्रकोप सबसे बड़ा अवरोध है तो यह अतिश्योक्ति नही होगी।

सब्जी उत्पादन में खर–पतवारों के प्रकोप का स्तर फसल पद्धति, जलवायु, मृदा, सिंचाई प्रबंधन की पद्धति पर निर्भर करता है। इसलिए इन खरपतवारों का समय पर उचित विधि से नियंत्रण करके इनके कुप्रभावों से फसलों को बचाकर उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है।

सब्जियों में पाये जाने वाले प्रमुख खर–पतवार

मौसम के अनुसार निम्नलिखित खर–पतवार प्रमुख रूप से विभिन्न सब्जी फसलों में पाये जाते हैं:

खरीफ मौसम में पाये जाने वाले खर–पतवार

वैज्ञानिक नाम	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	सामान्य नाम
एमेरेन्थस विरडिस	जंगली चौलाई	*डिजिटेरिया* प्रजाति	क्रेब घास
एजेरेटम कोनीज्वायड्स	महकुवा	*डैक्टी लाक्टेनियम एजिप्सियम*	मकरा घास
ब्रेकेरिया इरूसिफार्मिस	सिगनल घास	*डाइजेरा आरवेन्सिस*	लहसुआ
सिटेरिया ग्लूका	बनरा	*इकाइनोक्लोवा कोलोना*	सेवा
सेलोसिया अरजेन्टिया	सफेद मुर्ग	*इल्यूसिन इण्डिका*	कोवो
साइप्रस रोटन्डस	मोथा	*फाइसेलिस मिनिमा*	पचकोटा
साइनोडान डेक्टिलान	दूब	*फाइलैन्थस निरूरी*	हजार दाना
कोमेलिना बेन्गालेन्सिस	कनी, कनकौवा	*ट्राएन्थमा पोरटुलैकेस्ट्रम*	पथरचटा

रबी मौसम में पाये जाने वाले खर–पतवार

वैज्ञानिक नाम	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	सामान्य नाम
ऐस्फोडेलस टून्यूफोलियस	वन प्याजी	*लेथाइरस अफाका*	सेंजी
एनागैलिस आरवेन्सिस	कृष्ण नील	*मेलिलोटस स्पेशीज*	बंदा, बंझा
चिनोपोडियम एल्बम	बथुआ	*रूमेक्स मैरेटिमस*	जंगली पालक
कान्वोल्वुलस आरवेन्सिस	हिरनखुरी	*चिकोरियम इन्टाइबस*	चिकोरी
		विसिया सेटाइवा	अकरी
		ऐवेना लूडोविसियाना	जंगली जई
कोर्नोपस डिडियस	दुद्धी	*कस्कुटा स्पेशीज*	अमरबेल
यूफोर्बिया हिरटा	बनमटरी	*फ्यूमेरिया पर्वीफ्लोरा*	बनसोचा

खर–पतवार प्रबंधन की विधियाँ

हाथ द्वारा निकाई, परंपरापगत खर–पतवार प्रबंधन की विधि है जो कि श्रमिकों की कम उपलब्धता की वजह से अत्यधिक खर्चीली हो गयी है। अतः वर्तमान परिवेश में यह अत्यन्त आवश्यक है कि उचित खर–पतवार नाशियों, यांत्रिक एवं कल्चरल विधि के समन्वय से समन्वित खर–पतवार नियंत्रण पद्धति को अपनाया जाये जिससे खर्च एवं समय दोनों की बचत हो तथा खर–पतवार का नियंत्रण सही समय पर उचित तरीके से हो सके।

(1) सुरक्षात्मक विधि

यह सबसे प्रभावी विधि है। इस पद्धति को अपनाने से फसलों में खरपतवारों का प्रकोप कम होता है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:

(क) खर–पतवार मुक्त शुद्ध एवं प्रमाणित बीज/पौध का प्रयोग,

(ख) पूर्ण रूप से सड़ी गोबर व कम्पोस्ट खाद का ही प्रयोग करना चाहिए। अधपचे या कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग करने से खरपतवारों की समस्या अत्यधिक बढ़ जाती है,

(ग) कृषि यंत्रों की मिट्टी एक खेत से दूसरे खेत में प्रयोग करने से पहले साफ कर लें,

(घ) खर–पतवार ग्रसित क्षेत्र की मृदा दूसरे खेतों में न डालें,

(ड.) नर्सरी के स्थान को खर–पतवार मुक्त रखें,

(च) खेत के आस–पास के मेड़ों, पानी के स्रोतों व नालियों को खर–पतवार मुक्त रखें,

(छ) जानवरों को खर–पतवार प्रभावित क्षेत्र से नियंत्रित क्षेत्र में जाने से रोकें,

(ज) खर–पतवार दिखते ही फूल आने से पहले उसे नष्ट कर दें,

(2) सस्य विधि

(क) स्टेल सीड बेड विधि

इस विधि में सब्जियों के खेत को बुवाई, रोपाई से पूर्व गुड़ाई करके सिंचाई करते हैं जिससे खर–पतवार काफी संख्या में उग आते हैं इसके उपरान्त नान चयनित शाकनाशी जैसे पैराक्वाट या ग्लाइफोसेट का प्रयोग करके उगे हुए खर–पतवारों को नष्ट कर देते हैं। इसके बाद मिट्टी को कम से कम उलट–पुलट करते हुए रोपाई कर देते है। इस विधि का प्रयोग करने से शुरूआती दिनों में खर–पतवारों का मुख्य फसल से संघर्ष कम होता है और जब फसल बड़ी हो जाती है उसकी छाया में उगे खर–पतवार कमजोर हो जाते हैं और मुख्य फसल को कम नुकसान पहुँचा पाते है।

(ख) खेत की तैयारी हेतु उचित विधि अपनाकर

सब्जी उत्पादन हेतु खेत की तैयारी से पूर्व उसमें उगने वाले खरपतवारों का ज्ञान आवश्यक होता है। यदि प्रक्षेत्र में बहुवर्षीय खर–पतवार हों तो ग्रीष्म काल में गहरी जुताई की जाती है जिससे उनकी जड़ें, राइजोम/कंद टूट जायें और उखड़कर मृदा की सतह पर आ जायें और धूप में सूख जाएं। यदि वार्षिक खर–पतवार का प्रकोप हो तो कम गहरी जुताई करते हैं।

(ग) फसल चक्र

उचित फसल चक्र अपनाकर भी खर–पतवारों की समस्या को कम किया जा सकता है। एक जैसी फसल जैसे धान, गेंहूँ लगातार लेने से मुख्य फसल के समान दिखने वाले खर–पतवारों जैसे सवां, गेहूँ का मामा एवं जंगली जई आदि की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। अगर बीच में दलहनी, तिलहनी या अन्य चौड़ी पत्ती वाली फसलें ली जाये तो इन संकरी पत्ते वाले खर–पतवारों को आसानी से पहचानकर उनका निदान किया जा सकता है।

(घ) यांत्रिक विधि

अन्य फसलों की तुलना में सब्जियों में अधिक निकाई की आवश्यकता होती है। हाथ द्वारा निकाई करना काफी कठिन एवं खर्चीला होता है। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए निकाई हेतु औसतन 40–50 मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः सब्जी की फसलों में दो से तीन निकाई की आवश्यकता पड़ती है। जिन सब्जियों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50 सेमी. या उससे अधिक होती है, उनमें हाथ से चलने यंत्र जैसे साइकिल हो, हैण्ड हो, विक एप्लीकेटर आदि का प्रयोग करके खर–पतवार नियंत्रण किया जा सकता है।

(4) सिंचाई पद्धति

सामान्यतः किसान खुली नालियों द्वारा पानी ले जाकर पूरे खेत को पानी से भर देते हैं। इस पद्धति में खर–पतवारों के बीज आसानी से पूरे प्रक्षेत्र में फैल जाते हैं। अतः सिंचाई

के आधुनिक तरीकों जैसे ड्रिप एवं फौव्वारा पद्धति का उपयोग करने से जल का नियंत्रित उपयोग होता है और खर–पतवारों का प्रकोप भी कम होता है।

(5) पलवार (मल्चिंग)

सब्जी के फसलों के पंक्तियों के बीच काफी जगह होती है और खर–पतवारों के बढ़वार के लिए भी अनुकूल वातावरण होता है। अगर किसी भी तरह से जैसे काले रंग की प्लास्टिक अथवा पूर्ववर्त्ती फसलों के अवशेषों से खुली जगह को ढ़क दिया जाये तो खर–पतवारों की जमाव में काफी कमी आती है और सूर्य की रोशनी नही मिलने से वे काफी कमजोर होते हैं और मुख्य फसल को प्रतिस्पर्धा नहीं दे पाते हैं। जिस प्रक्षेत्र में मोथा का प्रकोप अधिक होता है उसमें यह विधि अधिक कारगर नही होती है।

(6) रसायनिक विधि

वर्तमान समय में रसायनिक विधि सबसे सस्ती एवं प्रभावी विधि है। अगर सही समय पर सही विधि द्वारा उचित शाकनाशी का प्रयोग किया जाए तो इस विधि द्वारा प्रभावी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है तथा कम से कम एक या दो हाथ द्वारा निकाई क्रिया को कम किया जा सकता है। अलग–अलग सब्जी की फसलों के हिसाब से खर–पतवार नियंत्रण हेतु शाकनाशियों की संस्तुति की गई है।

बुवाई के 40 दिन पश्चात् लोबिया में खर–पतवार की स्थिति

बुवाई के 40 दिन पश्चात् पूर्व उद्भव खर–पतवारनाशी पेंडीमेथेलिन के प्रयोग का खर–पतवारों पर प्रभाव

(7) एकीकृत खर–पतवार प्रबंधन

खर–पतवार प्रबंधन के विभिन्न अवयवों के सही समय और सही विधि के समन्यव से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, जैसे पूर्व उद्भव शाकनाशी के प्रयोग के उपरान्त 25–30 दिन बाद हाथ से या यांत्रिक निराई करके खर–पतवार प्रबंधन करना प्रभावी और लाभदायक होता है। एकीकृत खर–पतवार प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य खेती को लाभकारी बनाना एवं रसायनों के उपयोग को कम करना है।

क्र.सं.	शाकनाशी रसायनिक नाम	व्यवसायिक नाम	रसायनिक मात्रा (ग्रा./ हे.)	प्रयोग का समय	प्रयोग वाली फसलें	टिप्पणी
1	पेंडीमेथेलिन	स्टाम्प, पेन्डीगोल्ड धानुटाप, स्टाम्प एक्स्ट्रा	750–1000	बुवाई के तुरन्त बाद	प्याज, लहसुन, गोभी कुल, आलू, चुकन्दर, मूली, लोबिया, राजमा, सेम, भिण्डी	सभी वार्षिक घास कुल एवं कुछ चौड़ी पत्ती वाले खर–पतवारों को नियंत्रित करना है।

2	फ्लूक्लोरोलीन	वासालिन	1000–1500	बुवाई/रोपाई के तीन दिन के भीतर	आलू, प्याज, टमाटर, मिर्च, भिण्डी, बैंगन, गाजर, पालक, लोबिया, मूली, धनिया, सौंफ, जीरा, गोभी वर्गीय फसलें आदि	सभी प्रकार के वार्षिक घास कुल एवं कुछ चौड़ी पत्ती वाले खर–पतवार
3	ब्यूटाक्लोर	मैचिटी, धानुक्लोर	750–1000	बुवाई /रोपाई के तीन दिन के भीतर	टमाटर, आलू, गाजर, कद्दू, वर्गीय फसलें	मुख्यतः घास कुल चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल
4	इमेजेथेपायर	परसूट	100	20–25 दिन बाद	लोबिया, फराश बीन, सेम	घास कुल चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल

शाकनाशी रसायनों के उपयोग में सावधानियाँ

शाकनाशी रसायनों के उपयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिए:

1. शाकनाशी रसायनों को संस्तुति मात्रा और समय पर ही प्रयुक्त करना चाहिए अन्यथा मुख्य फसल पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
2. शाकनाशी रसायनों के साथ उपयोग होने वाला पानी साफ होना चाहिए, उसमें मिट्टी के कण नही होने चाहिए।
3. रसायनों का प्रयोग करते समय पूरे शरीर को अच्छी तरह ढका होना चाहिए और आँखों पर चश्मा लगाना चाहिए।
4. विपरीत मौसम जैसे तेज हवा, तेज सूर्य की रोशनी, बारिश आदि में रसायनों का छिड़काव नहीं करना चाहिए।
5. शाकनाशी रसायन खरीदते समय उसका बिल अवश्य लेना चाहिए।
6. प्रयोग के पश्चात् खाली डिब्बों को नष्ट कर देना चाहिए और उनको घरेलू कार्यों में प्रयोग नही करना चाहिए।
7. छिड़काव के उपरान्त हाथ, मुँह और पैर साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।
8. शाकनाशी का छिड़काव करते समय हमेशा फ्लैट फैन या फ्लड जेट नॉजल का ही प्रयोग करना चाहिए।

सब्जी किरण वर्ष–12 (1 एवं 2) जनवरी–दिसम्बर, 2018

तुड़ाई उपरान्त फलों और सब्जियों का कम दबाव (हाइपोबोरीक) पर भंडारणः फसल कार्यिकीय पर प्रभाव

स्वाति शर्मा, सुधीर सिंह एवं जगदीश सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

सापेक्षिक आर्द्रता नियंत्रित संतृप्त वातावरण में एक नियंत्रित तापमान और एक विनियमित कम दबाव पर फल, फूल या सब्जियों को संरक्षित करने की विधि हाइपोबोरीक भंडारण होती है। ऑक्सीजन का विसरण पौधे की कोशिकाओं में वातावरण के दबाव के विपरीत आनुपातिक होता है, अतः बागवानी फसलों को कम दबाव पर भंडारण करने से वह कम ऑक्सीजन दबाव को सहन कर पाते हैं। हाइपोबोरीक भंडारण में बागवानी फसलों की इथिलीन गैस पर अवलंबित या गैर इथिलीन दोनों प्रकार की फसलों में पकने और जल्दी खराब होने तथा कीड़े और रोगों से बचाती है। इससे निकालने के बाद पकने की क्रिया स्वाभाविक रूप से होती है। हाइपोबोरीक भंडारण में गैस का विसरण कोशिकाओं में तेजी से होता है, और कम ऑक्सीजन पर किसी तरह का नुकसान नहीं पाया गया है बल्कि उनकी भंडारण क्षमता बढ़ जाती है। हाइपोबारीक भंडारण में रंध्र छिद्र खुल जाते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड गैस निकल जाती है। इस कम दबाव पर फलों, फूलों और सब्जियों को भंडारित करने की तकनीक के विकास में मुख्यतः वैज्ञानिक स्टैनली पी. बर्ग, अमेरिका का योगदान है। प्रारंभिक समय में हाइपोबोरीक (कम दबाव) भंडारण पर किए गए शोध कार्यों में जिन श्रेणी में दबाव रखे गए थे, उनसे बेहतर परिणाम और भी कम दबाव पर भंडारण से, बाद के शोध कार्यों में पाये गए। सर्वप्रथम कम दबाव पर भंडारण तकनीक के लिए जमा किए गए पेटेंट आवेदन में 100–400 मिमी. पारा पर रखने की विधि बताई गई थी। कुछ समय बाद ही यह पाया गया कि इससे भी कम दबाव पर यानि 10–80 मिमी. पारा पर भंडारण करने से अधिक समय के लिए तुड़ाई उपरान्त बागवानी फसलों को सुरक्षित रखा जा सकता है। हालांकि इस सुधार को दोबारा पेटेंट नहीं किया जा सका क्योंकि यह पहले जमा किए गए पेटेंट से स्पष्ट रूप से पता चलता था कि दबाव कम करने से भंडारण क्षमता और बढ़ने की संभावनाएं हैं क्योंकि ऑक्सीजन गैस के फलों सब्जियों की आंतरिक कोशिकाओं में विसरण का दर वातावरण के दबाव के विपरीत होता है।

ताजे फल–फूल या सब्जियों से जल के नुकसान और आंतरिक कोशिकाओं के ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड, इथिलीन की सांद्रता आदि तुड़ाई उपरान्त भंडारण को प्रभावित करती है। कम दबाव की स्थिति में मास ट्रान्सफर की दर में काफी गिरावट आती है जिसकी वजह से होने वाले लाभ ही मुख्यतः हाइपोबारीक भंडारण को बाकी तकनीकों से भिन्न तरीकों से लाभ पहुंचाते हैं। रंध्र और लेंटीसेल्स, डंठल जोड़ और त्वचीय कोशिकाओं से गैस और जल वाष्प का आवागमन होता है। प्री–शीतकरण करने के बाद बागवानी फसलों को उसी स्थिर तापमान पर रखने के लिए गर्मी की वृद्धि और क्षति बराबर होनी चाहिए। इसी आधार पर तापमान, और दबाव की गणना की जाती है। कम दबाव पर फल–सब्जियों के भंडारण के लिए वातावरण के दबाव और ओस बिन्दु तापमान का उष्ण अंतरण और जल क्षति पर प्रभाव समझना आवश्यक है। कम दबाव में भंडारित फल–सब्जियों से उष्ण अंतरण मुख्यतः वाष्पीकरण शीतलन से होता है। संवहनी शीतलन कम दबाव पर उष्ण अंतरण में ज्यादा असर नहीं करती क्योंकि कम दबाव पर हवा का घनत्व कम हो जाता है। बागवानी फसलों जैसे ताजे फल और सब्जियों की भंडारण क्षमता को बढ़ाने में कम दबाव भंडारण काफी संभावनाएं प्रदान करता है। वैज्ञानिक स्टैनली पी बर्ग ने बागवानी फसलों के भंडारण और ताजे बनाए रखने के लिए कम दबाव में भंडारण के विकास की दिशा में काफी योगदान दिया है।

हाइपोबोरीक भंडारण की एक अनूठी विशेषता है कि यह बागवानी फसलों के केंद्र और सतह के बीच ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड और इथिलीन गैस के प्रवरण को समान कर देती है। कम दबाव भंडारण, न केवल गैस के विसरण दर को बढ़ाता है अपितु लगातार ऑक्सीजन गैस को आंतरिक कोशिकाओं तक पहुंचाता है और कार्बन डाइऑक्साइड, अमोनिया और इथिलीन गैस को निकालता भी जाता है जिससे स्वतः भंडारण अवधि बढ़ जाती है। भंडारण क्षेत्र में कम दबाव के कारण हवा में होने वाले विस्तार से दूषित पदार्थों की सांद्रता 132 गुना कम पाई गई है। कम दबाव के

कारण रंध्र छिद्र भी खुल जाते हैं। इन विशेषताओं की वजह से कम दबाव पर भंडारण करने से संग्रहीत बागवानी फसल के अंदर और आस–पास लगभग इथिलीन, अमोनिया और कार्बन डाइऑक्साइड से मुक्त वातावरण बनता है। ऑक्सीजन के इतनी कम सांद्रता पर कीड़े–मकोड़े मर जाते हैं और सूक्ष्म जीव जैसे बैक्टीरिया और फफूंद के विस्तार को भी रोकते हैं। फलों और सब्जियों को वायुमंडलीय दबाव पर इतने कम ऑक्सीजन स्तर पर भंडारण नही किया जा सकता है क्योंकि उससे नुकसान होगा और वात–निरपेक्षी श्वसन क्रिया भी शुरू होने के संभावनाएं रहती हैं जो अंतः क्षति का कारण बनती हैं। ऑक्सीजन गैस की एक ही सांद्रता पर नियंत्रित वातावरण भंडारण और हाइपोबारीक भंडारण के अलग अलग परिणाम मिलते हैं। कम दबाव पर भंडारण से श्वसन क्रिया की दर में 50 से 60 प्रतिशत तक की कमी नापी गई है। कम दबाव पर ऑक्सीजन गैस का वितरण आंतरिक कोशिकाओं में इतनी तेज़ी से होता है कि अंदर और बाहर लगभग एक ही सांद्रता होती है। असामान्य रूप से कम कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर की वजह से कई प्रभाव जैसे रंध्र छिद्रों का खुलना, वायु–जीवी बैक्टीरिया, और फफूँद की वृद्धि पर रोक, विटामिन सी का क्षति से बचाव और इथिलीन बनाने वाली एन्जाइम की क्रिया की रोक को प्रभावित करते हैं। अगर फसल की सही समय पर तुड़ाई की जाए और तुड़ाई के दौरान क्षति से बचाव किया जाए तो तुड़ाई उपरांत फसल का स्वजीवन बढ़ जाता है। जल की क्षति से तब सबसे पहले फसल की नमी कम होने लगती है जिससे ताजगी कम हो जाती है और गुणवत्ता प्रभावित होने लगती है। सामान्यतः यह पाया गया है कि 3 से 10 प्रतिशत तक भार में कमी से फल–फूल और सब्जियाँ मुरझाने लगती हैं और बागवानी फसलों का जीवन और गुणवत्ता कम हो जाती है। इस कारण फल–फूल या सब्जियाँ सिकुड़ने लगती हैं जिससे उत्पाद की विक्रय प्रभावित होती है। इसके परिणामस्वरूप तनाव से इथिलीन उत्पादन भी बढ़ जाती है जिससे फल मेंम्ब्रेन जल्दी विघटित होने लगती है और भंडारण क्षमता कम हो जाती है।

ताजा बागवानी फसलों की आंतरिक कोशिकाओं में इथिलीन या कार्बन डाइऑक्साइड गैस की सांद्रता और विसरण की गति सीधे वातावरण के दबाव पर निर्भर करती है। इथिलीन की सांद्रता जितनी कम होगी, उतना ही लाभ फलों को ताजा बनाए रखने में मिलेगा। कम दबाव वाले हाइपोबोरीक भंडारण में कीड़े नष्ट हो जाते हैं जबकि बागवानी फसलें सुरक्षित रहती हैं, जिसके फलस्वरूप भंडारण अवधि बढ़ जाती है। हालांकि यह लाभ हमें नियंत्रित या संशोधित वातावरण के भंडारण में नहीं मिलता क्योंकि यहाँ सामान्य दबाव बना रहता है। कम दबाव पर काफी मात्रा में फलों, सब्जियों और फूलों का भंडारण करने से आवागमन के दौरान कीड़ों से मुक्ति मिल सकती है। यह अत्यंत लाभदायक है क्योंकि बिना किसी रसायनिक उपचार, गर्म पानी या वाष्प उपचार के ही हमें वांछित परिणाम मिलता है। भंडारण वातावरण के लिए सर्वश्रेष्ठ कार्बन डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन स्तर का संयोजन फल, सब्जी या फूल के प्रकार के आधार पर व्यापक रूप से भिन्न होता है। इसका कारण है कि हर बागवानी फसल की संरचनात्मक विविधता वायुमंडलीय दबाव पर उसके गैस के आदान–प्रदान की दर को निर्धारित करती है। दबाव को कम करने से कुछ बागवानी फसलों के भंडारण में सुधार होने की संभावना है जहाँ शोध के परिणामस्वरूप दबाव 60–80 मिमी. पारा निर्धारित किया गया है। विभिन्न बागवानी उत्पादों के लिए सबसे आदर्श हाइपोबोरीक स्थिति अभी निर्धारित नहीं हुई है। सर्वश्रेष्ठ हाइपोबोरीक भंडारण कम परिवर्तनशील होनी चाहिए, क्योंकि कम दबाव पर रंध्र छिद्र खुलते हैं और विसरण बढ़ जाता है जिससे प्रत्येक कोशिका में भंडारण वातावरण जैसे संघटक बन जाते हैं। किसी भी तकनीक के अपवाद भी मिलते हैं जिनमें वही सफलता नहीं मिलती जो अन्य बागवानी फसलों में मिलती है। टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा तथा और अन्य सब्जियों के लिए अभी तक सर्वश्रेष्ठ हाइपोबोरीक स्थिति का निर्धारण नहीं किया गया है।

आमतौर पर हाइपोबोरीक दबाव और तापमान को दो भंडारण वर्गों में परिभाषित किया गया हैः समशीतोष्ण बागवानी फसलों के लिए –0 डिग्री सेल्शियस और 10–15 मिमी. पारा दबाव और उष्णकटिबंधीय बागवानी फसलों के लिए 5–16 और 15–30 डिग्री मिमी. पारा दबाव निर्धारित किया गया है। कम दबाव या हाइपोबोरीक भंडारण में अलग–अलग बागवानी फसलों की भंडारण अवधि भिन्न होती है क्योंकि एक ही फसल की भिन्न–भिन्न प्रजाति या अलग जगहों और मौसम में उगाये गए एक ही बागवानी प्रजाति की भी भंडारण क्षमता और गुणवत्ता एक जैसी नहीं होती है। ताजे फल–फूल और सब्जियों की भंडारण अवधि बहुत सारे कारकों पर निर्भर करती है। ये कारक कई प्रकार से फसल की भंडारण अवधि, गुणवत्ता और रोगों को निर्धारित करती है। इनमें कुछ फसल की तुड़ाई के समय परिपक्वता, तुड़ाई के पहले खेत या बाग में वर्षा की मात्रा, ऊष्मा को हटाने के लिए उपयोग की गई प्रणाली, प्रबंधन की विधि, तुड़ाई उपरान्त आवागमन के पूर्व व्यतीत समय, कीड़े और फफूँद नाशी प्रशोधन, स्वच्छता, और

तुड़ाई, प्रबंधन, इत्यादि में की गई सावधानियों का प्रमुख प्रभाव होता है।

हाइपोबोरीक (कम दबाव) भंडारण से कई लाभ मिलते हैं। इनमें प्रमुख हैं–कीड़ों का नाश, फफूँद और बैक्टीरिया की वृद्धि को रोकता है, फलों, सब्जियों और फूलों से पानी की क्षति को सीमित करता है, रंध्र खुले रखता है, और कम ऑक्सीजन की उपस्थिति तथा कार्बन डाइऑक्साइड की अनुपस्थिति में नियंत्रित वातावरण से अधिक भंडारण क्षमता प्रदान करता है। हाइपोबोरीक (कम दबाव) भंडारण में उन उद्यानिकी फसलों का भी संरक्षण किया जा सकता है जो नियंत्रित वातावरण भंडारण से लाभान्वित नहीं होते हैं।

1. दही मथे माखन मिले, केसर संग मिलाय,
होठों पर लेपित करें, रंग गुलाबी आय।

2. बहती यदि जो नाक हो, बहुत बुरा हो हाल,
यूकेलिप्टिस तेल ले, सूंघें डाल रूमाल।

3. अजवाइन को पीसिये, गाढ़ा लेप लगाय,
चर्म रोग सब दूर हो, तन कंचन बन जाय।

4. अजवाइन को पीस लें, नीबू संग मिलाय,
फोड़ा–फुंसी दूर हो, सभी बला टल जाय।

5. अजवाइन–गुड़ खाइए, तभी बने कुछ काम,
पित्त रोग में लाभ हो, पायेंगे आराम।

6. ठण्ड लगे जब आपको, सर्दी से बेहाल,
नींबू मधु के साथ में, अदरक पियें उबाल।

7. अदरक का रस लीजिए, मधु लेवें समभाग,
नियमित सेवन जब करें, सर्दी जाए भाग।

8. रोटी मक्के की भली, खा लें यदि भरपूर,
बेहतर लीवर आपका, टी. बी. भी हो दूर ।

9. गाजर रस संग आँवला, बीस औ चालिस ग्राम,
रक्तचाप हिरदय सही, पायें सब आराम।

10. शहद आंवला जूस हो, मिश्री सब दस ग्राम,
बीस ग्राम घी साथ में, यौवन स्थिर काम।

मूल्य संवर्धन द्वारा हरी मिर्च पाउडर बनाने की विधि

सुधीर सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

हरी मिर्च भोजन बनाने के दौरान प्रत्येक भारतीय के घर में उपयोग होता है। इस प्रकार हरी मिर्च का विशेष महत्व है। जलवायु की विविधता के कारण हमारे पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसका उत्पादन केवल 3–4 महीने तक सीमित रहता है। विश्व भर में हरी मिर्च की 400 से ज्यादा विभिन्न किस्में उपलब्ध हैं। विश्व की सबसे तीखी प्रजाति 'भूत जोलोकिया' पूर्वात्तर राज्यों में उगायी जाती है। हमारे जलवायु की विभिन्नता के कारण हरी मिर्च का उत्पादन हमारे देश के किसी भूभाग पर वर्षभर की जाती है। इस प्रकार बाजार में हरी मिर्च की उपलब्धता पूरे भारत वर्ष में कम एवं अधिक दामों पर बनी रहती है। हरी मिर्च के दाम में उत्पादन के अनुसार भिन्नता पायी जाती है। भौगोलिक विभिन्नता के बावजूद देश के प्रत्येक राज्य में नियमित रूप से उत्पादन होता है। मुख्यतः आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, चेन्नई, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र, हरी मिर्च प्रमुख उत्पादक राज्य है। भारत, चीन, स्पेन, मैक्सिको, पाकिस्तान, मोरक्कों, टर्की प्रमुख हरी मिर्च के निर्यातक देश हैं। भारत वर्ष में हरी मिर्च के उत्पादन का लगभग एक चौथाई भाग निर्यात होता है जिससे अच्छी मात्रा में विदेशी मुद्रा अर्जित होती है। हरी मिर्च की महत्ता उसके तीखापन पर निर्भर करती है। हरी मिर्च में तीखापन कैप्सेसिन्यावड्स नामक तत्व के कारण पायी जाती है। कैप्सेसिन की मात्रा कैप्सेसिन्यावड्स यौगिक में सबसे अधिक पायी जाती है। कैप्सेसिन की लगभग 69 प्रतिशत मात्रा हरी मिर्च के पेरीकार्प (फल भित्ति) एवं प्लेसेन्टा (बीजांडासन) में पायी जाती है। हरी मिर्च पौष्टिक गुणों से भरपूर है। इसमें विटामिन सी की मात्रा 100–115 मिग्रा./100 ग्राम पायी जाती है। इसके अतिरिक्त कैरोटिन, थायमिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन विटामिन की प्रचुर मात्रा उपलब्ध रहती हैं। इसके अतिरिक्त हरी मिर्च में कैल्शियम, मैग्निशियम, फास्फोरस, कॉपर जिंक, क्रोमियम एवं आयरन खनिज लवणों की अधिकता पायी जाती है।

हरी मिर्च के नियमित सेवन से अच्छा स्वास्थ्य बना रहता है। हरी मिर्च के नियमित सेवन से स्वाद के साथ–साथ शरीर को स्वस्थ रखने में भी काफी मददगार सिद्ध होता है। औषधीय गुणों से भरपूर हरी मिर्च के सेवन से शरीर के कई बीमारियों से लडने की अवरोधक क्षमता प्रदान करता है। हरी मिर्च के नियमित सेवन से त्वचा सम्बन्धी रोगों से छुटकारा मिलता है। मिर्च में विटामिन सी के अतिरिक्त कई एंटी आक्सीडेन्ट्स पाये जाते हैं जिसके कारण यह कई रोगों से छुटकारा दिलवाने में मददगार साबित होता है और कैंसर इत्यादि रोगों से लड़ने में सहायता मिलती है। मिर्च में विटामिन सी के साथ विटामिन ए और विटामिन बी की भी प्रचुर मात्रा उपलब्ध रहती है। इसमें पाये जाने वाले रसायन शारीरिक मजबूती प्रदान करते हैं। यह एक आम धारणा है कि हरी मिर्च का नियमित सेवन करने से कमर दर्द एवं जोड़ के दर्द से निदान मिलता है। हरी मिर्च में वसा एवं कार्बोहाइड्रेट्स की कम मात्रा पाये जाने जाने के कारण शरीर के लिये काफी उपयोगी होती है। हरी मिर्च विभिन्न फाइटोकेमिकल्स जैसे बीटा कैरोटीन, ल्यूटीन और जियाजैन्थीन की उपस्थिति के कारण विभिन्न रोगों से लड़ने की अवरोधक क्षमता बढ़ा देती है। बीटा कैरोटिन भी विटामिन ए का एक रूप है जिससे आँख की रोशनी ज्यादा समय तक वृद्धावस्था तक बनी रहती है। हरी मिर्च के खाने से पेट एवं आँत में एन्जाइम के स्राव की गति बढ़ जाती है जिससे भोजन शीघ्र पच जाता है। कैप्सेसिसन त्वचा रोग के निदान में भी विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है। भारतीय रसायन अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद के शोध परिणामों के अनुसार हरी मिर्च में विद्यमान कैप्सेसिन लीवर (कलेजी) के कोशिकाओं को नष्ट होने से बचाता है। इस प्रकार हरी मिर्च के नियमित सेवन से लीवर की कोशिकाओं की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त शरीर की आवश्यकता का विटामिन सी भी प्राप्त होता है। इस प्रकार ताजी हरी मिर्च के बाजार में महँगा होने पर हरी मिर्च पाउडर का नियमित सेवन करने से हमारा स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है।

लाल मिर्च पाउडर को विभिन्न सब्जियों के बनाने, अचार एवं मसाले से बने मिश्रण में अधिकता से उपयोग में लाया जाता है। इसके नियमित सेवन से गैस एवं पेट सम्बन्धी बीमारी बढ़ जाती है। वर्तमान समय में उदर रोग का प्रकोप लाल मिर्च के अधिक सेवन से बढ़ रहा है। इस प्रकार लाल मिर्च पाउडर के स्थान पर हरी मिर्च पाउडर के सेवन से पेट सम्बन्धी बीमारियों से छुटकारा मिल सकता है।

हरी मिर्च पाउडर बनाने की तकनीकी

हरी मिर्च की भण्डारण क्षमता कमरे के तापक्रम पर 2–3 दिनों से अधिक नहीं रहती है। भण्डारण के दौरान हरी मिर्च के तीखापन एवं विटामिन सी की मात्रा में काफी गिरावट पायी जाती है। हरी मिर्च को ज्यादा समय तक संरक्षित करने के लिये परिवर्तित वातावरण में पैकिंग, हरी मिर्च को सुखाकर पाउडर बनाने की विधि एवं हरी मिर्च का अचार बनाकर रखा जाता है। हरी मिर्च को सुखाकर पाउडर बनाने की विधि सबसे सस्ती एवं उपयोगी विधि है। हरी मिर्च के डंठल को निकालने के पश्चात् उसे पानी में अच्छी तरह से धुलते हैं। हरी मिर्च को 2.0–2.5 सेमी. के आकार में काटते हैं। हरी मिर्च के टुकड़ों को 0.5 प्रतिशत मैग्नीशियम कार्बोनेट के उबलते घोल में 5 मिनट तक रखते हैं। इसके पश्चात् 0.75 प्रतिशत पोटैशियम मेटाबाइ सल्फाइट के घोल में 10 मिनट तक ठण्डा करते हैं। उपचारित हरी मिर्च के टुकड़ों 2–3 प्रतिशत नमक के घोल में 60^0 से. के तापक्रम पर 2 घंटे के लिये परासरणात्मक क्रिया कराते हैं। इसके पश्चात् हरी मिर्च को ट्रे ड्रायर में 55–60^0 से. के तापक्रम पर 8–10 घंटे तक सुखाते है। इस प्रकार सुखी हुयी हरी मिर्च में नमी की मात्रा 1 प्रतिशत से कम पायी जाती है। सूखे हुये हरी मिर्च के टुकड़ों को मिक्सी में चलाकर हरी मिर्च का पाउडर प्राप्त करते हैं। हरी मिर्च के चूर्ण को 25–30 मेश आकार की छलनी से छानकर महीन हरी मिर्च का चूर्ण प्राप्त करते हैं।

हरी मिर्च पाउडर की भण्डारण क्षमता एवं गुणवत्ता

हरी मिर्च पाउडर को प्लास्टिक की थैलियों में कमरे के तापक्रम पर 6–7 महीने तक अच्छी अवस्था में भण्डारित कर सकते हैं। हरी मिर्च पाउडर में हरी मिर्च का 90–93 प्रतिशत हरा रंग, 60–65 प्रतिशत विटामिन सी एवं 80–85 प्रतिशत कैप्सेसिन विद्यमान रहता है। हरी मिर्च में भण्डारण के दौरान

तीखापन में कोई कमी नहीं पायी जाती है। हरी मिर्च पाउडर को कमरे के तापक्रम पर 6 महीने से ज्यादा भण्डारण के दौरान हरे रंग में 45–50 प्रतिशत तक कमी पायी गयी। हरी मिर्च के तीखापन में कोई कमी नहीं पायी जाती है।

इस प्रकार ज्यादा मात्रा में उपलब्ध हरी मिर्च को सुखाकर गुणकारी हरी मिर्च पाउडर का बनाया जा सकता है। इस प्रकार कम लागत में बना हुआ हरी मिर्च पाउडर किसान की आमदनी बढ़ा सकता है।

कार्बनिक खाद बनाने की विभिन्न विधियाँ

एस. के. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

आज के परिवेश में मिट्टी की उर्वरता को बनाये रखना एक चुनौती है। फसलों की भरपूर एवं गुणक्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए सामान्यतः फसलों हेतु आवश्यक पोषक तत्वों से युक्त कार्बनिक एवं रसायनिक खाद का उचित मात्रा में प्रयोग किया जाना चाहिए। जैविक खेती में रसायनिक खाद का प्रयोग वर्जित है इसलिए जैविक खेती में कार्बनिक खाद का महत्व बहुत अधिक है। कार्बनिक खाद में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में विद्यमान रहते है साथ ही कार्बनिक खाद के प्रयोग करने से मिट्टी में विभिन्न सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता में वृद्धि देखी गयी जिससे फसलों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि पायी जाती है। कार्बनिक खाद मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार करने के साथ–साथ मिट्टी की जल ग्रहण क्षमता में भी वृद्धि करने में सहायक है। इसके अलावा कार्बनिक खाद के प्रयोग से उत्पादित फसलों की गुणवत्ता तथा खनिज की मात्रा में भी वृद्धि पायी गयी है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं की रसायनिक खेती में कार्बनिक खाद का महत्व नहीं है; बल्कि रसायनिक पद्धति की खेती में भी कार्बनिक खाद का विशेष महत्व है क्योंकि ये रसायनिक खाद की उपलब्धता को वृद्धि करने में सहायक होते हैं। मृदा के उचित देखभाल, पोषक तत्वों के सही प्रबंधन से मिट्टी की भौतिक तथा जैविक दशा में सुधार के साथ फसल के अच्छे उत्पाद प्राप्त किये जा सकते हैं। मृदा के सही देखभाल न होने से कम उत्पाद के साथ–साथ पर्यावरण प्रदूषण में बढ़ोत्तरी होती है। इस लेख में कार्बनिक खाद बनाने की कुछ विधियों का वर्णन दिया गया है जिसे अपनाकर अच्छी गुणवत्ता के कार्बनिक खाद को तैयार किया जा सकता है। उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप उपयुक्त विधि का चुनाव किया जा सकता है।

1. केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट)

केंचुए द्वारा कार्बनिक अपशिष्ट जैसे साग, सब्जी, पत्तियाँ, पौधों के तने इत्यादि जो सड़ने–गलने योग्य हों को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करके जो पदार्थ मल के रूप में उत्सर्जित करते हैं वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद) कहलाता है। इसमें पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व जैसे नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, सूक्ष्म तत्व, वृद्धि नियामक पदार्थ एवं लाभदायक सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। केंचुए से खाद बनाने की कई विधियाँ है जिसमें से किसी भी विधि का चयन कर किसान केंचुए की खाद बना सकते हैं।

(क) केंचुआ खाद बनाने की चक्रीय विधि

इस विधि में जगह की उपलब्धता एवम् घरों से निकलने वाले अपशिष्ट को ध्यान में रखते हुए छोटे–बड़े विभिन्न आकार के चक्रीय टैंक बनाये जा सकते हैं। टैंक के 4 x 4 वर्गमीटर का वर्गाकार तथा लगभग 1 मीटर ऊँचा बनाया जा सकता है जिसकी बाहरी दीवार ईट से चुनाई की गयी हो और इसके बीचों–बीच खड़े और बेड़े (उर्ध्वाधर एवम् क्षैतिज + के आकार का) दो दीवाल इस प्रकार बनाये गये हैं कि वह 4 वर्गाकार भाग में बंट जाय। इस प्रकार प्रत्येक वर्गाकार भाग 2 x 2 वर्गमीटर का बन जाता है। बीचों–बीच थोड़ा सा खाली जगह इसलिए छोड़ दिया जाता है ताकि कार्य करने में सुविधा हो। दीवार बनाते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि एक वर्गाकार टैंक से दूसरे में केंचुओं को जाने के लिए दीवार की तली में पर्याप्त स्थान खुला रहे।

गढ्ढे की भराई

इस विधि से टैंक की भराई के लिए सर्वप्रथम पहले 1 नम्बर वाले वर्गाकार टैंक की भराई का कार्य करते है और जब पहला टैंक भर जाता है तो दूसरे टैंक को भरते हैं। इस प्रकार से धीरे–धीरे व बारी–बारी से तीसरा टैंक और फिर चौथा भरते चले जाते हैं। इस प्रकार चौथे टैंक की भराई का कार्य पूर्ण होते ही पहले टैंक से खाद निकालने योग्य तैयार हो जाती है। एक चक्र पूरा होने में कुल लगभग 3–4 महीने का समय लग जाता है।

यह विधि ज्यादातर घरों में वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त विधि है जिसमें घरों के किचन से प्रति दिन निकलने वाले सब्जियों का छीलन तथा अन्य सड़ने योग्य कार्बनिक पदार्थ केंचुए गड्ढे में डालते जाते हैं और छोटा आकार घरेलू स्तर पर कम्पोस्ट उपयोग के लिए तथा बड़ा खेती के प्रयोग के लिए अच्छा होता है।

(ख) केंचुआ से खाद बनाने की छः कोणीय संरचना

केंचुआ से खाद बनाने की यह संरचना इस बात को ध्यान में रखते हुए बनायी गयी है कि इसमें ट्रैक्टर पर सब्जी अपशिष्ट को (सब्जी अपशिष्ट का आकार दो इंच से बड़ा हो तो) एक किनारे से लायें एवम् गिराकर दूसरी तरफ से बाहर निकल जाय। साथ ही खाद तैयार हो जाने पर एक तरफ ट्रैक्टर ट्राली सहित प्रवेश करें एवम् खाद लादकर दूसरे सिरे से बाहर चले जायें।

(ग) केंचुआ से खाद बनाने की टैक विधि

यह विधि आवश्यकता एवम् उपलब्ध स्थान के अनुसार छोटी–बड़ी आकार की बनाई जा सकती है। सामान्यतौर पर 3–5 मीटर लम्बा, 1.0–1.5 मीटर चौड़ा तथा 0.8 मीटर ऊँचा

ईंट द्वारा चुनाई कर बनाते हुए तली (पेदी को) जमीन की सतह से 6 इंच ऊँचा एक तरफ ढालू बनाते हैं।

(घ) केंचुए की खाद बनाने की सचल टैंक विधि

इस विधि में किसी स्थायी निर्माण की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि प्लास्टिक के वर्मीवेड जो विभिन्न आकार के होते है बाजार से खरीद कर समतल जमीन की सतह पर लकड़ियों, बाँस की खूटियों की सहायता से खड़ाकर देते हैं।

टैंक की भराई

टैंक विधि में भराई करने के लिए सब्जी अपशिष्ट (40 प्रतिशत), कच्चा गोबर (60 प्रतिशत) एक साथ मिलाकर गड्ढे भर देते है और 15 से 20 दिन उपरान्त जब टैंक में भरे अपशिष्ट के सड़ने की प्रक्रिया शुरू हो जाय तथा सब्जी अपशिष्ट से गर्मी निकलना बन्द हो जाय तो केंचुए टैंक में छोड़ दिए जाते है। अपशिष्ट को कुट्टी काटकर छोटे आकार (लगभग 2–3 सेमी.) से डालने पर केंचुओं द्वारा कम समय में

खाद के रुप में परिवर्तित किया जाता है। केंचुओं की संख्या लगभग 350 केचुए प्रति एक घन मीटर की दर से गड्ढे/टैंक के आकार के अनुरूप डाला जाता है। टैंक में नमी की मात्रा बनाये रखने के लिए फौव्वारे की सहायता से पानी की छिड़काव बराबर करते रहते है। ध्यान रहे कि टैंक में हल्की नमी हमेशा बनी रहे लेकिन बहुत गीला भी न रहे। बीच–बीच में सब्जी अपशिष्ट आवश्यकतानुसार मिलाते हुए 20–25 दिनों पर गढ्ढे की पलटाई करते रहते हैं। लगभग 3–4 महीनों में खाद तैयार हो जाती है।

केंचुए की खाद में उपलब्ध पोशक तत्व

इससे नत्रजन, फास्फोरस एवम् पोटाश के अलावा सूक्ष्म पोषक तत्व, विटामिन, एन्जाइम वृद्धि नियामक पदार्थ एवम् लाभदायक बैक्टिरिया, फन्जाई, एक्टिनोमाइसिटिज, प्रोटोजोआ इत्यादि पाये जाते हैं। नत्रजन 0.8–1.5 प्रतिशत, फास्फोरस 0.2–0.3 प्रतिशत, पोटैशियम 0.4–1.0 प्रतिशत तक पाये

जाते है। इसमें जैव कार्बन 16 प्रतिशत होता है। वृद्धि नियामक पदार्थों में इण्डोल एसिटिक एसिड एवम् साइटोकाइनिन पाया जाता है तथा साथ ही लाभदायक सूक्ष्म जीव भी पाये जाते हैं। सूक्ष्म तत्वों में जस्ता 30–40 पी.पी. एम., ताँबा 3–5 पी.पी.एम., लोहा 2000–4000 पी.पी.एम. तथा मैंग्नीज 50–70 पी.पी.एम. पाया जाता है।

2. नाडेप कम्पोस्ट

महाराष्ट्र के गांधीवादी किसान नारायण देवराव पंधारी पाण्डेय द्वारा प्रथम बार इस पद्धति का सृजन किये जाने के उपरान्त देश भर में इस प्रणाली से खाद बनाने की प्रक्रिया चल रही है। टैंक बनाकर फसल अवशेष (अपशिष्ट) डालकर खाद बनाया जा रहा है।

नाडेप कम्पोस्ट का टैंक बनाना

नाडेप टैंक 8 फीट लम्बा 5 फीट चौड़ा तथा 3 फीट ऊँचा होता है इसको बनाने के लिए ईंट, सीमेन्ट, बालू से इस प्रकार बनाया जाता है कि तीसरे, छठी एवम् नवीं लाइन से तीन चार जगह एक–एक ईंट का अन्तराल/छिद्र रहे परन्तु यह ध्यान रहे कि सभी खाली भाग एक सीध में न होकर तीसरे व नवीं लाइन वाला एक सीध में तथा छठी लाइन वाला बीच में हो।

टैंक भराई की विधि

भिण्डी, टमाटर, बैंगन, मिर्च, कद्दू वर्गीय सब्जियाँ, लोबिया, गोभी वर्गीय सब्जियाँ, राजमा, मटर, सेम, पत्ती वाली सब्जियाँ, हरी/सूखी घास–फूस इत्यादि को टैंक भरने में उपयोग किया जाता है। टैंक भरने का कार्य जहाँ तक हो सके एक ही दिन करना चाहिए। अतः एक टैंक की भराई के लिए 1300–1400 कुन्तल सब्जी अपशिष्ट, 100–150 लीटर गोबर गैस स्लरी 1600–1700 किग्रा. स्थानीय मिट्टी एवम् लगभग 1300–1400 लीटर पानी की आवश्यकता होती है।

सर्वप्रथम टैंक की तली में कठोर रेशे वाली सब्जियों के अपशिष्ट जैसे भिण्डी, टमाटर, बैंगन, मिर्च इत्यादि के तने 6–8 इंच ऊँचाई की तह बिछा देते हैं एवम् उसके ऊपर मुलायम शाखाओं एवम् तने वाली सब्जियों के अपशिष्ट जैसे कद्दू वर्गीय सब्जियाँ, लोबिया, राजमा, मटर बचे सूखे तने इत्यादि कुल मिलाकर एक फीट मोटी तह लगा दिया जाता है तथा 15–20 ली. स्लरी को 200–250 लीटर पानी में घोलकर अपशिष्ट की तह को अच्छी प्रकार तर करने के तत्पश्चात् 150–200 किग्रा. दोमट मिट्टी या स्थानीय मिट्टी लेकर उसके ऊपर 2–3 सेमी. मोटी लेप लगाते हैं। इसी प्रकार के 4–5 तह लगाने में गढ्ढा अपने ऊँचाई से एक–डेढ़ फीट ऊपर तक भर जाता है। इसको मिट्टी, गोबर की स्लरी व पानी की सहायता से लेप लगाकर 2–3 सप्ताह के लिए छोड़ देते हैं जिससे गड्ढे में भरा हुआ अपशिष्ट बैठ कर गड्ढे की ऊँचाई से एक से डेढ़ फीट नीचे चला जाता है जिसकी पुनः उसी पद्धति से भराई करके पुनः लेप लगा देते है। इस प्रकार गड्ढे की भराई का कार्य पूर्ण हो जाता है। ध्यान यह रहे कि भरे हुए गड्ढे पर फौव्वारे की सहायता से बराबर पानी छिड़कते रहें। परन्तु पानी का छिड़काव इतना सीमित मात्रा में करें कि बीच–बीच में छोड़े गये स्थान से पानी बाहर न निकलने पाये। इस प्रकार 90–120 दिनों में प्रति गड्ढे 2.5–3.0 टन नाडेप कम्पोस्ट तैयार हो जाता है। इस खाद का प्रयोग खेती में किया जा सकता है।

नाडेप कम्पोस्ट में उपलब्ध पोषक तत्व

नाडेप कम्पोस्ट में नत्रजन 0.5–1.0 प्रतिशत, फास्फोरस 0.3–0.6 प्रतिशत, पोटाश 0.8–1.4 प्रतिशत, जस्ता 100–160 पी.पी.एम, ताँबा 40–60 पी.पी.एम, लोहा 200–250 पी.पी. एम. तथा मैंग्नीज 200–400 पी.पी.एम. तक पाया जाता है।

3. फार्म यार्ड मैन्योर या कम्पोस्ट खाद या गोबर की खाद

फार्म यार्ड मैन्योर या कम्पोस्ट खाद या गोबर की खाद पौधों को पोषक तत्वों को प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह मवेशी के गोबर, मूत्र, मवेशी घर के कूड़े के साथ–साथ मवेशियों द्वारा खाने के बाद बचे हुए चारा सामग्री से बनाया जाता है। एक अच्छी तरह से विघटित खाद में औसतन 0.5 प्रतिशत नत्रजन, 0.2 फास्फोरस और 0.5 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। कम्पोस्ट बनाने के लिए 6.0–7.5 मीटर लम्बा, 1.5–2.0 मीटर चौड़ा और 1.0 मीटर गहरा

गड्ढा खोदा जाता है। सभी उपलब्ध कूड़े जैसे सूखे घास या खरपतवार, पुआल इत्यादि को मिट्टी के साथ मिलाकर मवेशी रखने वाले शेड में फर्श पर फैलाया जाता है ताकि गोबर, मूत्र इत्यादि को अवशोषित कर ले। अगली सुबह गोबर के साथ सभी पदार्थों को उठाकर खोदे गये गड्ढे में डाल दिया जाता है। गड्ढे को एक छोर से दैनिक संग्रह के साथ भरना आरम्भ किया जाना चाहिए। जब गड्ढा जमीन के स्तर से 45–60 सेमी. की ऊँचाई तक भर जाता है तो ढेर के शीर्ष को गोलाकार बनाकर गाय के गोबर तथा मिट्टी से लेप दिया जाता है इस प्रक्रिया को जारी रखने के लिए पहले गड्ढे के पूरी तरह भरने के बाद दूसरा गड्ढा को तैयार किया जाता है। गड्ढे के प्लास्टरिंग के बाद 4–5 महीने में खाद उपयोग के लिए तैयार हो जाता है। खाद की गुणवत्ता को समृद्धि करने के लिए रसायनिक संरक्षकों जैसे – जिप्सम, पाइराइट, सुपर फास्फेट इत्यादि का इस्तेमाल किया जा सकता है। जिप्सम को मवेशी शेड में फर्श पर फैला दिया जाता है जो मवेशी के मूत्र को अवशोषित करता है और मूत्र में मौजूद यूरिया के अस्थिरता द्वारा नुकसान को रोकता है और कैल्शियम तथा सल्फर की मात्रा को भी बढ़ाता है। इसी प्रकार सुपर फास्फेट भी नत्रजन के नुकसान को कम करने का कार्य करता है और फास्फोरस की मात्रा को बढ़ाता है। आंशिक रूप से सड़ी हुई खाद को खेत में बुआई से 3–4 सप्ताह पहले खेत में डाल देना चाहिए जबकि अच्छी तरह सड़ा हुआ खाद बुआई से ठीक पहले भी प्रयोग किया जा सकता है। आमतौर पर 10–20 टन/हेक्टेयर खाद का प्रयोग होता है लेकिन सब्जियों एवं चारा फसलों में 20 टन/हेक्टेयर से अधिक की आवश्यकता होती है। सब्जियों में नाइट्रोजन की इममोबिलाइजेशन से बचने के लिए खेत में खाद को कम से कम पन्द्रह दिन पहले प्रयोग कर देना चाहिए। मौजूदा अभ्यास जिसमे खाद को छोटे–छोटे ढेर के रूप में अधिक दिनों तक खेत में बिखेर कर रखने से पोषक तत्वों की हानि होती है। खेत में खाद को फैलाने के तुरन्त बाद जुताई करके इस नुकसान को कम किया जा सकता है। कम्पोस्ट खाद में मौजूद पोषक तत्वों की पूरी मात्रा तुरन्त उपलब्ध नहीं होती है। नाइट्रोजन का लगभग 30 प्रतिशत, फास्फोरस का 60–70 प्रतिशत और पोटैशियम का 70 प्रतिशत पहली फसल के लिए उपलब्ध होता है। कम्पोस्ट खाद जिसमें खनिज और कार्बनिक नत्रजन मौजूद होते है के उपयोग करने से मिट्टी की उर्वरता और उपज में सुधार देखा गया है। कम्पोस्ट बनाने की कई विधियाँ उपलब्ध है जिन्हे अपनी आवश्यकतानुसार अपनाकर अच्छी गुणवत्ता के कम्पोस्ट खाद बनाया जा सकता है:

1. **बैंगलोर विधि** – इस विधि को सन् 1939 में भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलुरू के एल.एन. आचार्या द्वारा तैयार किया गया था। यह एक एनारोबिक विधि है जहाँ कम्पोस्टिंग को 30 x 6 x 3 फीट अथवा 20 x 6 x 3 फीट के गड्डे में किया जाता है। प्रारम्भ में नगर पालिका के ठोस एवं मोटे अपशिष्ट की एक परत गड्डे के तल पर 15–25 सेन्टी मीटर की ऊँचाई तक रखी जाती है। गड्डे में शहरी अपशिष्ट को 5 सेन्टी मीटर की मोटाई में डाल दी जाती है। फिर ठोस अपशिष्ट की एक परत उसके ऊपर रखी जाती है ताकि मल अपशिष्ट की परत ठोस परत की दो परतों की बीच सैण्डवीच हो जाये। इस प्रकार ठोस अपशिष्ट और मल अपशिष्ट को परतों में रखा जाता है। इन परतों को गड्डे के किनारे से 30 सेन्टी मीटर की ऊँचाई तक भरा जाता है। ठोस अपशिष्ट की अंतिम परत कम से कम 25–30 सेन्टीमीटर मोटी होती है। बारिश के पानी को अन्दर प्रवेश करने से रोकने के लिए जमा सामग्री के शीर्ष को गोलाकार किया जाता है। 4–6 महीने बाद सामग्री का विघटन स्थिर हो जाने के पश्चात् इसे बाहर निकाला जाता है और खाद के रूप में उपयोग किया जाता है।

2. **पाडेगाँव विधिः** गन्ने के अपशिष्ट और कपास के स्टेब्बल जैसे विघटन प्रतिरोधी पदार्थ को कम्पोस्टिंग करने के लिए इस विधि की अनुशंसा की जाती है। इन सामाग्रियों को 30 सेन्टी मीटर आकार के टुकड़ों में काटकर जमीन पर 30 सेन्टी मीटर मोटी एक परत बनाया जाता है। इस परत को लकड़ी की राख, गाय की गोबर और मिट्टी से युक्त एक घोल से अच्छी तरह भिगों दिया जाता है। इस तरह से 4 या 5 ऐसी परतें जोड़कर एक ढ़ेर बनाया जाता है। पूरा ढेर लगभग 1.5 मीटर ऊँचा, 2 मीटर चौड़ा और आवश्यकतानुसार लम्बा बनाया जा सकता है। चूंकि सामग्री विघटन के लिए बहुत प्रतिरोधी होती है इसलिए ढेर को हर महीने पलट दिया जाता है और इसे नम रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी डाला जाता है। सामग्री लगभग 5 महीने में उपयोग के लिए तैयार हो जाता है।

3. **इन्दौर विधि** : यह विधि ए हावर्ड और वाई डी वाड द्वारा सयंत्र उद्योग संस्थान, इन्दौर, भारत में विकसित की गयी थी। यह एक एरोबिक विधि है और परतों में कम्पोस्टिंग के लिए प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम ढेर के आधार में टहनियों और गन्ने के पौधे के अवशेष होते है । क्रमशः कई परतों को एक के ऊपर एक रखकर ढेर

बनाया जाता है। सबसे पहले मुश्किल से विघटित होने वाले कार्बनिक पदार्थ के लगभग 10 सेन्टी मीटर मोटी एक परत होती है। दूसरी परत जल्दी से विघटित होने वाले ताजा जैविक सामग्री की लगभग 10 सेन्टी मीटर मोटी एक परत इसके ऊपर रखा जाता है। उसके ऊपर पशु के गोबर अथवा बायो गैस टैंक के गोबर की एक 2 सेन्टी मीटर मोटी परत बनायी जाती है। आखिर में मिट्टी की एक पतली परत होती है। जमीन के ऊपरी सतह से (शीर्ष 10 सेन्टी मीटर) से साफ तथा नम मिट्टी किसी पेड़ के नीचे से एकत्र किया जाना चाहिए। इसका उद्देश्य सही सूक्ष्म जीव को ढेर में लाना है।

अपघटन के दौरान ढेर को नियमित रूप से पलटना चाहिए ताकि कचरे में अच्छी तरह से वायु संचरण हो और सभी सामग्री को खाद में परिवर्तित कर दिया जाये। ढेर को पहली बार 2–3 सप्ताह बाद पलटना चाहिए। अनुकूल परिस्थितियों में इन्दौर विधि में अपघटन प्रक्रिया में लगभग 3 महीने लगते हैं लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों में इसे छः महीने से अधिक समय लग सकता है।

तरल जैविक खाद

विभिन्न प्रकार के ठोस जैविक खाद के आलावा कुछ तरल कार्बनिक फॉर्मूलेशन भी विकसित किये गये और जैविक खेती में इसका प्रयोग किया जा रहा है। आमतौर पर इस्तेमाल किये जाने वाले कुछ तरल जैविक खाद निम्न प्रकार के हैः

1. वर्मीवाश बनाना

वर्मीवाश जैसा शब्द से ही स्पष्ट है वर्म्स (केचुएँ) के शरीर का धुला हुआ पदार्थ होता है जिनमें विभिन्न प्रकार के तत्व पाये जाते हैं। वर्मीवाश का पर्णीय छिड़काव पौधों व साग सब्जियों पर करने पर उनका विकास तथा फलों की

गुणवत्ता अच्छी होती है। संस्थान में इसको बनाने की मुख्य रूप से दो विधियाँ अपनायी जा रही हैं, जो निम्न हैः

(क) मटका विधि

इस विधि में एक स्टैण्ड के ऊपर तीन छोटे–बड़े मटके (घड़े) इस प्रकार रखते हैं कि,

ऊपर वाला मटका

ऊपर वाला मटका आकार में मध्य वाले मटके से थोड़ा छोटा रहता है और इसकी पेंदी में छिद्र होता है। इस मटके में केवल पानी भरा जाता है ताकि पानी टपक कर बीच वाले मटके में गिरे।

बीच वाला मटका

बीच वाला मटका आकार में अपेक्षाकृत थोड़ा बड़ा होता है और इस मटके की भी पेंदी में छेद होता है। इसमें ठण्डा कच्चा गोबर एवम् केचुए (वर्म्स) रखे जाते है।

नीचे वाला मटका

यह ऊपर वाले दोनों मटकों से आकार में छोटा होता है परन्तु इसकी पेंदी में छेद नहीं होता और इसी में वर्मीवाश एकत्रित किया जाता हैं।

तीनों को एक स्टैण्ड पर लगा देने के बाद ऊपरी मटके में पानी भर देते हैं जो पेंदी में छेद होने के कारण बूँद–बूँद करके बीच वाले मटके में गिरता है और बीच वाले मटके में गोबर व केचुआ होता है जिन पर पानी की बूदें गिरने पर केचुए के शरीर व गोबर का रस धीरे–धीरे नीचे वाले तीसरे मटके में गिरता है जिसे इकट्ठा करके पौधों पर छिड़काव के लिए रख लिया जाता है।

(ख) वर्मीवाश बनाने का टैंक विधि

इस विधि में केचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट) बनाने के लिए जो 3–5 x 1.5 x 0.6 मीटर आकार का पक्का टैंक बनाते है इसकी तली को जमीन की सतह से 6 इंच ऊँचा एवम् एक तरफ ढालू रखते और टैंक में पानी निकलने के लिए टोटी (नल) लगा देते हैं। पानी का जो छिड़काव टैंक में किया जाता है उसी में केचुए के शरीर का धुलन एवम् गोबर का अर्क नल द्वारा (टोटी) बूंद–बूंद टैंक से बाहर गिरता है जिसको मटके या प्लास्टिक बाल्टी में एकत्रित कर लिया जाता है। यही वर्मीवाश कहलाता है इसका छिड़काव साग–सब्जियों एवम् पौधों पर किया जाता है।

वर्मीवाश में उपलब्ध पोषक तत्व

वर्मीवाश में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, एवम् सूक्ष्म तत्वों के साथ–साथ वृद्वि नियामक पदार्थ जैसे आक्जीन, साइटोकाइनिन तथा जैव उर्वरक एजोटोवैक्टर, राइजोबियम, फास्फोरस घुलनशील बैक्टीरिया इत्यादि पाये जाते हैं जो पौधों को टानिक एवम् कई व्याधियों से रक्षा करते हैं। साथ ही प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को बढ़ाने तथा मृदा में सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ाने में मदद करते हैं। इसका पी. एच. मान 7.48, जैव कार्बन 0.008 प्रतिशत, नजत्रन 0.01–0.015 प्रतिशत उपलब्ध फास्फोरस 1.69–1.75 प्रतिशत एवम् पोटैशियम 25–27 पी.पी.एम. पाया जाता है। सूक्ष्म तत्वों में सोडियम 8 पी.पी.एम. कैल्शियम 3 ± 1 पी.पी.एम., कॉपर 0.01 ± 0.001 पी.पी.एम., लौह तत्व 0.06 0.001 पी.पी.एम., मैग्निशियम 158.44 23.42 पी.पी.एम., मैगनीज 0.58 0.040 पी.पी.एम., जिंक 0.02 0.001 पी.पी.एम. पाया जाता है। इसके अलावा पौधों के लिए लाभप्रद सूक्ष्म जीव नाइट्रोमोनास 1.01 x 10 नाइट्रोबैक्टर 1.72 x 10 व कुल फंजाई 1.46 x 10 सी.एफ. यू./मिली. पाया जाता है। वर्मीवाश प्रयोग से पूर्व इसे 5 से 10 गुना तक पानी मिलाकर (1 ली. वर्मीवाश/5–10 लीटर पानी) प्रयोग किया जा सकता है।

2. पंचगव्य

पंचगव्य गाय से प्राप्त पाँच उत्पादों से बनता है। इसके लिए गाय का गोबर (पाँच किलो), गोमूत्र (पाँच लीटर), दूध (3 लीटर), दही (3 लीटर) और घी (1 किलो) इन उत्पादों को गन्ना के रस तथा नारियल के पानी और पके केले के साथ उपयुक्त रूप से मिश्रित किया जाता है और 15 दिनों तक इसको इनक्यूबेट किया जाता है। इस घोल को उचित किण्वन के लिए रोजाना सुबह एवं शाम को एक लकड़ी के सहारे अच्छी तरह मिलाया जाता है। मिश्रण को छानने (फिल्टर) के उपरान्त 1:10 अनुपात में पानी के साथ मिलाकर फसल पर छिड़काव किया जाता है।

3. अमृत पानी

अमृत पानी के लिए 20 किलो गाय का गोबर, 500 ग्राम शहद, 250 ग्राम घी मिलाकर तैयार की जाती है। सभी अवयव मिश्रित होते हैं और रातभर रखने के पश्चात् इसका उपयोग बीज को उपचारित करने तथा पौधों पर छिड़कने के लिए किया जाता है।

4. **जीवामृत** : जीवामृत बनाने के लिए निम्न पदार्थों की आवश्यकता होती है।

- देशी गाय का गोबर–10 किग्रा.
- गोमूत्र– 10 लीटर
- गुड़– 2 किग्रा.
- बेसन– किग्रा.
- पानी–200 लीटर

एक 200 लीटर के ड्रम में उपरोक्त सभी सामग्रियों का अच्छा तरल मिश्रण बना ले। फिर उसमें किसी पेड के नीचे से लगभग 2 किलो ग्राम मिट्टी मिला ले। एक ढक्कन से इसे ढ़क दें। इस ड्रम को किसी छायादार जगह पर रखें। सुबह और शाम दो बार एक बाँस की छड़ी से मिश्रण को मिलाये। जीवामृत 48–72 घंटे (2–3 दिन) के बाद उपयोग करने के लिए तैयार हो जाता है। अच्छे परिणाम के लिए जितना सम्भव हो ताजा जीवामृत का प्रयोग करना चाहिए।

फूल गोभी का बीज उत्पादन

बी.के. सिंह, सौरभ सिंह एवं पी.एम. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

फूल गोभी (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* वार. *वोट्राइटिस*) सरसों कुल के अन्तर्गत आती है। इसकी उत्पत्ति साइप्रस तथा भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में हुआ है। गोभी वर्गीय सब्जियों (कोल क्राप) में फूल गोभी का महत्वपूर्ण स्थान है तद्पोरान्त पत्ता गोभी (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* वार. *कैपिटाटा*), ब्रोकली (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* वार. *इटैलिका*), गांठ गोभी (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* वार. *गोंगिलोड्स*), ब्रुसेल्स स्प्राउट (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* वार. *जिमीफेरा*) एवं केल (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* वार. *एसीफाला*) का स्थान है। इसे दुनिया के सभी महाद्वीपों में उगाया जाता है जिनमें एशिया तथा यूरोप का अग्रणी स्थान है और इसे उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड में भी उगाया जाता हैं। भारत दुनिया में फूल गोभी का सबसे बड़ा उत्पादक है और अन्य प्रमुख उत्पादक देश चीन, फ्रांस, इटली, यू.एस.ए., स्पेन, पोलैण्ड, जर्मनी और पाकिस्तान है।

किस्में

फूल गोभी की किस्मों को उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों के जलवायु तथा परिपक्वता के लिए तापमान की आवश्यकता के अनुसार वर्गीकृत किया गया है (सारिणी–1)।

वसंतीकरण एवम् पुष्प संरचना

- पिछेती (समूह–4) में पुष्पन के लिए वसंतीकरण की आवश्यकता होती है जो भारत की पहाड़ी क्षेत्रों कुल्लू, कश्मीर, नीलगिरि एवम् कालिम्पोंग घाटी में बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त है।
- भारतीय उष्णकटिबंधीय फूल गोभी (परिपक्वता समूह 1, 2 एवं 3) की किस्मों को वसंतीकरण की आवश्यकता नही होती है। भारत के उत्तरी एवं पूर्वी मैदानी भागों में इनका बीज उत्पादन किया जा सकता है।

सारिणी 1: परिपक्वता तापमान के आधार पर भारत में फूल गोभी का वर्गीकरण

परिपक्वता समूह	परिपक्वता का समय		तापमान (डिग्री से.)	किस्में
I अ (अगेती)	सितम्बर	क्वारी	20–27	पंजाब क्वारी, अर्ली क्वारी, पूसा अर्ली सिन्थेटिक, पूसा कार्तिक संकर, पूसा मेघना, काशी क्वारी
I ब (अगेती)	अक्टूबर	कतिकी	20–25	पूसा दीपाली, पूसा केतकी, पंत शुभ्रा, पंत गोभी–3, वी. आर.सी.एफ.–86
II (मध्य)	नवम्बर	अगहनी	16–20	इम्प्रूव्ड जापानी, पंत गोभी–2, पंत गोभी–4, पूसा हाइब्रिड–2, पूसा हाइब्रिड–3, पूसा शरद, पंजाब जायण्ट–26, पूसा अगहनी, काशी अगहनी, काशी गोभी–25, वी.आर.सी.एफ.–102
III (मध्य–देर)	दिसम्बर	पूसी	12–16	पूसा सिन्थेटिक, पूसा शुभ्रा, पूसा हिमज्योति, पंजाब जायण्ट–35, हिसार–1, डी.–96, वी.आर.सी.एफ.–22, वी. आर.सी.एफ.–202
IV (पछेती)	जनवरी	माघी	10–16	पी.एस.बी.के.टी–1, पी.एस.बी.–1, पी.एस.बी.–2, दानिया, ऊटी–1, काला पत्ता, पूसा पौसजा, पूसा सुक्ती

- फूल गोभी का फूल 'गूदेदार अग्रस्थ विभज्योतक ऊत्तकों' से बना होता है।
- फूल गोभी का पुष्पक्रम कोरिम्बोज होता है जो बौना और अधिक छत्तरीनुमा होता है तथा अन्य गोभियों में जहाँ से शाखा शुरू होती है उस बिन्दु के ऊपर मुख्य तना अनुपस्थित होता है।
- फूल द्विलिंगी/उभयलिंगी एवं पूर्ण होते हैं।
- बाह्य दल चार एवं स्वतंत्र होते हैं।
- दलपुंज चमकीला, पीला, पंखुडी चार, एक दूसरे के विपरीत जुड़े होते है जिसे क्रास–आकार दलपुंज कहते हैं।
- पुष्प केसर छः, टेट्राडाइनेमस (दो छोटी और चार बड़ी) होती है।
- अण्डप दो, फल शुद्ध जो एक झूठी झिल्ली के एक बेहतर अण्डाशय और पैरिटल स्तंभीय, बीजांड न्यास के साथ दो पंक्तियाँ बनाते हैं।
- फल सिलीकुआ विशेष प्रकार के बाइकारपेलरी फली होती है जो कि चमकदार, 3–4 मिमी. चौड़ा और कभी–कभी 10 सेन्टी मीटर लम्बा, बीज के दो पत्तियों के साथ साथ झिल्ली/पट के साथ लगे होते हैं।
- एक सिलिकुआ में सामान्यतः 10–20 बीज बनते हैं। बीज छोटे, गोल, चिकने, गहरे भूरे रंग के नान–इण्डोस्पर्मिक भ्रूण, घुमावदार बीजपत्र तथा एक ग्राम भार में लगभग 250 बीज होते हैं।

प्रजनन

उष्णकटिबन्धीय या भारतीय फूल गोभी एकवर्षीय प्रवृत्ति की होती है जो भारत के मैदानी भागों में अपना फूल एवम् बीज विकसित करती हैं। अच्छे गुणवत्ता वाले बीज पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार जहाँ तापमान कुछ अवधि के लिए 1–2 डिग्री सेल्शियस तक गिर जाता है में उत्पादित किया जाता है।

- फूल गोभी के सबसे अगेती समूह (क्वारी समूह) के बीज को पूर्वी भारत के मैदानी क्षेत्रों एवं कम शीत वाली स्थिति में भी बनाया जा सकता है।
- शीतोष्ण–कटिबंधीय या स्नोबाल प्रकार (समूह 4) की किस्में भारत में द्विवार्षिक फसल की तरह व्यवहार करती हैं जिसके दैहिक विकास के बाद बीज के डंठल के उत्पाद के लिए पूर्ण वनस्पतिक विकास के बाद वसंतीकरण हेतु 4–8 डिग्री सेल्शियस औसत तापमान की 6–8 सप्ताह तक की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के फूल गोभी का बीज हिमाचल प्रदेश और कश्मीर की ऊँची पहाड़ियों में उत्पादित किया जाता हैं।
- तेजी से बढ़ते पंखुड़ियों के दबाव से कली खुलती है। यह प्रक्रिया दोपहर में शुरू होता है और आमतौर पर फूल अगली सुबह के दौरान पूरी तरह से विस्तारित हो जाते हैं लेकिन पराग–कोष कुछ घण्टे बाद फूटता है। फूल प्रकृति से प्रोटोगाइनस होते हैं अर्थात् वर्तिकाग्र की ग्राह्यता परागकण से 2–3 दिन पहले ही हो जाता है।
- स्व–अनिषेच्यता प्रणाली जो प्रकृति में स्पोरोफिटिक है जो प्रभावशाली प्रभाव के साथ बहुआयामी एकल जीन द्वारा नियंत्रित होता है जिसकी सघनता प्रभेद में एस–एलील की उपस्थिति पर निर्भर करती है। गर्मी सहिष्णु उष्णकटिबंधीय फूलगोभी में स्व–अनिषेच्यता का उच्च स्तर होता है। यूरोपीय या स्नोबाल गोभी मूल रूप से स्व–निषेच्य होती है।
- फूल गोभी में पर–परागण आमतौर पर मधुमक्खी द्वारा होता है लेकिन बम्बल मक्खी द्वारा भी पर–परागण करा सकते हैं। मधुमक्खियाँ एवं अन्य परागकर्ता कीट फूलों में नेक्टर की उपस्थिति के कारण परागण की क्रिया करती हैं।
- किस्मों की शुद्धता को बनाये रखने के लिए प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए लगभग 1000 मीटर की पृथक्करण दूरी रखना अनिवार्य है।
- गोभी में कोशिकाद्रव्यी नर बन्ध्यता मूली के ओगुरा नर बंध्यता से स्थानांतरित किया गया है जो संकर किस्मों के विकास के लिए उपयुक्त है।
- फूल गोभी में संकर किस्में मुख्य रूप से जापान, कोरिया, ताइवान, अमेरिका, भारत एवम् अन्य देशों में स्व–अनिषेच्यता और कोशिकाद्रव्यी नर बन्ध्यता प्रणाली का उपयोग कर विकसित किया गया है।
- सामान्य मौसम में फूलों का खिलना सुबह 7 बजे से शुरू होकर दोपहर 3 बजे तक जारी रहता है।
- वर्तिकाग्र फूल निकलने से कम से कम दो दिन पहले ग्राह्यशील हो जाता है हांलाकि वर्तिकाग्र की अधिकतम ग्राह्यत्ता फूल निकलने तक होता है और यह क्रिया अगले एक दिन तक जारी रहती है। जबकि परागकोष में फूल खिलने के बाद फूटाव शुरू होता है तदोपरान्त् परागकण सक्रिय होते हैं।

जलवायु एवम् भूमि

पहाड़ी क्षेत्रों में, उन क्षेत्र का चयन करें जिन पर उसी तरह की फसल या अन्य कोई गोभी वर्गीय फसल विगत दो वर्षों में नहीं उगाया गया हो और कोई भी संक्रमण या बीज से पैदा होने वाली बीमारी अधिकतम स्वीकार्य स्तर से ऊपर न पाया गया है। इसके अलावा चयनित क्षेत्र की मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ के साथ गहरी एवम् उपजाऊ होनी चाहिए। फूल गोभी की बीज उत्पादन के लिए ठण्डा एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। यह अत्यधिक उच्च या निम्न तापमान और तेज हवाओं के लिए कम सहनशील है। फूल बनने के बाद अधिक बारिश और हिमपात फूल के सड़ने का कारण बनता है। बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का चयन करना चाहिए। बीज उत्पादन के लिए औसत तापमान 18–22 डिग्री सेल्शियस अनुकूल होता है। बीज का उत्पादन ऐसे स्थान पर करते हैं जहाँ सर्दी में कुछ अवधि के लिए तापमान 1–2 डिग्री सेल्शियस तक पहुँच जाता है। उपजाऊ भूमि जिसमें प्रचुर मात्रा में कार्बनिक पदार्थ रेतीली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी अच्छी मानी जाती है तथा मृदा का पी. एच. मान 6–7 हो। अम्लीय मिट्टी में बोरान और मालीब्डेनम की उपलब्धता कम हो जाती है।

मृदा की 4–5 जुताई करके मिट्टी को अच्छी तरह से तैयार किया जाना चाहिए। सभी खर–पतवार एवं अवशेष को खेत से निकाल देना चाहिए। जमीन की तैयारी के दौरान अच्छी प्रकार से सडी हुई जैविक या गोबर की खाद 35 टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से मिट्टी में मिलाना चाहिए।

पौधशाला प्रबंधन

पौध तैयार करने के लिए 3 मीटर लम्बी, 1 मीटर चौड़ी व 15–20 सेमी. ऊपर उठी हुई क्यारियाँ तैयार करें तथा अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद 3–4 किग्रा. पर वर्ग मीटर की दर से मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिलायें। आर्द्र–गलन रोग की रोकथाम के लिए क्यारियों को फर्मल्डीहाइड 4 प्रतिशत या कैप्टान 2–3 ग्राम/लीटर की दर से घोलकर क्यारी में मिलाऐं तथा प्लास्टिक शीट से क्यारी को ढक दें। अगेती और मध्य अगेती पकने वाले समूह की किस्मों के 500–600 ग्राम बीज और मध्य पिछेती और पिछेती वाले समूह के किस्मों का 300–400 ग्राम बीज/हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। एक ग्राम में साधारणतया 200–250 बीज होते हैं। बीज को थीरम या कैप्टान से 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। बुआई के बाद क्यारी को भूसे तथा लम्बे सूखे घास से बीज के अंकुरण तक ढ़के रहते हैं और आवश्यकतानुसार हजारे से पानी देते रहते हैं।

रोपण का समय

पिछेती किस्म के फूल गोभी द्विवर्षीय व्यवहार करते हैं और फूल डंठल के उत्पादन के लिए वसंतीकरण की आवश्यकता होती है इसलिए बीज उत्पादन भारत की ऊँची पहाड़ी क्षेत्र तक ही सीमित है। हिमाचल प्रदेश और कश्मीर के पहाड़ियों में 15 दिसम्बर तक अधिकतम पत्तों की वृद्धि हो तथा जब तापमान कम हो जाए और पौधे प्रायः निष्क्रिय हो जाये तब फूल गोभी की रोपड़ का समय होता है। फसल का बुआई का समय इष्टतम अगस्त का अन्तिम सप्ताह होता है पौध का रोपण सितम्बर के अन्त तक कर देना चाहिए। ठंड की अवधि के बाद फरवरी से मार्च के दौरान तापमान 16–21 डिग्री सेल्शियस पर फूल का बनना अनुकूल होता है जो कि मार्च के पहले पखवाड़े में पूरा कर लिया गया हो। अगेती, मध्य और मध्य–देर मौसम की किस्में एक वर्षीय प्रकृति के होती हैं; मैदानी भागों में फूल गोभी की बुआई समयानुसार करने चाहिए। फूल गोभी का फूल दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में तैयार हो जाती है जब तापमान गिरने लगता है। बीज डंठल दिसम्बर–जनवरी के प्रथम सप्ताह में शुरू हो जाता है।

पौधशाला में पौध 25–30 दिन में रोपण के लिए तैयार हो जाता है। पौधशाला को सिंचाई करते रहना चाहिए जिससे पौधे को निकालने में आसानी रहे। जहाँ तक हो सके रोपण शाम के समय करें और जब ठंड पड़ने लगे तो रोपण दिन में भी कर सकते हैं। लगभग 35–37 हजार पौध एक हेक्टेयर भूमि के लिए आवश्यक होते है। रोपण के तुरन्त बाद पौध की सिंचाई करें। अगेती एवं मध्य अगेती किस्मों के लिए केवल मेड़ों पर ही रोपाई करें। पौध अच्छी तरह से स्थापित करने के लिए यूरिया को 50 ग्राम/10 लीटर पानी के घोल में छिड़काव करें। अगेती और मध्य अगेती किस्मों के पौधों की वृद्धि के लिए कतार से कतार 55–60 सेमी. तथा पौधे से पौधे 40–45 सेमी. की दूरी पर करते हैं। परन्तु मध्य–पिछेती और पिछेती किस्मों में कतार 60–70 सेमी. तथा पौध से पौध की दूरी 45–60 सेमी. रखते हैं।

पृथक्करण दूरी

फूल गोभी पर–परागित सब्जी फसल है अतः किस्मों की शुद्धता एवम् उसमें एकरूपता बनाएं रखने के लिए उचित पृथक्करण दूरी को अपनाना अति आवश्यक है। आधारीय बीज के उत्पादन के लिए 1600 मीटर और प्रमाणित बीज के लिए 1000 मीटर दूरी निर्धारित की गयी है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

फूल गोभी की अधिक उपज एवं अच्छी फूल गुणवत्ता के लिए प्रचुर मात्रा में पोषण की आवश्यकता होती है। एक हेक्टेयर के लिए 150 किग्रा नाइट्रोजन, 80 किग्रा. फास्फोरस और 80 किग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई या रोपण से पूर्व खेत में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए तथा शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा को खड़ी फसल में 35–40 दिन बाद टाप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए। एक प्रयोग में यह पाया गया है कि 160 किग्रा. नाइट्रोजन, 120 किग्रा. फास्फोरस तथा 100 किग्रा. पोटाश से अधिक संख्या में सिलिकुआ प्रति पौधा (520.4), बीज उपज प्रति पौधा (26.88 ग्राम) और बीज उपज 8.40 कु./हेक्टेयर दर्ज किया गया है। अधिक बीज उपज और भूरापन विकृति को रोकने के लिए 0.3 प्रतिशत बोरान घोल का 20, 35 और 50 दिन रोपाई के बाद पर्णीय छिड़काव लाभकारी होता है। अधिक अम्लीय मृदा में मालीब्डेट की कमी होती है। सोडियम मालीब्डेट/1.0–1.5 किग्रा./हे. या 0.1 प्रतिशत अमोनियम मालीब्डेट का पर्णीय छिड़काव 15, 30 और 45 दिन रोपण के बाद करें।

सिंचाई

फूल गोभी उथली जड़वाली होती है तथा इसे पर्याप्त मात्रा में नमी की आवश्यकता पड़ती है। अगेती और मध्य अगेती फसल वर्षा न होने पर सिंचाई करते हैं। साधारणतः ठण्डे मौसम में 10–12 दिन के अन्तराल पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

अंतः–क्रियाएं और खर–पतवार नियंत्रण

खर–पतवार से फूल एवं बीज उपज में 35–70 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी। रोपण के चार सप्ताह बाद खर–पतवार की निकाई–गुड़ाई से रोकथाम हो जाती है। रोपाई से पहले बेसालिन (एलोक्लोर) 2.25 लीटर/हेक्टेयर या पेण्डीमेथीलीन 1 लीटर/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। धान के पुआल की 10 सेमी. मोटी परत से क्यारी को ढकने से लाभप्रद होता है जिससे की पौध की वृद्धि अच्छी होती है तथा खर–पतवार की वृद्धि रूक जाती हैं। रोपण के 7–8 सप्ताह बाद जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा देना चाहिए तथा साथ में नाइट्रोजन उर्वरक को खड़ी फसल के रूप में दें।

स्कूपिंग

फूल के मध्य भाग में स्कूपिंग विशेषतः पिछेती किस्मों की फूल में फूल डंठल के प्रारम्भिक उद्भव में मदद करता है। अगेती एवं मध्य मौसम की किस्मों में स्कूपिंग की आवश्यकता नही होती है जो उथली एवं हल्के फूल उत्पादन करती हैं। स्कूपिंग से सिलिकुआ की संख्या/फूल डंठल, बीज की संख्या/सिलिकुआ, बीज भार और बीज उपज अधिक होती है।

परागण प्रबंधन

मधुमक्खियों का फूल गोभी के परागण में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऐसा पाया गया है कि 8–10 मधुमक्खी छत्ता/हेक्टेयर खेत में रखने पर बीज के उत्पादन में 20–50 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी हुई साथ ही बीज की गुणवत्ता में भी वृद्धि पायी गयी है।

बीज उत्पादन की विधि

पिछेती फूल गोभी की किस्में द्विवर्षीय फसल की तरह व्यवहार करती है और बीज बनाने के लिए दो मौसम की आवश्यकता होती है। पहले मौसम में वानस्पतिक चरण पूर्ण करते हैं तदोपरान्त् फूलों और बीज का उत्पादन करते हैं। फूल गोभी का बीज आमतौर पर बीज से बीज विधि द्वारा उत्पादित होती है। फूल के पूर्ण रूप से विकास होने के बाद अगेती और मध्य अगेती किस्मों के बीज की फसल खुली दशा में छोड़ दिया जाता है।

अवांछनीय पौधों को निकालना (रोगिंग)

अवांछनीय या भिन्न पौधों को निकालने की प्रक्रिया को रोगिंग कहते है जो कि बीज उत्पादन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह किस्मों की शुद्धता एवम् एकरूपता बनाए रखने के लिए अति आवश्यक है। फूल गोभी में वानस्पतिक वृद्धि, फूल बनने के समय एवम् पुष्पन की अवस्था में रोगिंग करके अवांछनीय या भिन्न पौधों को निकाल देना चाहिए।

फूल गोभी की विकृतियाँ

भूरापनः बोरान की कमी से प्रारम्भ में पौधे के तने, पत्ती के सतह पर छोटे–छोटे भूरे धब्बे दिखाई देते है तथा बाद में पूरी गोभी (फूल) हलका गुलाबी या भूरे रंग की हो जाती है।

बोरान की कमी से फूल गोभी अत्यधिक संवेदनशील है। इसकी प्रबंधन के लिए बोरेक्स या बोरान 10–15 किग्रा/हे. की दर से खेत में डाले। फसल पर बोरेक्स / 0.25–0.50 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें तो आशातीत उपज और अच्छे फूल प्राप्त होते हैं।,

व्हीपटेलः यह विकृति मालीब्डेनम की कमी से होता है जब मृदा का पी.एच. मान 5.5 से नीचे हो। इसकी संवेदनशीलता और बढ़ जाती है। इस सूक्ष्म तत्व की कमी से पत्तियों में हरे रंग की कमी हो जाती है और वे किनारे से सफेद हो जाती है व नाम मात्र के लिए थोड़ा हरा रहती है जो बाद में मुरझा

कर गिर जाती है। इससे बचाव के लिए अमोनियम मालीब्डेनम के 1.5 किग्रा./हे. की दर से मिट्टी में देने पर गोभी के आकार, गुणवत्ता व विटामिन सी में वृद्धि होती है। अमोनियम मालीब्डेनम/ 0.1 प्रतिशत का घोल बनाकर रोपण के 15, 30 और 45 दिनों बाद 3 बार छिड़काव करें।

बटनिंगः इस विकृति में फूल छोटे या बटन के आकार के हो जाते हैं। यह अगेती किस्म का रोपण देर से करने के कारण होता है।

अन्धापनः इस विकृति में बिना किसी फूल के पौधे बढ़ते हैं। पत्तियाँ गहरा हरा, लम्बा एवं मोटी हो जाती है। यह विकृति का मुख्य कारण ऊपरी भाग का कीड़ों या किसी अन्य माध्यम से नुकसान होता है।

कीट

तम्बाकू की पहेगाः यह कीट लगभग 1 सेमी. लम्बे होते हैं जो पत्तियों की निचली सतहों को खाती है और धब्बे पत्तियों

पर दिखाई देते हैं तथा बाद में ये पत्तियों पर छोटे–छोटे छिद्र बना देते हैं। रोकथाम के लिए सरसों को गोभी के प्रत्येक 25 कतारों के बाद 2 कतारों में लगाना चाहिए। प्रोफेनोफॉस 1.25 मिली./ली. पानी या साइपरमेथ्रिन 1.0 मिली./ली. पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

माहूँ: यह छोटे आकार के हरे पंखदार व पंख विहीन कीट होते है। इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों ही पत्तियों से रस चूसते है जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। उपज का बाजार मूल्य कम हो जाता है। माहूँ अपने शरीर से मधु रस उत्सर्जित करता है जिस पर फफूँदी विकसित हो जाती है। जिससे पौधों पर जगह–जगह काले धब्बे दिखाई देते है। इससे लगभग 20–25 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। इसके रोकथाम के लिए लिए डाईमिथोएट (30 ई.सी.) 1.5 मिली./लीटर पानी या इमिडाक्लोपरिड/0.5 मिली./ली. पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण

काला सड़न रोगः इस बीमारी के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों के किनारों पर 'वी' आकार में हरिमाहीन एवं पानी में भीगे जैसे दिखाई देते हैं तथा पत्तियों की शिरायें काली दिखाई देती हैं। अत्यधिक प्रकोप के कारण रोग अन्य भागों पर भी दिखाई देता है जिससे फूल के डंठल अन्दर से काले होकर सड़ने लगते हैं। प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करें जैसे पूसा शुभ्रा, पूसा स्नोबाल के.–1। गर्म पानी में 50–52 डिग्री सेल्शियस पर 30 मिनट के लिए बीज को उपचारित करने के साथ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का 0.01 प्रतिशत का घोल बनाकर 30 मिनट तक डूबा रहने दें। कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत + स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट को 100 पी.पी.एम का छिड़काव करें।

डंठल सड़नः यह रोग पौधे की विभिन्न अवस्थाओं में दिखाई देता है। यह मुख्य रूप से काला सड़न रोग के बाद या फूल पर चोट लगने पर अधिक होता है तथा इसके लक्षण पानी से भीगे हुए धब्बे ऊपरी सतह पर दिखाई देते हैं। इसके नियंत्रण के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत + स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट का 100 पी.पी.एम का छिड़काव करें।

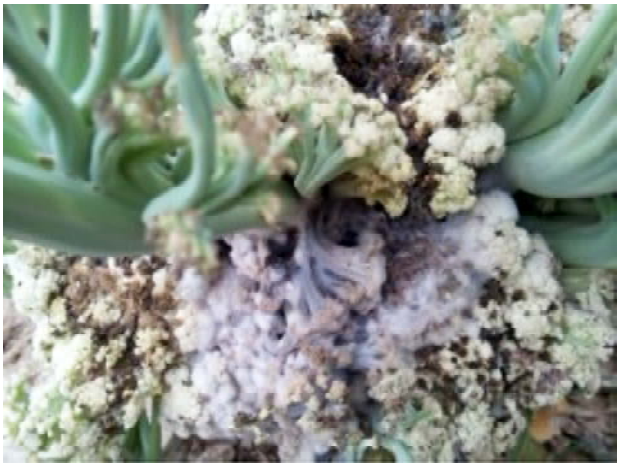

झुलसा रोग या अल्टरनेरिया धब्बा रोगः इस रोग से पत्तियों पर गोल आकार के छोटे से बड़े भूरे धब्बे बन जाते है और उनमें छल्लेनुमा धारियाँ बनती हैं। अंत में धब्बे काले

रंग के हो जाते है। इसके नियंत्रण के लिए कैप्टान या थीरम में 3.0 ग्राम प्रति किग्रा. दर से बीज को उपचारित करें। कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत या मैन्कोजेब 0.25 प्रतिशत या प्रोपीकोनाजोल घोल का 1 मिली./लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू): यह फफूँद जनित रोग है। इनमें पत्तियों के ऊपर सतह पर हल्के बैंगनी से पीले भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। अत्यधिक प्रकोप के कारण पौधे मर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत मेटालेक्सिल + मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत का 10–12 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें या डायथेन एम–45, 2.0 ग्राम/लीटर पानी में घोल कर 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

आर्द्र गलन: इस रोग का कारण *पीथियम* नामक फफूँद है। यह पौधशाला का एक मुख्य फफूँदी रोग है। इस रोग के कारण बीज के अंकुरित होते ही इसके जमने के सतह पर ही सड़न शुरू हो जाती है जिससे पौधें मर जाते है। कैप्टान या थीरम से 3.0 ग्राम प्रति किग्रा/बीज की दर से बोने से पूर्व बीज को शोधित कर लेना चाहिए। पौधशाला को 3 ग्राम/लीटर की दर से कैप्टान या थीरम या फार्मेल्डिहाइड 160–175 मिली. को 2.5 लीटर की दर से बीज बोने के 7 दिन पहले भूमि शोधित करना चाहिए। जल निकास की उचित व्यवस्था

होनी चाहिए। कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम और मैंकोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर पौधे पर छिड़काव करें।

कटाई, मड़ाई एवं बीज भण्डारण

फसल की कटाई करने का सबसे अच्छा समय दैहिक परिपक्वता के एक सप्ताह के भीतर होता है। जिससे क्रमशः हरे से गुलाबी पीले और भूरे रंग में सिलिकुआ बीज परिवर्तित हो जाते हैं। बीज परिपक्वता आमतौर पर बीज बुआई के 250–275 दिनों उपरान्त होती है, यह बीज के अलग–अलग किस्मों पर आधारित होता है। हाथों के बीच रगड़ते समय बीज कुचलना या विभाजित नहीं होना चाहिए। कटाई दो या दो से अधिक बार में किया जा सकता है। अधिकांशतः अगेती पौधों की कटाई करते है जब फली का रंग 60–70 प्रतिशत भूरी हो जाती है और बाकी के पीले भूरे रंग में बदल जाते हैं। कटाई के बाद इन्हे क्योरिंग के लिए 4–5 दिनों तक छायादार स्थान पर इकट्ठा किया जाता जाता है। फिर इसे पूर्णरूप से सुखाकर इसकी मड़ाई की जाती है 7–8 प्रतिशत नमी तक बीज सूखाने के बाद सफाई करके भण्डारित किया जाना चाहिए।

बीज उपज

बीज उपज एवं इसकी गुणवत्ता फूल और बीज विकास के दौरान मौसम पर निर्भर करता है। औसत बीज उपज 400–800 किलोग्राम/हेक्टेयर होती है जो कि किस्मों तथा परागण प्रबंधन पर निर्भर होता है।

सब्जी बीज गुणवत्ता प्रबंधन एवं भण्डारण

रामेश्वर सिंह, मनीमुरूर्गन सी. एवं पी.एम. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

उन्नत कृषि में बीज का बहुत अधिक महत्व है। अच्छे बीज में अंकुरण एवं जीवन क्षमता परीक्षण का मानक प्रतिशत रहना आवश्यक होता है। अलग–अलग फसलों में अंकुरण एवं जीवन क्षमता अलग–अलग होती है। इसके अलावा बीज कीट एवं रोगों से रहित होना भी आवश्यक है। कृषि की सफलता में गुणवत्तायुक्त बीज एवं उसके बुवाई का समय, बुवाई की दूरी, बुवाई के समय नमी की मात्रा, बुवाई की गहराई आदि का बहुत महत्व है। अच्छे बीज के लिए कृषि क्रियाएं मानक अनुसार करने पर बीज का निष्पादन अच्छा होता है। बीज की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए कटाई उपरान्त की जाने वाली कृषि क्रियाओं का विवरण इस लेख में दिया जा रहा है।

बीज सुखाने का सिद्धान्त

बीज से नमी को बाहर करने को सुखाना कहते हैं। बीज को सुरक्षित नमी सीमा तक सुखाना चाहिए जिससे भण्डारण अवधि में बीज की अंकुरण एवं जीवन क्षमता मानक के अनुसार बनी रहे अन्यथा कवक वृद्धि, तापमान वृद्धि एवं अन्य सूक्ष्म जीवों की सक्रियता बढ़ जाती है। बीज सुखाना जलवायु एवं कटाई विधि से प्रभावित होता है जिसमें सुखाने की जरूरत पड़ती भी या नहीं भी पड़ती है। बीज के सतह की नमी में कमी वाष्पीकरण से होती है जिससे बीज में नमी का ग्रेडियेन्ट विकसित हो जाता है। बीज सुखाने में वातावरण के तापमान और आपेक्षिक आर्द्रता का प्रभाव पड़ता है। जब बाहर वातावरण की आर्द्रता बीज की नमी से कम होती है तो बीज की नमी बाहर हो जाती है। जब बीज को सुखाते है तो आक्सीडेसन, डी कम्पोजीशन एवं केलाटीलाइजेशन से बचाव करना चाहिए। बीज में नमी अधिक होने पर सुखाने का तापमान कम होना चाहिए एवं बीज में नमी कम होने पर सुखाने का तापमान अधिक होना चाहिए। बीज सुखाने की दर निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है:

- शुरूआत में बीज में नमी की मात्रा
- बीज का आकार एवं क्षमता
- बीज फैलाने की मोटाई
- हवा बहाव की दर
- वातावरण की आपेक्षिक आर्द्रता
- स्टेटिक प्रेशर
- बीज से नमी का बाहर होना दो बातों पर निर्भर होता है जैसे (1) बीज की बाहरी सतह की नमी जो शुरू में हवा के सम्पर्क में आने से कम होती है एवं (2) सतह पर नमी कम होने से बीज की अन्दर की नमी सतह पर आने लगती है।

सुखाने की विधियाँ

1. परम्परागत धूप में सुखाना

यह प्रचलित परम्परागत विधि है जिसमें कटाई उपरान्त फसल को खेत में या थ्रेसिंग फ्लोर पर खुली धूप में सुखाते हैं। इसमें कोई अतिरिक्त व्यय नही होता है। एक समान सुखाने के लिए बीज को पतली लेयर में फैलाना चाहिए। बीज में 17 प्रतिशत से अधिक नमी होने पर आंशिक धूप में (छाया) में सुखाना चाहिए। रात में बीज को एकत्र कर ढक देना चाहिए जिससे रात्रि में बीज में नमी नहीं आने पायें। बीज में नमी का स्तर 10–12 प्रतिशत का स्तर लाने में 3–4 दिन का समय लगता है।

धूप में सुखाने के लाभ

- यह विधि सरल एवं सस्ता है।
- इस विधि में कोई ईधन एवं खर्च नहीं लगता।

2. यांत्रिक विधि से सुखाना

यांत्रिक विधि से सुखाने में गर्म हवा द्वारा सुखाते हैं इसमें गर्म हवा को बीज की पतली लेयर से तब तक गुजारते

हैं जब तक बीज में भण्डारण योग्य सुरक्षित नमी नही हो जाती है। गर्मी के दिनों में भण्डार गृह में बाहर की गर्म हवा इलेक्ट्रानिक ब्लोवर से भण्डार गृह में भेजी जाती है जिससे बीज सूख जाता है। यह केवल गर्मी के महीनों में सम्भव होता है। बीज सुखाने के लिए दो तरह के ड्रायर का प्रयोग किया जाता है जैसे बैच ड्रायर एवं कान्टीनुअस फ्लो ड्रायर। पहले तरह के ड्रायर में गर्म हवा ट्रे में फैले पतली लेयर के बीज को तब तक दी जाती है जब तक बीज में भण्डारण योग्य सुरक्षित नमी न हो जाए। उसके बाद ट्रे में दूसरा बीज फैला दिया जाता है। थोड़ी मात्रा में बीज सुखाने की अच्छी विधि है। लगातार फ्लो ड्रायर इस विधि में बीज वर्टिकल या हार्जीन्टल भाप से होता है। इस विधि में बैच ड्रायर की अपेक्षा हवा का तापमान अधिक रखा जाता है क्योंकि इसमें बीज को कम समय तक गर्म किया जाता है।

यांत्रिक विधि से लाभ

- इस विधि से बीज को समय से एक समान सुखाना सम्भव है एवं समय कम लगता है।
- बीज फसल कटाई समय से की जा सकती है।
- खेत में बीज झड़ने नही पाता है।
- बीज विधायन में बीज कम खराब होते हैं।

श्रेणीकरण (ग्रेडिंग)

बीज की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए ग्रेडिंग करना आवश्यक होता है। ग्रेडिंग करने से बीज बनावट एवं आकार में एक जैसे रहते हैं जो बीज की गुणवत्ता के लिए आवश्यक है। ग्रेडिंग के लिए दो स्क्रीन एयर क्लीनर सीड ग्रेडर एवं ग्रेविटी सेपरेटर का प्रयोग किया जाता है। कृषि फसलों के अनुसार ग्रेडिंग मशीन की ऊपर एवं नीचे की जालियों के छिद्र का आकार एवं बनावट का चुनाव किया जाता है। छिद्रों की बनावट गोल, आयताकार, अण्डाकार आदि होता है। बीज ग्रेडिग होने के बाद ग्रेविटी सेपरेटर से पुनः ग्रेड होता है। ग्रेविटी सेपरेटर से बीज ग्रेविटी के आधार पर हल्के बीज अलग हो जाते है एवं अच्छे बीज एक तरफ एकत्र किये जाते हैं।

बीज छांटना

बीज ग्रेडिंग के बाद बीज छंटाई का कार्य बीज की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आवश्यक होता है। ग्रेडिंग के बाद रंग एवं बनावट में अलग तरह के बीज एवं कटे बीज जो ग्रेडिंग के बाद बचे रह जाते हैं उनको कृषि श्रमिकों द्वारा अलग किया जाता है।

बीज पैकिंग

सब्जी फसलों का बीज आकार एवं बनावट में अलग–अलग होता है इसलिए इसकी प्रति हे. बीज दर भी 100 ग्राम से लेकर 150 किग्रा/हे. तक होती है। ऐसे बीज जिनकी बीज दर कम होती है उनके पैकेट की साइज छोटी एवं जिनकी बीज दर अधिक होती है इनकी साइज बड़ी रखते हैं। बहुत छोटे–छोटे पैकेट बनाने के लिए प्रिन्टेड पालीथीन पाउच, मध्यम आकार के पैकेट बनाने के लिए प्रिन्टेड पालीथीन पाउच या प्रिन्टेड काटन बैग का प्रयोग करते हैं। बड़ा पैकेट बनाने के लिए प्रिन्टेड पालीथीन पैकेट या जूट बैग का प्रयोग करते हैं।

बीज भण्डारण के सिद्धान्त

बीज भण्डारण दो तरह से किया जाता है सामान्य कमरे के तापमान में एवं दूसरा शीत गृह भण्डारण। सामान्य कमरे के तापमान पर भण्डारण में सबसे अधिक ध्यान इस बात का दिया जाता है कि बीज में भण्डारण के दौरान नमी की मात्रा बढ़ने न पाये एवं बीज कीट एवं बीमारयों से संक्रमित होने से सुरक्षित रहे। बीज में नमी से बचाव के लिए बीज को लकड़ी से बने हवादार आधार पर पिरामिड आकार में 13 बैग की ऊँचाई तक रखना चाहिए। बीज भण्डारण सामान्य कमरे के तापमान पर करने पर बीज के बीच में एल्यूमिनियम फास्फाइड रखकर पालीथीन से हवा रहित ढक देना चाहिए। ऐसा करने से बीज में नमी बढ़ने नही पाती एवं बीज कीट एवं बीमारियों से संक्रमित होने से बचा रहता है। भण्डारण में बीज की जीवन क्षमता को बहुत से कारक प्रभावित करते हैं। अच्छे भण्डारण के लिए नीचे दिये गये सिद्धान्तों को पालन करना आवश्यक है:

1. बीज भण्डारण की दशा शुष्क एवं ठण्डी होनी चाहिए।

2. प्रभावी कीट/रोग नियंत्रण।
3. भण्डार गृह की ठीक तरह से सफाई।
4. बीज को भण्डार गृह में रखने से पहले बीज में सुरक्षित सीमा में नमी।
5. भण्डारण में अच्छे बीज जिसकी जीवन क्षमता एवं अंकुरण अच्छा हो भण्डारण के लिए उपयोग में लाना चाहिए।
6. भण्डारण में भण्डारण अवधि एवं स्थान की जलवायु का ध्यान रखना।
7. ऐसी जलवायु जिसमें आपेक्षिक आर्द्रता अधिक रहती है वहां भण्डारण में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

शीत गृह भण्डारण

शीतगृह में तापमान एवं आर्द्रता निर्धारित अनुपात में रहती हैं। शीतगृह में तापमान 15 ± 5^0 से एवं आर्द्रता 40 ± 5 प्रतिशत रखी जाती है। शीत गृह में तापमान कम करने के लिए ए.सी. लगा रहता है एवं नमी कम करने के लिए डीह्यूमीडिफायर लगा रहता है। शीत गृह भण्डारित बीज की गुणवत्ता 2–3 वर्षों तक बनी रहती है। व्यावसायिक स्तर पर बीज उत्पादन करने पर ऐसे भण्डारगृह आवश्यक होती है। सब्जियों का बीज बुआई के अलावा अन्य उपयोग बहुत सीमित होने के कारण इसको सुरक्षित रखने के लिए इस तरह के भण्डार गृह की आवश्यकता अधिक होती है।

बुवाई पूर्व बीजोपचार

बुवाई के लिए बीज विक्रय के पूर्व बीज उपचार थायोमेथाक्जाम सीड ड्रेसिंग पाउडर 1.5 ग्राम एवं पानी 10–15 मिली लीटर/किग्रा. से करते हैं। थायोमथाक्जाम से बीज उपचार करने से फसल बुवाई के 30–35 दिनों बाद तक कीट एवं बीमारियों के संक्रमण से बची रहती है। मृदा जनित बीमारियों से बचाव के लिए बीज को ट्राइकोडर्मा 5–6 ग्राम/किग्रा. या कार्बेन्डाजिम 2.0–2.5 ग्राम/किग्रा. से उपचारित करने से फसल मृदा जनित बीमारियों से सुरक्षित रहती है।

बीज अंकुरण परीक्षण

बुआई पूर्व अंकुरण परीक्षण करना आवश्यक होता है। अंकुरण के लिए टावेल पेपर भिगोकर फैला देते है एवं उसके बाद 100 बीजों को गिनकर बराबर दूरी पर रख देते हैं उसके बाद टावेल पेपर को नीचे से मोड़कर लपेट देते है इसके बाद इसको ट्रे जिसमें 2–4 सेमी. पानी भरा हो का सहारा देकर खड़ा कर देते है। ट्रे में पानी कम होने पर ट्रे में पानी डाल देते हैं। कृषि फसलों के अनुसार 7–14 दिन में बीजों का अंकुरण हो जाता है। उसके बाद गिनकर अंकुरण प्रतिशत निकाल लेते हैं।

मनुष्य को अपनी ओर खींचने वाला यदि जगत में कोई असली चुम्बक है, तो वह केवल प्रेम है।

– महात्मा गांधी

उद्यमिता विकास हेतु बीज उत्पादन

पी.एम. सिंह एवं रामेश्वर सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

कृषि अनुसंधान के परिणाम स्वरूप नई किस्मों का विकास तेजी से हो रहा है। पुरानी किस्मों को स्थानापन्न करने हेतु उनके बीज की आवश्यकता की पूर्ति हेतु बीज उत्पादन के कार्य में उद्यमिता विकास के पर्याप्त अवसर हैं। बीज उत्पादन में उद्यमिता विकास हेतु अवसर का विस्तृत विवरण इस लेख में दिया जा रहा है।

बीज वाली फसल उगाने के लिए तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है जिससे बीज की शुद्धता एवं गुणवत्ता बनी रहे। बीज वाली फसल में समय–समय पर अवांछनीय पौधों को निकालकर, फसल को अलग सुखाना, मड़ाई एवं ओसाई करने के बाद पुनः बीज को सुखाना एवं बीज विघायन, पैकिंग, टैगिंग का कार्य भण्डारण एवं अंकुरण परीक्षण में सामान्य फसलों की तुलना में अधिक श्रम एवं श्रमिक की आवश्यकता होती है जो प्रत्येक कृषि फसल में अलग–अलग होती है।

निश्चित आय एवं रोजगार के लिए सभी तरह की कृषि फसलों का बीज उत्पादन करें

कृषि फसलों में गेहूँ, धान, दलहनी फसलें, तिलहनी फसलें, हरी खाद वाली फसलें, रेशा वाली फसलें, सब्जी फसलें आदि आती है। इनमें से दो या दो से अधिक तरह की फसलों का बीज उत्पादन करने से कृषि जोखिम से किसी एक फसल की क्षति होने एवं दूसरी फसल सफल होने से उद्यमी के जोखिमों से निपटने में सहायता मिलती है इसके अलावा फसल चक्र में विभिन्न तरह की फसल लेने से मृदा उर्वरता बनाए रखने में सहायता मिलती है एवं मृदा उर्वरता का अधिकतम उपयोग भी होता है तथा खरपतवार, रोग एवं कीट का प्रकोप कम होता है।

बीज उत्पादन में उद्यमिता विकास हेतु प्रशिक्षण

चूंकि बीज उत्पादन हेतु कुछ तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है अतः बीज उत्पादन शुरू करने से पहले प्रशिक्षण लेना श्रेयस्कर होता है। प्रशिक्षण में कृषि फसलों में परागण की प्रकृति एवं उसके आधार पर पृथक्करण दूरी; समय–समय पर अवांछनीय पौधों को बीज फसल से उखाड़कर बाहर करना आदि; बीज फसल कटाई के उपरान्त सुखाने एवं बीज विधायन के अन्तर्गत श्रेणीकरण एवं सफाई का कार्य में प्रयुक्त होने वाली मशीनों के बारे में जानकारी; बीज का भण्डारण कैसे करें; बीज भण्डारण के पहले बीजों का उपचार कैसे करें एवं विक्रय के पहले अंकुरण परीक्षण के बारे में भी जानकारी दी जाती है। उद्यमिता विकास हेतु बीज उत्पादन सम्बन्धी प्रशिक्षण कृषि के केन्द्रीय एवं राजकीय संस्थान एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा समय–समय पर आयोजित किया जाता है जिसमें भाग लेकर आवश्यक ज्ञान अर्जन करके बीज उत्पादन का उद्यम शुरू किया जा सकता है।

देश के विभिन्न राज्यों में बीज प्रमाणीकरण संस्था कार्यरत है जहाँ आवेदन के साथ आवश्यक दस्तावेज एवं शुल्क जमा करके प्रमाणीकृत बीज बनाया जा सकता है। आवश्यक दस्तावेज में आधार बीज उत्पादन हेतु जनक बीज का टैग एवं प्रमाणित बीज के लिए आधार बीज का टैग एवं बीज विघायन हेतु श्रेणीकरण एवं सफाई मशीन की उपलब्धता का प्रमाण देना होता है। जनक बीज किस्मों को विकसित करने वाले प्रजनक संस्थान या कृषि मंत्रालय द्वारा किस्म विशेष के लिए आंवटित संस्थान से प्राप्त किया जा सकता है। आधार एवं प्रमाणित बीज कृषि विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय बीज निगम एवं राज्य बीज निगम के कार्यालयों से प्राप्त किया जा सकता हैं। प्रमाणीकरण हेतु बीज उत्पादन प्रक्षेत्र का निरीक्षण प्रमाणीकरण अधिकारी द्वारा निर्धारित समय पर किया जाता है। प्रमाणीकरण मानक को पालन करने वाली फसल के बीज को ही प्रमाणित बीज का टैग प्रदान किया जाता है। नई किस्मों के बीज उत्पादन की शुरूआत कम क्षेत्रफल में करें एवं माँग बढ़ने पर उत्पादन बढ़ाये किसी भी प्रचलित किस्म को नई किस्मों से स्थानापन्न में समय लगता है इसलिए नई किस्मों का बीज उत्पादन कम क्षेत्रफल में करके प्रचलित किस्मों के साथ नई किस्मों का बीज उत्पादकों को उपलब्ध कराए। नई किस्मों की उत्पादन एवं गुणवत्ता के आधार पर बीज की माँग बढ़ने पर अधिक क्षेत्रफल में बीज उत्पादन करें।

सारिणी 1: कृषि फसलों के सामान्य एवं बीज वाली फसलों की लागत, आय एवं श्रम का विवरण

लागत एवं आय मद	गेहूँ		धान		सरसों		चना		टमाटर	
	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज
जुताई (1 जुताई एम.वी वी प्लाऊ एवं तीन कल्टीवेटर/हैरो)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)	6000 (2)
खाद 10 टन गोबर की खाद + छिड़काव	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)	8000 (8)
उर्वरक– 100:50:50 400+2200+1200 + छिड़काव	3800 (1)	3800 (1)	3800 (1)	3800 (1)	3800 (1)	3800 (1)	3400 (1)	3400 (1)	4000 (8)	4000 (8)
बीज	2160	4200	750	1050	350	600	1600	2400	1500	1860
पौधशाला	–	–	2500 (6)	2500 (6)	–	–	–	–	3000 (7)	3000 (7)
बुआई/रोपण	2400 (7)	2400 (7)	9100 (26)	9100 (26)	3500 (10)	3500 (10)	2400 (7)	2400 (7)	7000 (20)	7000 (20)
खरपतवारनाशी	1500	1500	1500	1500	1500	1500	1500	1500	1500	1500
खरपतवारनाशी छिड़काव	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)
सिंचाई (पानी)	4000	4000	1600	1600	800	800	800	800	4000	4000
सिंचाई (श्रम)	4375 (13)	4375 (13)	1750 (5)	1750 (5)	875 (3)	875 (3)	875 (3)	875 (3)	4375 (13)	4375 (13)
निराई	7000 (20)	7000 (20)	3500 (10)	3500 (10)	–	–	14000 (40)	14000 (40)	28000 (80)	28000 (80)
कीटनाशी/कवक नाशी/सूक्ष्म तत्व	–	–	800	800	1600	1600	1600	1600	3200	3200
कीटनाशी/कवक नाशी छिड़काव	–	–	350 (1)	350 (1)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	1750 (5)	3500 (10)	3500 (10)
रोगिंग	–	1400 (4)	–	1400 (4)	–	2800 (8)	–	1400 (4)	–	1400 (4)
फसल कटाई	8750 (25)	8750 (25)	8750 (25)	8750 (25)	4375 (13)	4375 (13)	3375 (10)	3375 (10)	52500 (150)	52500 (150)

लागत एवं आय मद	गेहूँ		धान		सरसों		चना		टमाटर	
	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज	सामान्य	बीज
बीज निष्कर्षण श्रम	2800 (8)	2800 (8)	2800 (8)	2800 (8)	5600 (16)	5600 (16)	3600 (10)	3600 (10)	–	31500 (90)
बीज निष्कर्षण किराया	8750	8750	8750	8750	4750	4750	4750	3750	3750	–
बीज श्रेणीकरण, सफाई एवं पैकिंग	–	3500 (10)	–	3500 (10)	–	3500 (10)	–	3500 (10)	–	8400 (24)
कुल लागत	58285	65225	58700	63900	42450	46200	57400	57100	125325	167035
कुल उपज	50 कु.	50 कु.	50 कु.	50 कु.	18 कु.	18 कु.	18 कु.	18 कु.	450 कु.	1.2 कु.
कुल आय	87500	1125000	87500	112500	72000	90000	79200	90000	180000	240000
शुद्ध आय	29215	47275	28800	48600	29550	43800	27800	32900	54675	72965
प्रति दिन/हे. आय (रूपया)	243	394	240	405	246	365	232	274	303	405
कुल श्रमिक	89	103	97	111	63	81	91	105	296	414
प्रतिदिन/हे. (श्रम)	0.7	0.9	0.8	0.9	0.5	0.7	0.8	0.9	1.6	3.5

नोट : कोष्ठक में दी गयी संख्या श्रमिकों की है।

बीज प्रमाणीकरण

हमारे देश में बीज प्रमाणीकरण के आधार पर बीज को 4 वर्गों में बाँटा जाता है– (1) प्रजनक बीज (2) आधार बीज (3) प्रमाणित बीज (4) सत्य बीज।

बीज भण्डारण

कृषि फसलों का बीज पैदा होने पर पुनः बुवाई होने के बीच 4–6 महीने के अन्तर होता हैं। इस अवधि में बीज का भण्डारण ठीक से नहीं करने पर बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा कीट एवं बीमारियों से ग्रसित हो सकता है। बीज को नमी से बचाये रखने के लिए सूखे हुए बीज को लकड़ी के हवादार आधार पर पिरामिड आकार में 13 बैग की ऊँचाई तक रखने के उपरान्त उचित फ्यूमिगेंट का पाउडर काटन बैग में रखकर बोरों के बीच में रखने के उपरान्त पालीथीन से हवा रोधक ढकना चाहिए जिससे इस प्रकार ढके बीजों में कीटरोधी हवा का पर्याप्त असर बना रहे। कृषि फसलों से उद्यमिता विकास हेतु आय एवं श्रम का अनुमानित आंकड़ा नीचे की सारिणी में दिया जा रहा है।

सारिणी में दिये गये आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि सभी कृषि फसलों की सामान्य फसल की अपेक्षा बीज वाली फसल द्वारा आय बढ़ती हैं एवं अधिक श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होता है। कृषि फसलों के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन में सब्जी फसल से आय बढ़ती है एवं अधिक श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होता है।

सब्जियों के बीज अंकुरण परीक्षण की विधियाँ

मनीमुरूगन सी., नकुल गुप्ता, पी.एम. सिंह, राजेश कुमार एवं त्रिभुवन चौबे

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

यद्यपि भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा सब्जी उत्पादक है फिर भी हमारी उत्तरोत्तर बढ़ती जनसंख्या की पोषण सुरक्षा की पूर्ति करने के लिए सब्जियों का उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता है। अधिक उपज वाली किस्मों/संकरों के गुणवत्तायुक्त बीज इस हेतु कारगर साबित हो सकते हैं। बीज को किसानों को वितरित करने से पूर्व उसके गुणवत्ता मानकों जैसे अंकुरण, भौतिक शुद्धता और अनुवांशिक शुद्धता की जाँच करना आवश्यक है। इन सभी गुणवत्ता मानकों में बीज अंकुरण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि खेत में पौधों का जमाव यही निर्धारित करता है और साथ ही कम अंकुरण से फसल के असफल होने की सम्भावना को भी कम करता है। बुआई से पूर्व विभिन्न विधियों से अंकुरण क्षमता की जाँच करना अनिवार्य है। इस अध्याय में हम बीज अंकुरण तथा उसकी जाँच की विभिन्न विधियों को समझेंगे।

बीज अंकुरण

''नियंत्रित अनुकूल परिस्थितियों में बीज का उस अवस्था तक उद्भव एवं विकास जहाँ इसके आवश्यक अंग यह इंगित कर सकें कि आगे चलकर वह एक स्वस्थ पौधा बनने की क्षमता रखता है या नहीं'' बीज अंकुरण कहलाता है। असामान्य जड़ तथा तने वाले पौध को असामान्य पौध माना जाता है और उसे अंकुरण प्रतिशत में शामिल नहीं किया जाता है।

बीज अंकुरण का परीक्षण

सामान्य तौर पर भौतिक शुद्धता परीक्षण के बाद भौतिक शुद्ध भाग में से 400 बीज (100 x 4 प्रतिकृतियाँ या 50 x 8 प्रतिकृतियाँ) अंकुरण परीक्षण के लिए लिये जाते है और परिणाम प्रतिशत में व्यक्त किये जाते हैं। इस हेतु बीज समूह में से नमूना इस प्रकार लिया जाता है ताकि परिणाम पूरे बीज समूह का प्रतिनिधित्व कर सके। बीज के आकार, प्रकाश और तापमान की आवश्कताओं के आधार पर बीज अंकुरण परीक्षण के लिए विभिन्न विधियाँ उपयोग में ली जाती है। बीज परीक्षण पर्यावरण में इष्टतम नमी, प्रकाश (न्यूनतम 8 घण्टे) और तापमान (25 ± 2 डिग्री सेल्शियस या 30 ± 2 डिग्री सेल्शियस) उचित अंकुरण के लिए आवश्यक होता है। इसके लिए एक अंकुरण कक्ष का उपयोग किया जाता है। विभिन्न जैविक कारक जैसे कीड़े और रोग कारक बीज के अंकुरण को कम कर सकते हैं तथा साथ ही सुषुप्ता भी बीज अंकुरण को प्रभावित करती है। अतः बीज अंकुरण परीक्षण के दौरान इन कारकों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बीज अंकुरण की विभिन्न विधियाँ

1. **'पेपर के बीच' विधि (बी.पी.)** : इस विधि को रोल्ड टॉवल के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि में 30 x 45 सेन्टी मीटर आकार के अंकुरण पत्र का उपयोग किया जाता है जो किसी भी रोग कारक या विषैले पदार्थ से मुक्त होना चाहिए। इस विधि में दो नम अंकुरण पत्रों के बीच बीज रखा जाता है। इस अंकुरण पत्र को नीचे से मोडा जाता है फिर इसे बायें से दायें की दिशा में लपेटा जाता है और फिर नमी को कम होने से बचाने के लिए इसे बटर पेपर में लपेटा जाता है। इसी बटर पेपर पर बीज समूह की जानकारी जैसे समूह संख्या, दिनांक, बीजों की संख्या आदि भी लिखी जाती है। फिर इसे (2 इंच पानी से भरी) अंकुरण ट्रे में सीधा खड़ा कर दिया जाता है। अंत में इस ट्रे को अंकुरण कक्ष में निश्चित अवधि के लिए रख दिया जाता है। इस विधि से आमतौर पर सभी फसलों के बीजों की जाँच की जा सकती है। यह बीज अंकुरण परीक्षण की सबसे प्रचलित व विश्वसनीय विधि है।
2. **प्लीटिड पेपर विधि** : यह एक संशोधित रोल्ड टॉवल विधि है। इसमें बीज को अंकुरण पत्र के बजाय चुन्नटदार अंकुरण पत्र के बीच लपेटकर रखा जाता है। इस विधि से बहु अंकुर वाली फसलों के बीज जैसे पालक व चुकन्दर की अंकुरण क्षमता की जाँच की जाती है। चुन्नटों की सहायता से हम एक बीज से निकले एक से अधिक पौध को पहचान सकते हैं तथा इन्हें एक बीज के रूप में गिना जा सकता है।

सारिणी 1: बीज अंकुरण के लिये तापमान के आधार पर गणना

फसल	अंकुरण माध्यम	तापमान (डिग्री सेल्शियस)	प्रथम गणना (दिन)	अंतिम गणना (दिन)	अन्य संस्तुतियाँ (आवश्यकतानुसार उपचार)
फल वाली सब्जियाँ					
बैंगन	टी.पी., बी.पी.	20–30	7	14	–
मिर्च	टी.पी., बी.पी.	20–30	7	14	***KNO_3
भिण्डी	बी.पी., एस.	20–30	4	21	-
टमाटर	बी.पी., टी.पी.	20–30	5	14	***KNO_3
कद्दू वर्गीय सब्जियाँ					
खीरा	बी.पी., टी.पी., एस.	20–30, 25	4	8	
ककड़ी खरबूजा कुम्हड़ा	बी.पी., एस.	20–30, 25	4	8	
चप्पन कद्दू	बी.पी., एस.	20–30, 25	4	8	कम नमी
टिण्डा	बी.पी., एस.	20–30, 25	4	8	
तरबूज	बी.पी., टी.पी., एस.	20–30, 25	5	14	
परवल, चिचिंडा	एस.	30–35	–	14	अंधरे में, ***GA_3 (500 पी. पी.एम. 24 घण्टे हेतु) बीज घोल हटाकर
तोरई	बी.पी., एस.	30	4	14	–
फूट	बी.पी., एस.	20–30, 25	4	8	–
नेनुआ	बी.पी., एस.	20–30, 30	4	14	–
पेठा	एस.	30–35	5	14	प्रकाश
करेला	बी.पी., एस.	20–30, 30	4	14	–
लौकी	बी.पी., एस.		4	14	–
दलहनी सब्जियाँ					
ब्रॉड बीन	बी.पी., एस.	20	4	14	–
ग्वार	बी.पी.	20–30	5	14	–
लोबिया	बी.पी., एस.	20–30, 25	5	8	–
सेम	बी.पी., एस.	25, 20–30	4	10	–
फराश बीन	बी.पी., एस.	20–30, 20–25	5	20	–
मटर	एस., बी.पी.	20	5	8	–
लिमा बीन	बी.पी., एस.	20–30, 25	5	9	–
स्कॉरलेट रनर बीन	बी.पी., एस.	20–30, 20	5	9	–
गोभी वर्गीय सब्जियाँ					
फूल गोभी, पत्ता गोभी, गांठ गोभी	टी.पी.	20–30, 20	5	10	**प्री चिल ***GA_3
चाइनीज गोभी	टी.पी.	20–30, 20	5	7	**प्री चिल

जड़ वाली सब्जियाँ					
चुकंदर	बी.पी., टी.पी., एस.	20	4	14	पूर्व धुलाई (4–7 घण्टे)
गाजर	टी.पी., बी.पी.	20, 30, 20	7	14	–
मूली	टी.पी., बी.पी.	20, 30, 20	4	10	**प्री चिल (शीतोष्ण प्रकार की मूली में)
शलजम	टी.पी.	20, 30, 20	5	7	***GA_3
अन्य सब्जियाँ					
चौलाई	टी.पी.	20–30	–	8	प्रकाश
प्याज	बी.पी., टी.पी.	20,15	6	12	
पालक	बी.पी., टी.पी.	20–30, 15–25	4	14	पूर्व धुलाई (4–7 घण्टे)

टी.पी.–कागज के ऊपर, बी.पी.– कागज के मध्य (रोल्ड टॉवल व प्लीटेड पेपर), एस.–रेत, जी.ए.– जिब्बरेलिक अम्ल

**प्री–चिलिंग की आवश्यकता शारीरिक सुसुप्तावस्था में होती है। इसके लिए अंकुरण परीक्षण से पूर्व बीज को 5 से 10^0 से. पर 7 दिनों के लिए रखा जाता है।

***प्रारम्भ में अंकुरण माध्यम को 0.2 प्रतिशत KNO_3 या GA_3 से नम किया जाता है तथा बाद में आवश्यकतानुसार पानी से नम किया जाता है।

3. **कागज के ऊपर या टॉप ऑफ पेपर विधि (टी.पी.):** टमाटर, बैंगन, मिर्च और मूली जैसे छोटे आकार के बीज वाली फसलों की बीज अंकुरण जाँच इस विधि से की जाती है। इस विधि में बीज को नम फिल्टर पेपर डिस्क की तीन परतों पर पेट्री–प्लेट (9 से 11 सेन्टी मीटर) में रखा जाता है। पेट्री प्लेट के ढक्कन पर बीज समूह की पहचान के लिए समूह संख्या, बीजों की संख्या, दिनांक इत्यादि इंगित किया जाता है। आवश्यकतानुसार फिल्टर पेपर डिस्क को भिगोया जाते रहना चाहिए जिससे अंकुरण हेतु रखें बीजों को उचित नमी उपलब्ध होती रहे।

4. **रेत विधि (एस)** : इस विधि द्वारा बड़े आकार के बीज (भिण्डी, पेठा, तोरई आदि) का परीक्षण किया जाता है। बीज को रेत से भरे नम गमले अथवा ट्रे में रखा जाता है तथा 1 से 2 सेन्टी मीटर तक रेत से ढ़क दिया जाता है। इस विधि में उपयोग में ली जाने वाली रेत 8 मिलीमीटर के जाली छिद्रों से तो गुजर जाती है, लेकिन 0.05 मिलीमीटर के जाली छिद्रों से नहीं गुजर पाती। धुली हुई सूक्ष्म जीवों रहित रेत का उपयोग मिलावट एवं बाह्य संक्रमण को रोकने हेतु किया जाता है। रेत में आवश्यकता से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। ढेला बनना रेत में अधिक नमी को दर्शाता है। रेत का पी.एच. मान 6 से 7.5 के मध्य होना चाहिए।

5. **मृदा विधिः** बहुत कम बीजों का परीक्षण इस विधि से किया जाता है जैसे धनियाँ, अच्छे से जुती हुई मृदा में उठे हुए मृदा विस्तर पर पेड की छाव में पंक्ति बद्ध रूप से बीज की बुवाई की जाती है। हांलाकि यह विधि अधिकारिक तौर पर अनुशंसित नही है लेकिन कुछ स्थानों पर इसका उपयोग किया जाता है।

6. **प्रक्षेत्र उभरना** : इस विधि से खेत में बीज का वास्तविक प्रदर्शन देखा जाता है। अच्छी तरह से जुते हुए खेत में मेड व नाली बनाकर मेड़ पर बीज बुआई की जाती है। खेत में इस्टतम् नमी होनी चाहिए। बीज के जमाव का परीक्षण निश्चित अवधि के बाद किया जाता है। यह विधि हमेशा प्रयोग में नहीं ली जाती है, केवल प्रयोगशाला परिणामों में संदेह की स्थिति में इसे किया जाता है। हालांकि यह विधि श्रमिक उन्मुख है परन्तु बीज गुणवत्ता का वास्तविक विवरण देती है।

बीज अंकुरण की आवश्यकतायें

संस्तुत माध्यम, तापमान की आवश्यकता और गणना के दिन फसल से फसल भिन्न होते हैं, जो सारिणी–1 में दिये गये है।

अंकुरण मानक

किसी भी फसल के बीज समूह को किसानों को वितरित

30 x 45 सेन्टी मीटर अंकुरण पत्र

फिल्टर पेपर डिस्क

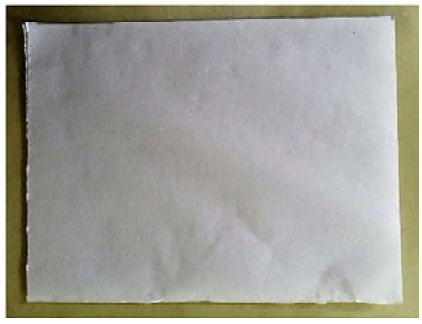

बटर पेपर

'पेपर के बीच' विधि

कागज के ऊपर या टॉप ऑफ पेपर विधि

मृदा विधि

रेत विधि

सारिणी 2: अंकुरण के लिए न्यूनतम मानक (प्रतिशत)

सब्जी फसल	अंकुरण प्रतिशत (न्यूनतम)
पेठा, करेला, लौकी, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, कुम्हड़ा, नेनुआ, तोरई, चप्पन कद्दू, फूट, चिचिंडा, मिर्च, शिमला मिर्च, गाजर, पालक	60
भिण्डी एवं गांठ गोभी	65
चौलाई, बैंगन, ब्रोकली, फूल गोभी, ग्वार, प्याज, मूली, टमाटर, सोयबीन, पत्ता गोभी	70
लोबिया, फराश बीन, सेम, मटर	75

करने से पूर्व न्यूनतम अंकुरण प्रतिशत आवश्यकता पूरा करना जरूरी होता है। कम अंकुरण प्रतिशत वाले बीज समूह का बीज अंकुरण प्रतिशत बढ़ाने के लिए विभिन्न उपचारों या प्रसंस्करण का उपयोग किया जाता है। सारिणी 2 में विभिन्न सब्जी फसलों के लिए अंकुरण प्रतिशत के निर्धारित मानक दिये गये है।

परिणामों का विवरण

परिणामों को सामान्य पौध, असामान्य पौध, मृतबीज, कड़ा/कठोर बीज व ताजा अनांकुरित बीज में विभाजित कर प्रतिशत के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। सामान्य पौध प्रतिशतता को अंकुरण प्रतिशत के रूप में लिखा जाता है। कठोर बीजों को अंकुरण प्रतिशत के साथ अलग से लिखा जाता है। यदि सामान्य पौध में द्वितीयक संक्रमण है तो इसे अंकुरण प्रतिशत में शामिल किया जाता है।

निष्कर्ष

अंकुरण परीक्षण का परिणाम 9 महीनों के लिए वैध होता है। इसके बाद के परीक्षण में यदि बीज न्यूनतम अंकुरण प्रतिशत रखता है तो इसे 6 माह के लिए और बढ़ा सकते हैं। इन अंकुरण परिणामों का उपयोग बुआई उद्देश्य, बीज थैले पर लेबलिंग, बीज प्रमाणीकरण व बीज कानून प्रवर्तन हेतु किया जाता है।

1. चिंतित होता क्यों भला, देख बुढ़ापा रोय, चौलाई पालक भली, यौवन स्थिर होय।
2. लाल टमाटर लीजिए, खीरा सहित सनेह, जूस करेला साथ हो, दूर रहे मधुमेह।
3. प्रातः संध्या पीजिए, खाली पेट सनेह, जामुन–गुठली पीसिये, नहीं रहे मधुमेह।
4. सात पत्र लें नीम के, खाली पेट चबाय, दरू करे मधुमेह को, सब कुछ मन को भाय।
5. सात फूल ले लीजिए, सुन्दर सदाबहार, दूर करे मधुमेह को, जीवन में हो प्यार।
6. तुलसीदल दस लीजिए, उठकर प्रातःकाल, सेहत सुधरे आपकी, तन–मन मालामाल।
7. थोड़ा सा गुड़ लीजिए, दूर रहें सब रोग, अधिक कभी मत खाइए, चाहे मोहनभोग।
8. अजवाइन और हींग लें, लहसुन तेल पकाय, मालिश जोड़ों की करें, दर्द दूर हो जाय।
9. ऐलोवेरा–आँवला, करे खून में वृद्धि, उदर व्याधियाँ दूर हों, जीवन में हो सिद्धि।
10. दस्त अगर आने लगें, चिंतित दीखे माथ, दालचीनी का पाउडर, लें पानी के साथ।
11. मुँह में बदबू हो अगर, दालचीनी मुख डाल, बने सुगन्धित मुख सदा, महक दूर होय तत्काल।

कद्दू वर्गीय सब्जियों में तना स्राव झुलसा (गमी स्टेम ब्लाइट) रोग का समन्वित प्रबंधन

ए.एन. त्रिपाठी, के.के. पाण्डेय, ए.बी. राय, सुधाकर पाण्डेय एवं बी. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

कद्दू वर्गीय सब्जियों के अन्तर्गत लौकी, करेला, खीरा, कुम्हड़ा, छप्पन कद्दू, परवल, पेठा, तोरई एवं ककड़ी आदि आती हैं। इन सब्जियों के अपरिपक्व फलों को सब्जियों के रूप में खाया जाता है। खीरा और ककड़ी को सलाद के रूप में तथा खरबूजा और तरबूज को फल के रूप में खाया जाता है। ये सब्जियाँ विटामिन, खनिज लवण, प्रति आक्सीकारक एवं जैव–सक्रिय रसायनों जैसे बीटा कैरोटिन, ल्यूटिन, कैफिक अम्ल एवं कोलीन आदि का महत्वपूर्ण स्रोत होती हैं। इन सब्जियों का औषधीय महत्व अधिक होने के कारण मानव आहार में सब्जी के रूप में इनको खाना अति आवश्यक है। कद्दू वर्गीय सब्जियों की खेती में अन्य फसलों की तुलना में रोगों एवं कीटों का प्रकोप अधिक होता है। इन सब्जियों को किसान मौसम व बेमौसम में संरक्षित दशाओं में उगाकर वर्ष भर सब्जी उत्पादन कर अपनी आय बढ़ा सकते हैं। कद्दू वर्गीय सब्जियों में कवक जनित रोगों के अन्तर्गत तना स्राव (गमी) झुलसा रोग का प्रकोप बढ़ता जा रहा है और बदलते हुये जलवायुवीय परिदृश्य में यह इन सब्जियों की खेती में बाधक बन गया है। उत्तरी भारत में इस रोग का प्रकोप 55 प्रतिशत तक अभिलेखित किया गया है। सब्जी फसलों में रोगों के प्रकोप के कारण उपज व गुणवत्ता में कमी आ जाने के कारण किसानों को आर्थिक क्षति होती है। बदलती हुई जलवायुवीय दशाओं में यदि किसान समन्वित रोग प्रबंधन पद्धतियों को अपनायें तो कम लागत में इस रोग का प्रबंधन कर अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं।

लक्षण

इस रोग का प्रकोप पौधों के तनों, पत्तियों एवं फलों पर दिखाई देता है। इसके लक्षण जलसिक्त धब्बों के रूप में तनों एवं पत्तियों पर शुरू होते हैं जिसमें बाद में भूरे रंग का स्राव

चित्र : पत्तियों में तना स्राव (गमी) झुलसा रोग का लक्षण

चित्र : तना स्राव (गमी) झुलसा रोग का लक्षण

बूँदों के रूप में दिखाई देने लगता है। रोग का प्रकोप अधिक होन पर पत्तियाँ एवं तने झुलस जाते हैं। तनों में दरारें पड़ जाती हैं जिनमें काले रंग के धब्बों के रूप में कवक के अलैंगिक बीजाणुकाय (पिक्नीडिया) बन जाते हैं। इस रोग का प्रकोप फलों में 'काले सड़न' प्रवस्था के रूप में भी दिखाई देता है।

रोग चक्र

यह बीजोढ़ रोग कवक *फोमा कुकुरबिटेसीएरम* (लैंगिक अवस्था– *डिडायमेल्ला ब्रायोनी*) से उत्पन्न होता है। कवकीय रोगजनक संक्रमित फसल के अवशेषों जैसे तनों, पत्तियों, प्रतानों एवं फलों में मौसम/बेमौसम में जीवित रहता है। इसका प्रकोप ठण्ड वाले मौसम में रात में ओस पड़ने पर अधिक होता है। इस रोग के प्रभावी प्रबंधन हेतु लक्षणों की सही पहचान कर एकीकृत रोग प्रबंधन के उपायों को अपनाना चाहिये।

एकीकृत रोग प्रबंधन

1. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई कर मृदा का सौर्यीकरण करना चाहिये।
2. खेत में जैव नियंत्रक जैसे ट्राइकोडर्मा 5 किग्रा./हे. 100 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद के साथ मिलाकर बुआई के कुछ दिन पहले खेत में मिला देना चाहिए।
3. खेत की सफाई कर फसल अवशेष को जला देना चाहिये।
4. खेत में उचित जल निकास एवं वायुसंचार की व्यवस्था करनी चाहिये।
5. फसल रोपण हेतु प्रमाणित बीज एवं रोग मुक्त बीज का ही प्रयोग करना चाहिये।
6. फसल को लगाने के लिये मचान वाली विधि अपनाना चाहिए।
7. फसल की निराई–गुड़ाई करते समय पौधों को क्षति से बचाना चाहिए।
8. बीज का रोपण से पहले कैप्टान के 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. से बीज उपचारित अवश्य करना चाहिये।
9. कद्दू वर्गीय फसलों का खेत में लगातार नही लगाना चाहिये। फसल चक्रण 2–3 वर्षों के बाद अवश्य करना चाहिये। फसल चक्रण में आलू वर्गीय एवं दलहन वर्गीय सब्जियों के अलावा धान्य फसलों को लगाना चाहिये।

पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी के द्वारा सब्जियों का विषमुक्त किफ़ायती कीट प्रबंधन एवं श्रेष्ठ उत्पादन

ए.पी. सिंह एवं ए.बी. राय

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र हमारे वातावरण को स्वस्थ रखता है। यह हवा, पानी, जलवायु को स्वच्छ करता है, और जलवायु को संचालित करता है। भारतीय आबादी का 50 प्रतिशत आजीविका कृषि पर निर्भर करता है जबकि कृषि के माध्यम से राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में योगदान केवल 14–15 प्रतिशत है। स्पष्ट रूप से यह स्थिर विकास को निर्धारित करता है। भारत में कृषि पर कुल सकल घरेलू उत्पाद का 1 प्रतिशत से भी कम अनुसंधान पर खर्च किया जाता है जो देश के खाद्य सुरक्षा के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष में दुनिया की लगभग 18 प्रतिशत आबादी 2.4 प्रतिशत भूमि संसाधन और 4.0 प्रतिशत जल संसाधन है। यह भी कहा जाता है कि कीट, खर–पतवार और रोग के कारण 25–30 प्रतिशत उत्पादन प्रतिवर्ष नष्ट हो जाता है। सब्जियों में कीटनाशकों की कुल मात्रा का 13–14 प्रतिशत उपयोग किया जाता हैं। देश में किये गये सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि बहुत से किसानों को कीटों की सही पहचान, उनके नुकसान करने के तरीके व समय तथा उपलब्ध प्रबंधन तकनीकों का समुचित ज्ञान नहीं है। परिणामस्वरूप कीटनाशकों का गलत प्रयोग करने से कीट नियंत्रण में अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है, जिससे किसानो को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता है। वर्तमान में, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और चीन के बाद वित्त वर्ष 2017 में कीटनाशकों के उत्पादन में लगभग 4.9 बिलियन डॉलर के अनुमानित बाजार के साथ भारत कीटनाशकों का चौथा सबसे बडा वैश्विक उत्पादक है। आधुनिक कृषि में कीटनाशक के कारण कैंसर, हृदय रोग, बांझपन, सिरदर्द और तंत्रिका तंत्र, मानसिक कमजोरी और जिगर के लिए जोखिम पैदा करने का कारण बन रहा है। अत्यधिक रसायनिक कीटनाशकों एवं अकार्बनिक खादों के उपयोग के कारण पर्यावरणीय समस्याओं, ग्रीन हाउस गैसो के उत्सर्जन् की प्रक्रिया के साथ ही साथ तितलियों तथा मधुमक्खियों की संख्या निरंतर घट रही है। परागणकर्ता उत्पादकता को बढ़ाते हैं तथा फलों एवं बीजों की गुणवत्ता सुधार व विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न वैज्ञानिकों के शोध से यह ज्ञात हुआ हैं कि कृषि रसायनों के अत्यधिक उपयोग से जहाँ एक ओर पौधों तथा सूक्ष्म जीवाणुओं की विशिष्ट विविधता नष्ट हो रही है वहीं दूसरी ओर कीटों के प्राकृतिक दुश्मनों की विविधता में भी कमी आ रही है, साथ ही हानिकारक कीटों की विविधता में भी वृद्धि हो रही है। आधुनिक निऑनिकोटिनोइड कीटनाशकों का व्यापक रूप से कृषि कार्यों में उपयोग किया जाता है, ये एक शक्तिशाली न्यूरोटॉक्सिन हैं जो कीटों को मारने में काफी प्रभावी हैं, लेकिन ये गैर–लक्षित कीटों के लिए भी उतना ही हानिकारक हैं, अर्थात् मधुमक्खी और तितलियों जैसे परागणकर्ताओ पर विपरीत प्रभाव डालता है। एक अध्ययन के द्वारा यह पता चला है, कि ये मधुमक्खियों को अलग तरह से प्रभावित करता है। यूरोपियन यूनियन ने सन 2016 से निऑनिकोटिनोइड कीटनाशकों पर यूरोप मे प्रतिबंध लगा दिया है। बढ़ती आबादी और गुणवत्ता वाले भोजन के लिए बदलती माँग के साथ तालमेल रखते हुए, देश को खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सब्जी उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता बढ़ाने की आवश्यकता होगी। सब्जियाँ कम अंतराल पर तोड़ी एवं काटी जाती हैं, उनमें कीटनाशक के अवशेष उच्च स्तर पर बाकी रह सकते हैं, जो उपभोक्ताओं के लिए बेहद खतरनाक होते हैं। रसायनों पर अत्यधिक निर्भरता से प्रतिरोध, पुनरुत्थान, पर्यावरण प्रदूषण और उपयोगी पशुवर्ग और वनस्पति को नुकसान पहुँचता है। पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी आधुनिक युग में प्रचलित अन्य तरीकों में सर्वोत्कृष्ट, पारिस्थितिकी ज्ञान पर आधारित हे। पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी की सहायता से कीटों की आबादी को बिना किसी अतिरिक्त लागत से 45–50 प्रतिशत की कमी लायी जा सकती है, जिससे कि लंबे समय तक टिकाऊ आधार पर किसानों के कल्याण को सुनिश्चित किया जा सके। सब्जियों में कीट प्रबंधन के लिए पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी एक नवीन विचार (अवधारणा) के रूप में स्थापित हुआ है। इसकी सहायता से सब्जियों का विषमुक्त किफ़ायती कीट प्रबंधन एवं श्रेष्ठ उत्पादन किया जा सकता है, जिसमे कीटनाशकों की जगह पारिस्थितिकी तंत्र द्वारा कीटों पर नियंत्रण किया जाता है, जिसमे कीट रसायनों के न्यूनतम उपयोग पर बल दिया जाता है।

पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी क्या है?

पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी कीट नियंत्रण की एक पारिस्थितिकी विधि हैं, जो सस्य क्रियायों एवं पारिस्थितिकी तांत्रिकीय ज्ञान पर आधारित होती है, जिसमे जाल फसलें, आकर्षक फसलें, विकर्षण फसलें, सीमांत फसलें, अंतराशस्य फसलें, मिश्रित फसलें लगाकर शत्रु कीटों का नियंत्रण किया जाता है, जिसमें शत्रु कीट एवं मित्र कीटों के निवास स्थल में हेर–फेर करके शत्रु कीटों के लिये प्रतिकूल और मित्र कीटों के अनुकूल वातावरण का निर्माण किया जाता है, जिसमें मित्र कीटों के लिये पराग, पुष्प रस आदि भोज्य पदार्थ उपलब्ध कराया जाता है, ताकि हानिकारक कीटों का जैविक विधि से नियत्रण हो सके और जैविक कीट नियंत्रण को प्रोत्साहन मिल सके।

पारिस्थितिकी आभियांत्रिकी का आर्थिक महत्व

जैसा की हम जानते है की यह विधि काफी सस्ती एवं प्राकृतिक रूप से सुरक्षित है। इसके द्वारा वातावरण में किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचायी जाती है। कृषक इस विधि को क्षेत्रीय आधार पर उपलब्ध कीट प्रबंधन की विधियों के साथ अपनाकर कम से कम लागत में अधिक से अधिक लाभ कमा सकते है। साथ ही साथ यह विधि सरकार द्वारा चलाये जा रहे कृषि में सतत् विकास के लक्ष्यो को भी हासिल करने में सहायक होगी।

सारिणी 1: सब्जियों के लिये उपयोगी मित्र कीट

मित्र कीट	आकर्षक / विकर्षण / जाल पौधे
शत्रु कीट (हीरक पृष्ठ कीट)	
पैरासिटोइड्: *कोटेसीया प्लुटेली* (लार्वा), *आपनटैलिस* स्पेसिस (लार्वा), *डायडीग्मा इंसुलर* (लार्वा), *माइक्रॉप्लिटीस प्लुटेली* (लार्वा)	• आकर्षक पौधेः जंगली सरसों (*सिनापीस अर्वेनसिस*), सफेद सरसों (*सिनापिस अल्बा*), जंगली मूली (*रोफनीस रफ़ानिस्टम*), जंगली शलजम (*ब्रैसिका रूपा*), झाड सरसों (*सिसिंब्रिम ऑफीसिनाल*)
शत्रु कीट (सरसों पर्ण सुरंगक कीट)	
परोपजीवीः *ग्रोनोटामा माइकोमोर्फा* (लार्वा और प्यूपा), *डिग्लिपस आइया* (लार्वा), *हॉल्टोपोपैरिका कैरेक्लुस, ओपियस फेजोलि क्रिसियोचार्स पैन्थियस* (लार्वा), *नेओक्रीसोच्चर फॉर्मोसा* (लार्वा)। •शिकारीः लैसविंग्स, लेडीबर्ड बीटल, स्पाइडर, फायर एंट्स	• आकर्षक पौधेः जंगली सरसों (*सिनापीस अर्वेनसिस*), सफेद सरसों (*सिनापिस अल्बा*), जंगली मूली (*रोभानस रफानिस्टम*), जंगली शलजम (*ब्रैसिका रूपा*) • फ्रांसीसी सेम (शिकारी थ्रिप्स)
शत्रु कीट (बिहार रोयेदार सूँडी)	
पैरासिटोइडः *ब्रैकोनिड्स, ट्राइकोग्रामैट्स,* अधिप्रेटरः मकड़ियों, लंबे सींग वाले टिड्डियां, चींटियों, हरे रंग की फीता विंग, नानी मक्खियों/ड्रैगन मक्खियों, ढाल कीटों, गोदाम भृंगियां, जमीन बीटल, शिकारी क्रिकेट • कीट रोगजनकः एनपीवी, बीटी।	• आकर्षक पौधेः जंगली सरसों (*सिनापीस अर्वेनसिस*), सफेद सरसों (*सिनापिस अल्बा*), जंगली मूली (*रोभानस रफानिस्टम*), जंगली शलजम (*ब्रैसिका रापा*) • फ्रांसीसी सेम (शिकारी थ्रिप्स)
शत्रु कीट (सरसों की आरा मक्खी)	
पैरासिटोइडः *पेरिलीसस सिंगुलेटर* (लार्वा) कीटरोगजनकः *बैक्टीरियम सेरेटिया मार्ससेन्स*	• प्यूपा नष्ट करने के लिए ग्रीष्म ऋतु मे जुताई करना। • पौध रोपड़ अवस्था में लार्वा को डूबोकर नष्ट करने के लिए सिंचाई। • एक अशनरोधी (एंटिफीडेंट) प्रयोग करना। इस के असर से कीट फसल को खा नहीं पाते करेला बीज के तेल का उपयोग • आकर्षक पौधेः जंगली सरसों (*सिनापीस अर्वेनसिस*), सफेद सरसों (*सिनापिस अल्बा*), जंगली मूली, (*रोहन राफनिस्ट्रम*), जंगली सैंडीप (*ब्रैसिका रूपा*)

शत्रु कीट– पेन्टेड बग, (चित्रित कीट)	
पैरासिटाइडः *अल्फोरा* स्पेसीस (टेकीनिड फ्लाई) (अंडे)	• अगेती बुवाई, बुवाई के बाद चौथे सप्ताह में फसल की सिंचाई करना। • वैकल्पिक पोषकः खरपतवार, लाम्ब्स क्वार्टर, बैंगनी नटसेज, यूफ़ोरबिया स्पेसीस, बारहमासी सोथिस्टल और फ़ील्ड बाइंडवीड। • फसल–मक्का, सूडान घास, ज्वार, सूरजमुखी, पपीता, आलू, कपास और कुछ दलहनी सब्जियाँ
शत्रु कीट– (सरसों माहू)	
पैरासिटोइडः *एफीलिनस* स्पेसीस, *एफाइटस* स्पेसीस, *डायरेटीएला रैपे* (अर्भक और वयस्क) शिकारी कीटः लेडीबर्ड बीटलस जैसे, *कोकसीनेला सेप्टेमपंक्टाटा, मेनोकिलस सेक्समैकुलाटा, हिप्पोडामिया वेरिएगाटा* और *चाइलोमोन्स क्विसीना* • सीरफिड फ़्लाईः *स्पैरोरोफ़ोरिया* स्पेसीस, *एरिस्टलीस* स्पेसीस, *मेटासिरफिस* स्पेसीस, *जेनथोंग्रामा* स्पेसीस और *सीरफस* स्पेसीस, • लेसेविंगः *क्राइसोपरला जसट्रोवी, सिलेमी, एफ़िडोमिज एफ़िडोलेटस एफीडोमाइजा,* शिकारी पक्षीः *मोटेसिला कॉसपिका* • कीटरोगजनक कवकः *सेफलोस्पोरियम* स्पेसीस, *एंटोमोफॉथोरा* और *वर्टिसिलियम लेकानी*	आकर्षक पौधे : जंगली सरसों (*सिनापिस अर्वेनसिस*), सफेद सरसों *(सिनापिस अल्बा*)

इसके अलावा परभक्षी/पैरासिटोइड्स कीट कई शत्रु कीटों के विनाश का कारण बनते हैं जिसका विवरण निम्नवत् है :

परभक्षी/ पैरासिटोइड्स कीट लेडी बर्ड बीटल	**कीट जिसका विनाश करते है/ आहार करते है।**
लेडी बर्ड बीटल 	इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह एक जगह पर अंडे देने की बजाय अलग–अलग स्थान पर अपने अंडे देती है। सात–आठ दिन में अंडे से सूँडी तैयार हो जाते हैं और 15 से 20 दिन बाद यह प्यूपे में बंद हो जाते हैं। प्यूपे से प्रौढ़ बन जाता है, इसकी सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह भूख से मर सकती है लेकिन कीटों के अलावा कुछ और खाना पसंद नहीं करती। कोक्सीनेल्ला का सूँडी एवं वयस्क अवस्था प्रतिदिन 50 माँहू खा जाते हैं।

शिरफीड फ्लाई 	प्रथम (इन्स्टार) (अंतरानिर्मोकीय अवस्था) प्रतिदिन 15–19 माहूँ खा जाती है, दूसरा (इन्स्टार) (अंतरानिर्मोकीय अवस्था) प्रति लार्वा 45–52 माहूँ खा जाती है तृतीय (इन्स्टार) (अंतरानिर्मोकीय अवस्था) प्रति लार्वा 80–90 माहूँ खा जाती है एवं कुल जीवन चक्र में वे लगभग लगभग 400 माहूँ खा जाता है।
ग्रीन लेस विंग 	प्रत्येक सूँडी 100 माहूँ, 32.9 सफेद मक्खी का प्यूपा और 288 अर्भक (निम्फ) हरा फुदका को खा जाती है।
ग्रीन लेस विंग की सूँडी 	ग्रीन लेस विंग की सूँडी छोटी अवस्था में ही सब्जी फसलों की कोमल पत्तियों को खाकर नुकसान पहुंचाती है।
रिडुविड बग 	रिडुविड बग का अर्भक (निम्फ) का प्रथम एवं दूसरा (इन्स्टार) (अंतरानिर्मोकीय अवस्था) एक छोटी सूँडी प्रति दिन तृतीय और चतुर्थ इंस्टॉर्स 2–3 मध्यम सूँडी /छोटी लार्वा प्रति दिन का उपभोग कर सकते हैं पंचवा (इन्स्टार) (अंतरानिर्मोकीय वयस्क अवस्था) 3–4 बड़े लार्वा प्रति दिन का उपभोग कर सकते हैं, अपने जीवन चक्र मे लगभग 250 से 300 लार्वा का उपभोग कर सकते हैं।
मकड़ी 	मकड़ी 5 बड़ा लार्वा/दिन को खाकर अपना गुजारा करता है।
शिकारी माइट 	शिकारी माइट की प्रौढ़ वयस्क अवस्था प्रतिदिन 20–35/मादा माइट खा जाती है।

ब्रेकोन हेबेटर	ब्रेकोन हेबेटर की अंडे को देने की क्षमता 100–200 अंडे प्रति मादा प्रति दिन है, 1–8 अंडे प्रति सूँडी प्रति दिन उपभोग कर सकती हैं।
***ट्राइकोग्रामा* प्रजाति**	अंडे देने की क्षमता 20–200 अंडे प्रति मादा प्रति दिन है। परपोषी शत्रु कीटों के अंडों में अपना अंडा देकर परपोषी शत्रु कीटों के अंडों को नष्ट करते है।

भूमि के ऊपरी सतह पर पारिस्थितिकी आभियांत्रिकी : मित्र कीट, हानिकारक शत्रु कीटों के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मित्र कीटों का जैव विविधता में प्रमुख योगदान होता है। मित्र कीटों के लिए पर्याप्त मात्रा में पराग व पुष्प रस के रूप में भोजन, आश्रय, वैकल्पिक परपोषी पौधे, जब मुख्य परपोषी पौधे मौजूद नही होते हैं, उस समय मित्र कीट को आश्रय देकर सहारा देती है।

- कीट रक्षकों को समझें और संरक्षित करें।
- कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र की नियमित टिप्पणियों के माध्यम से उनकी भूमिका को समझने के लिए रक्षक कीटों/मित्र कीटों को जानें।
- विशेष रूप से व्यापक सर्वांगनाशी रसायनिक कीटनाशकों के इस्तेमाल से बचें।
- खेत की सीमा पर एवं आंतरिक मेड़ों पर पीले एवं सफेद रंग के फूल वाले पौधों को लगाये।

इस प्रकार फसलों में शिकारी तथा परभक्षी कीटों जैसे क्राइसोपर्ला, शिरफीड लाई, ब्रकोन, लेडी बर्ड बीटल, मकड़ियाँ, ईयरविंग्स, टिड्डिया इत्यादि की संख्या में वृद्धि होगी।

कीटनाशकों के अधिक प्रयोग के कारण गौड़ कीट प्रमुख कीट बनता जा रहा है, इसके अलावा कीटों में प्रतिरोध एवं पुनरुथान विकसित होता हैं, जिसके लिए पारिस्थितिकी आभियांत्रिकी वैकल्पिक नियंत्रण पद्धति है जिसमें कीटो को छः प्रकार से नियंत्रित किया जाता है।

(1) जाल फसलें (2) आकर्षक फसलें (3) विकर्षण फसलें (4) सीमांत फसलें (5) अंतराशस्य फसलें (6) मिश्रित फसलें के द्वारा कीट नियंत्रण में काफी स्तर तक सब्जियों की फसल को सुरक्षित किया जा सकता है।

कीट प्रबंधन में इस्तेमाल होने वाले महत्वपूर्ण जाल फसलों में सामान्य तौर पर पत्ता गोभी या फूल गोभी के हर 25 पंक्तियों के बाद दो पंक्तियाँ सरसों/तिल को लगाया जाता हैं। टमाटर के फल वेधक को आकर्षित करने के लिए मुख्य फसल के हर 14 पंक्तियों के बाद गेंदा का उपयोग आमतौर पर किया जाता है। गेंदा से क्रमशः सूत्रकृमि और टमाटर के फल वेधक का नियन्त्रण होता है।

मित्र कीटों को आकर्षित करने वाली आकर्षक फसलें

फसलें– सरसों, गाजर, सूर्यमुखी, धनिया, रतनजोत, गुलदाउदी, कॉस्मॉस, जीरा, अजवाइन, सौंफ, गेंदा इत्यादि।

विकर्षण फसलें– हानिकारक कीटों को दूर करने वाले पौधे जैसे तुलसी, पुदीना, लहसुन आदि।

सीमांत फसलें – मक्का, ज्वार, बाजरा।

अंतरासस्य फसलें – मक्का, मूंगफली, ग्वार, लोबिया।

मिश्रित फसले – बेबी कॉर्न, मूली, ग्वार आदि।

जाल फसलें

मुख्य फसल को कीट आक्रमण से बचाने के लिए कीट को आकर्षित करने के लिए जाल फसलें लगायी जाती हैं। जाल फसलों को मुख्य फसल से 20–25 दिन पहले लगाना चाहिये, क्योंकि कीटों को फसल तक पहुँचने से या क्षेत्र के कुछ हिस्सों मे घुसने से पहले उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

सारिणी 1: जाल फसलें एवं शत्रु कीट

जाल फसल	मुख्य फसल	शत्रु कीट
सरसों	बंद गोभी	हीरक पृष्ठ कीट, माँहू
गेंदा का फूल	टमाटर	टमाटर का फल वेधक कीट
एरंड का पेड़	टमाटर	तंबाकू की सूँडी
चाईनीज पत्ता गोभी	गोभी	हीरक पृष्ठ कीट

जाल फसल	मुख्य फसल	रोपण की विधि	नियंत्रित कीट
गेंदे का फूल	लहसुन	सीमा फसलों	थ्रिप्स
चीनी पत्ता गोभी, सरसों, मूली	पत्ता गोभी, फूल गोभी	गोभी के हर 20 पंक्ति के बाद एक पंक्ति लगाये।	गोभी की सूँडी तथा माहू
मूली	गोभी परिवार की सभी सब्जी	पंक्ति में सहरोपण करना	फ्ली बीटल, रूट मैगट
एरंड	टमाटर, भिण्डी	सीमा फसल	तंबाकू की सूँडी
टमाटर	पत्ता गोभी, फूल गोभी	अंतर फसल	हीरक पृष्ठ कीट

ट्रैप फसल (जाल फसल)	मुख्य फसल	रोपण की विधि	नियंत्रित कीट
टमाटर	पत्ता गोभी	अंतरासस्य फसलें सीमाओं पर टमाटर को 2 सप्ताह आगे लगाया जाता है	हीरक पृष्ठ कीट
सरसों	पत्ता गोभी	पत्ता गोभी के चारो तरफ पट्टियों मे सरसों को लगाना	हीरकपृष्ठ कीट पत्ता गोभी का पर्ण जालक कीट *क्रोसिडोलमिया बिनोटेलिस*
चायनीज पत्ता गोभी सरसों, मूली	पत्ता गोभी	गोभी के हर 15 पंक्तियों के बाद लगाये	पत्ता गोभी का माहूँ पत्ता गोभी का पर्ण जालक कीट, पत्ता गोभी भृंग

गन्ध पाश (फेरोमोन ट्रैप) को डंडों में बांधकर इस प्रकार खेत में गाड़ दें कि ट्रैप का निचला हिस्सा फसल से ऊपर रहे। मुख्य शस्य क्रियाओं जैसे हरी खाद का प्रयोग, संतुलित उर्वरकों का प्रयोग के साथ–साथ जैविक तनाव प्रबंधन पद्धति जैसे मित्र कीटों का संरक्षण, निरंतर फसल निगरानी, जैविक कीटनाशकों का प्रयोग तथा आवश्यक होने पर रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग पर आधारित होता है। कीटनाशकों का छिड़काव अंतिम विकल्प के रूप मे करना चाहिये। शुरू में नीम आधरित कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिये एवं रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग आर्थिक हानि स्तर के आधार पर करना चाहिये। किसानों के हितों को ध्यान मे रखकर एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) विकसित हो रहा है। कई दशकों तक कीट प्रबंधन का आधार आर्थिक नुकसान पहुँचाने के शुरूआत के स्तर (ईटीएल) को माना जाता था, लेकिन आधुनिक समन्वित कीट प्रबंधन (एफ,ए,ओ, 2002) में कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र विश्लेषण को कीट प्रबंधन का महत्वपूर्ण स्तंभ मानता है, जहाँ किसान क्षेत्रीय पारिस्थितिकी पर्यवेक्षण की बड़ी इकाई के आधार पर कीट नियंत्रण का निर्णय लेते हैं जिसमें पौधा का विकास एवं स्वास्थ्य पर्यावरण द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसके दो प्रमुख स्तंभ हैः

(1) जैविक कारक

(2) अजैविक कारक

अजैविक कारक (जैसे मिट्टी, बारिश, धूप समय, वायु आदि) और जैविक कारक (अर्थात् कीटनाशक, रोग और खरपतवार) शामिल हैं। ये सभी कारक मित्र कीट एवं शत्रु कीटों के संतुलन में एक बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र में जटिल बातों को समझना, कीट प्रबंधन के लिये आवश्यक होता हैं। कीटनाशक प्रबंधन में निर्णय लेने के लिए कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र का संपूर्ण विश्लेषण आवश्यक है। किसान को यह सीखना होगा, कि कैसे फसल का पैदा करना है, क्षेत्र की स्थिति का विश्लेषण करना और फसल प्रबंधन के लिए उचित निर्णय कैसे लेना है? कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र विश्लेषण एक दृष्टिकोण है, जो विस्तारित अधिकारियों और किसानों द्वारा कीट, रक्षकों, मिट्टी की स्थिति, पौधों के स्वास्थ्य और जलवायु कारकों के प्रभाव के संबंध में स्थितियों का विश्लेषण करने और स्वस्थ फसल के बढ़ने के लिए उनके संबंधों से लाभप्रद रूप से कार्यरत हो सकते हैं। किसी भी क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कीट मौजूद हैं। कुछ लाभकारी हैं, और कुछ हानिकारक हैं। आम तौर पर किसानों को इसकी जानकारी नहीं है, शिकारी कीटों (मित्र कीटों) जो हानिकारक कीटों को खाते हैं, कीटों को पालना आसान नही है। कीट संग्रहालय अवधारणा लाभकारी मित्र कीटों और हानिकारक कीटों की पहचान करने के लिए किसानों के कौशल को बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

कीट रक्षक : (डिफेंडर) अनुपात (पीःडी अनुपात)

शत्रु कीटों और मित्र कीटों की पहचान किसानों के लिये उपयोगी है। कीट प्रबंधन में स्वीप नेट, दृष्टि गणना (विजुअल काउटिंग) आदि को अपनाया जा सकता है, शत्रु कीटों और रक्षक कीटों (मित्र कीटों) की संख्या पीः डी अनुपात–अलग फसलों के आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकते हैं।

सारिणी 2: मित्र कीटों का संरक्षण

आकर्षक फसलों की मदद के द्वारा मित्र कीटों का संरक्षण		
आकर्षक फसलें	**मित्र कीटों के नाम**	**नियंत्रित होने वाले हानिकारक कीटों के नाम**
गाजर, गेंदा का फूल	शिरफीड फ्लाई, रेडविड बग, लेडीबर्ड बीटल, *क्राईसोपर्ला* स्पेसीज	एफिड, थ्रिप्स, मेलीबग, स्केल
गेंदा का फूल, गुलदाऊदी	स्पाईडर	कैटरपिलर और माइट्स
कॉसमॉस	शिकारी मेनटिड	एफिड, थ्रिप्स, स्केल
सरसों	*ट्राईकोग्रामा* स्पेसीज, ब्रकोन स्पेसीज, लेडीबर्ड बीटल, *क्राईसोपर्ला* स्पेसीज	
सूर्यमुखी, गाजर, धनिया, मक्का	*क्राईसोपर्ला* स्पेसीज	एफ़िड, थ्रिप्स, मिलीबग, स्केल, कैटरपिलर और माइट्स
लोबिया, सूर्यमुखी, गाजर, मक्का, सॉफ, धनिया, पुदीना	लेडीबर्ड बीटल्स, ब्रकोन स्पेसीस, शिरफीड फ्लाई, *ट्राईकोग्रामा* स्पेसीज	मुलायम त्वचा वाले कीट
चौलाई, क्लोवर	परभक्षी कैरेबिड भृंग	घोंघे, कटवर्म, टेंट कैटरपिलर, गोभी–जड़ मैगट, कोलोराडो आलू बीटल और जिप्सी कीट

विकर्षण फसलें	**नियंत्रित होने वाले हानिकारक कीटों का नाम**
तुलसी	टमाटर का फल वेधक कीट
पुदीना	पत्ता गोभी की तितली
लहसुन	माहूँ

आकर्षक फसलों की मदद से मित्र कीटों का संरक्षणः सभी कीट फसलों को नुकसान नहीं पहुँचाते। इनमें लेडी बर्ड बीटल, ततैया, क्राइसोपा, बग, मेन्टीस, रोबर मक्खी, ड्रैगन मक्खी, मकड़ियाँ आदि है। परभक्षी कीटों में लेडी बर्ड बीटल प्रमुख है। यह माहूँ तेला, स्केल, मिलीबग आदि कीटों के नियंत्रण में प्रमुख योगदान देती है। इनकी वयस्क अवस्था प्रतिदिन 50 माहूँ खा जाती है। मेन्टीस की संख्या हालांकि कम होती है लेकिन ये लेस विंग, माहूँ एवं कोमल शरीर वाले कीटों का भक्षण करते है। यह एक दिन में करीब 160 कीटों को खा जाती है। क्राइसोपा हरे पंखवाला कीट होता है। यह माहूँ, सफेद मक्खियों, चूर्णवत छोटे कीटों और अंडों तथा सुंडियों/माहूँ को खाकर जिंदा रहती है। यदि फसल में दो शत्रु कीट व एक मित्र कीट के अनुपात में उपस्थित हैं तो कीटनाशक का छिड़काव करना जरूरी नहीं है।

2. **भूमि के निचली सतह पर पारिस्थितिकी अभियांत्रिक** – इस विधि में जमीन के अंदर पैदा होने वाले कीट एवं व्याधियों का समुचित प्रबंन्ध किया जाता है, जैसे– ग्रीष्म ऋतु में खेतों की गहरी जुताई करके कीटों को नष्ट कर देना।

बुवाई से पूर्व की अवस्था में मृदा में भली–भाँति सड़ी हुई गोबर की खाद अवश्य मिलायें। संतुलित पोषक तत्वों को मृदा परीक्षण के आधार पर ही उपयोग करें व उनमें कार्बनिक खादों जैसे केंचुए की खाद आदि को सम्मिलित करें।

पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी के अंतर्गत सावधानियाँः शत्रु कीट एवं मित्र कीट की पारिस्थितिकी आवश्यकताओं की जानकारी सबसे महत्वपूर्ण होती है, शत्रु कीट जिसके प्रबंधन की आवश्यकता होती है, उसके परजीवियों व परोपजीवी कीटों की जानकारी तथा उसके मित्र कीटों को आकर्षित करने वाल पौधों को जानकारी होना भी लाभकारी रहता है। यथोचित अवसर पर शत्रु कीट सामान्यत फसलों में पहले आते हैं। तो इसलिए यह जानना जरुरी है, कि कब इनकी आर्थिक नुकसान पहुँचाने की शुरुआत के स्तर पर कौन से मित्र कीट उपस्थित होंगे।

रणनीतियों की पहचान– शत्रु कीटों के आवास में कटौती तथा लाभकारी कीटों के आवास का विकास इत्यादि।

सरल प्रकिया– प्राकृतिक विधियों द्वारा कम से कम प्रत्यक्ष हस्तक्षेप द्वारा कीट नियंत्रण से श्रमिक लागत में कमी तथा उत्पादकता में वृद्धि होगी, साथ ही साथ यह विधि पारिस्थितिकी संतुलन बनाये रखने में भी कारगर सिद्ध होती है।

कीट नियंत्रण में लागत, समय एवं श्रम की बचत से किसानो के आर्थिक लाभ में वृद्धि

मित्र कीटों को प्रोत्साहन देकर हानिकारक कीटों के स्तर में कमी करके फसलों की उत्पादन लागत में कमी की जा सकती है। पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी द्वारा कीट प्रबंधन के लिए खेत का केवल पांच प्रतिशत या इस से भी कम भाग उपयोग में लिया जाता है, इसका अभिप्राय यह है कि प्रति हेक्टेयर के लिए केवल 5000 वर्ग फिट क्षेत्रफल स्थान की जरुरत होती है, एवं कृषि रसायनों को खरीदने में आने वाले लागत को भी कम किया जा सकता हे।

पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी द्वारा पौधों का उत्तम विकास होता है, इसके अंतर्गत सिंचाई की कम अवश्यकता पड़ती है, वही जड़ों का समुचित विकास होने से उत्पादन में भी 15–25% तक की वृद्धि होती है। पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी एक किफायती तकनीकी है जो सब्जियों एवं फलों के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। इससे जहाँ जल की बचत होती है, वहीं 25–30% तक उत्पादन वृद्धि एवं उत्पादन लागत (खर–पतवार, कीट रोग प्रबंधन, इत्यादि) में लगने वाले लागत, समय एवं श्रम की बचत होती है। इसी के साथ साथ कृषक पुष्पीय पौधों पर मधुमक्खी पालन भी करके अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। मधुमक्खियों के द्वारा परागण के चलते उत्पादकता वृद्धि के साथ ही साथ अतिरिक्त आय से किसानों के आर्थिक लाभ में वृद्धि के अलावा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन की प्रक्रिया को कम करने में पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी सहायक होती है। पारिस्थितिकी अभियांत्रिकी जैव विविधता के संरक्षण एवं संवर्धन में भी सहायक है। अतः यह मिट्टी के सूक्ष्म जीवों की संख्यात्मक वृद्धि में लाभदायक है। किसानों को खेती के लिए बाजार पर भी निर्भर नहीं रहना पड़ता। जमीन की उर्वरा शक्ति में निरंतर वृद्धि होती रहती है। खेती में कम लागत की वजह से धीरे–धीरे किसान आर्थिक रूप से मजबूत होकर पूरी तरह से आत्मनिर्भर हो जाता है।

सब्जी फसलों में टॉस्पोवायरस का प्रबंधन

श्वेता कुमारी, के. नागेन्द्रन, एस.के. वर्मा, विकास दुबे एवं ए.बी. राय

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

भारत में सब्जी फसलों से कुल 184 मिलियन टन उत्पादन 9.4 मिलियन हेक्टेयर से होता है। सुनिश्चित आय के कारण सब्जी की खेती का क्षेत्रफल हर साल 2.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। वर्तमान समय में लगातार सब्जी फसलों को उगाने से अनेक कीटों एवं रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है। इन्ही रोगों में टॉस्पोवायरस भी एक रोग है जो भारत में सब्जी की खेती के लिए सबसे गम्भीर खतरा बना हुआ है। सब्जियों की फसलों पर टॉस्पोवायरस के संक्रमण से 2.9 से 100 प्रतिशत तक उपज में हानि हो रही है। इसके अलावा, यह फल की गुणवत्ता को भी कम कर देता है। वैश्विक स्तर पर प्राप्त सूचना के आधार पर 23 प्रकार के टॉस्पोवायरस की प्रजातियाँ में मुख्यतः मूंगफली बड नेक्रोसिस वायरस, तरबूज बड नेक्रोसिस वायरस, कैप्सिकम क्लोरासिस वायरस, आईरिस पीला स्पॉट वायरस और मूंगफली पीला स्पॉट वायरस ज्यादा नुकसान पहुँचा रहे हैं।

लक्षण

टॉस्पोवायरस के लक्षण विभिन्न सब्जी फसलों पर भिन्न–भिन्न होते हैं। कभी कभी विभिन्न प्रकार के लक्षण एक किस्म पर एकल वायरस से जुड़ी होती हैं। संक्रमित पौधों का बौनापन टॉस्पोवायरस का सामान्य लक्षण है। क्लोरोटिक या नेक्रोटिक धब्बे पौधों की पत्तियों और कभी–कभी फलों पर भी देखा जा सकता है। सामान्यतः नेक्रोसिस कुछ किस्मों के पत्ते एवं तने पर पाये जाते हैं और पौधों का अग्रभाग नीचे से सूखने लगते हैं। इसे आमतौर पर बड नेक्रोसिस कहाँ जाता है। कभी–कभी यह संक्रमण पौधों की पत्तियों पर क्लोरोसिस के रूप में भी दिखायी देता है। बीमारी का उग्र संक्रमण पौधों की मौत का कारण बन सकता है।

सोलेनेसी कुल की सब्जियों पर टॉस्पोवायरस के संक्रमण के लक्षणः

टमाटर

केन्द्रीयत हरा रंग के साथ गोल नेक्रोटिक धब्बे पत्तियों, तनों एवं नवीन प्ररोह पर पहले दिखायी पड़ते हैं तत्पश्चात् पूरा पौधा नीचे से सूखने लगता है।

बैंगन

संक्रमित पत्तियों पर गोलाकार नेक्रोटिक/क्लोरोटिक धब्बे भी दिखायी पड़ते हैं।

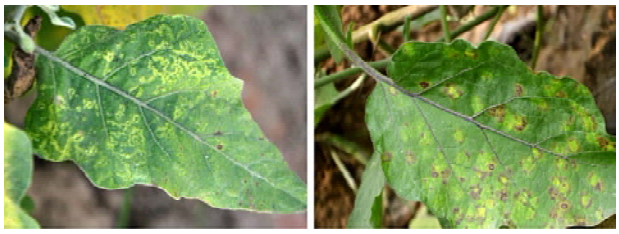

मिर्च

संक्रमित पत्तियों पर केन्द्रीयत धब्बे के साथ क्लोरोटिक घाव एवं हरे रंग के साथ गोलाकार नेक्रोटिक घाव भी दिखायी पड़ते हैं।

कद्दू वर्गीय सब्जियों पर टॉस्पोवायरस के लक्षण

खरबूजा लौकी खीरा

खरबूजा, लौकी एवं खीरा

नेक्रोसिस और ऊपरी शीर्ष का सुखना कुछ सामान्य लक्षण है। पौधों की पत्तियों के स्तर तक संक्रमण का स्वरूप का पीला होना भी देखा गया है।

तरबूज

पत्तियों के अग्रभाग पर नेक्रोसिस धब्बे बनते हैं, फिर उनका सूखना प्रारम्भ हो जाता है एवं कभी–कभी गोलाकार क्लोरोटिक धब्बे भी विकसित होते हैं।

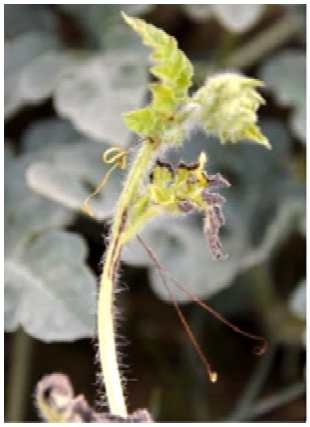

करेला

नेक्रोसिस एवं ऊपर की कली का सूखना, कुछ मामलों में पौधों की पत्तियों में पीलापन भी पाया जाता है।

दलहनी सब्जियों पर टास्पोवायरस के लक्षण

लोबिया

पत्तियों पर केन्द्रीयत धब्बे जैसे क्लोराटिक घाव, नसों पर नेक्रोसिस एवं नवीन संक्रमित पत्तियों का पीलापन होना, नेक्रोसिस का प्रमुख कारण है।

रोग जनक का आण्विक जीव विज्ञान

केवल पौधों को संक्रमित करने वाला टॉस्पोवायरस बुन्यानीरीडी वंश से सम्बन्धित है जो थ्रिप्स द्वारा प्रसारित होता है। सामान्यतः इसके वायरस अर्ध–गोलाकार आकार के होते है। इनका व्यास 80–120 नैनोमीटर तक होता है, एवं मेजबान व्युत्पन्न झिल्सी से घिरे होते है, इन पर दो ग्लाइको प्रोटीन धंसे होते हैं। उनके जीनोम में त्रिपक्षीय नकारात्मक अर्थ आरएनए होता है जो न्यूक्लियों प्रोटीन के अन्दर स्थित होता है। आरएनए के आकार के आधार पर उन्हे बड़ा (एल आरएनए), मध्यम (एम आरएनए) और छोटा (एस आरएनए) के रूप में नामित किया गया है। बड़ा आरएनए (एल आरएनए) आरएनए आश्रित आरएनए पोलीमरेज, मध्यम आरएनए 34 किलो डाल्टन का गैर–संरचनात्मक (एनएसएम) मूवमेन्ट प्रोटीन एवं दो ग्लाइको प्रोटीन जी 1 (78 केडीए) और जी 2 (58 केडीए) इनकोड करता है जबकि एसआरएनए दो प्रोटीन (24 केडीए एवं 29 केडीए) इन्कोड करता है।

संवाहक द्वारा टॉस्पोवायरस का प्रसारण

टॉस्पोवायरस का छितराव/प्रकीर्णन और अस्तित्व मुख्य रूप से थ्रिप्स संवाहक पर निर्भर करता है। सामान्यतः थ्रिप्स प्राकृतिक परिस्थितियों में टॉस्पोवायरस का प्रसारण संक्रमित पौधों से स्वस्थ पौधों तक करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। थ्रिप्स संक्रमित पौधों से भोजन लेते हैं और वायरस को लगातार एक पौधे से दूसरे पौधे तक फैलाते हैं। दूसरे इंस्टार के लार्वा वायरस को अर्जित करता है और वयस्क एक निश्चित अवधि के बाद वायरस को दूसरे पौधे पर फैलाते हैं। सब्जियों को संक्रमित करने वाली थ्रिप्स की प्रजातियाँ नीचे की सारिणी–1 में सूचीबद्ध की गयी है।

प्रबंधन

थ्रिप्स एवं टॉस्पोवायरस की विस्तृत परपोषी सीमा, थ्रिप्स द्वारा तेजी से प्रतिरोध विकास, पौधों में कम प्रतिरोधी स्रोतों की उपलब्धता आदि कारणों से टॉस्पोवायरस का प्रबंधन मुश्किल होता है। इसलिए शस्य क्रियाओं पर

सारिणी 1: टॉस्पोवायरस एवं संवाहक कीट

क्र. सं.	वायरस	संवाहक कीट
1.	मूंगफली बड नेक्रोसिस वायरस	*फ्रैंकलिनिएला आक्सीडनेटेलिस*
2.	मूंगफली पीला स्पॉट वायरस	*स्किर्टोथ्रिप्स डोरसैलिस*
3.	इम्पैसेंस नेक्रोटिक स्पॉट वायरस	*फ्रैंकलिनिएला आक्सीडनेटेलिस*
5.	टमाटर स्पॉटेड विल्ट वायरस	*फ्रैंकलिनिएला विस्पिनोसा*
		फ्रैंकलिनिएला सीफेलीका
		फ्रैंकलिनिएला गेमिना
		फ्रैंकलिनिरूला इन्ओसा
		फ्रैंकलिनिएला आक्सीडनेटेलिस थ्रिप्स टैबैकी
7	आईरिस पीला स्पॉट वायरस	*थ्रिप्स टैबैकी*
8	तरबूज बड नेक्रोसिस वायरस,	*थ्रिप्स पाल्मी*
9	कैप्सिकम क्लोरासिस वायरस,	*सीरेटोट्रिपआइड्स क्लैरेट्रिस*

रासायनिक, जैविक प्रतिरोध सहित उपलब्ध एकीकृत विधियों से प्रबंधन करना लाभकारी पाया गया है।

शस्य क्रियाओं द्वारा प्रबंधन

1. पौधशाला को खर–पतवार से मुक्त एवं मुख्य फसल क्षेत्र से दूर रखना चाहिए। वायरस मुक्त बीज उत्पादन करने के लिए थ्रिप्स की जनसंख्या का समय–समय पर निगरानी की जानी चाहिए।
2. पौधशाला क्षेत्र से वयस्क थ्रिप्स को बाहर करने के लिए < 0.88 मिमी. छिद्र वाले थ्रिप्स अभेद्य जाली का प्रयोग करना चाहिए जो उत्तम स्तर की सुरक्षा प्रदान करने में लाभकारी है।
3. वायरस संक्रमण को कम करने के लिए मुख्य क्षेत्र से कम से कम 25 मीटर की दूरी तक खर–पतवार से मुक्त रखना चाहिए।
4. थ्रिप्स के द्वारा संक्रमित फसलों को अन्य फसलों से मुक्त रखना चाहिए।
5. एक फसल से अगले फसल तक वायरस के प्रसार को कम करने के लिए संवेदनशील फसलों के उपयोग से बचना चाहिए।
6. फसलों की बुआई इस तरह से करनी चाहिए कि फसल के प्रारम्भिक चरण में कम से कम थ्रिप्स का आक्रमण हो।
7. बड नेक्रोसिस बीमारी के कारण उपज में क्षति प्रतिपूर्ति के लिए फसलों के करीब रोपण विधि को अपनाया जा सकता है।
8. एल्यूमीनियम सतह वाले पलवार (मल्च) का उपयोग टॉस्पोवायरस के संक्रमण एवं थ्रिप्स की आबादी को कम करने में लाभदायक है।
9. नीली स्टिकी ट्रैप (8 एनओएस/हे.) का उपयोग थ्रिप्स आबादी को कम करने में लाभकारी होता है।

रसायनिक विधि

डाइमेथोएट (2 मिली./लीटर), इमिडाक्लोप्रिड (0.5–0.75 मिली./लीटर), थियामेथॉक्सम (500 ग्राम/हेक्टेयर), एसीटामिप्रिड (100 ग्राम/हेक्टेयर), फीप्रोनील (1.5 मिली./लीटर) एवं नीम तेल (3 मिली./लीटर) का प्रभावी ढंग से उपयोग खड़ी फसल एवं फलों के बनने तक करने से टॉस्पोवायरस के कारण उपज में होने वाली क्षति को कम करने में किया जा सकता है।

जैविक विधि

- यूलोफिड पैरासिट्वायड जैसे सेरानिसस एवं *थ्रिपोबियस* प्रजाति के कीट थ्रिप्स पर परजीवीकृत होकर उनकी आबादी को कम करते हैं जिससे बीमारी के प्रसारण में कमी आती है।
- हिंसक (प्रीडेटरी) एन्थेकोरिड बग जैसे *ओरियस मैटिसडन्टेक्स एवं ओरिथस टैटिलस,* टमाटर एवं शिमला मिर्च की फसल पर थ्रिप्स संवाहक भोजन प्राप्त करता है जिसके फलस्वरूप थ्रिप्स संवाहक के आबादी में स्वतः कमी आती है।
- कुछ कवक कीड़ों के लिए हानिकारक होते हैं जैसे *मेंटारिजियम एनीसोप्लीया* और *बेउवेरिया वैसियाना* जिनका उपयोग थ्रिप्स की आबादी को नियंत्रण करने में काफी प्रभावी है।

प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग

1. एकीकृत जीन प्रबंधन नीति में प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग महत्वपूर्ण घटक है।
2. प्रतिरोधी जीन जैसे एसडब्लू–5 एवं टीएसडब्लू का प्रजनन कार्यक्रमों में उपयोग करके टॉस्पोवायरस के संक्रमण प्रतिरोधी किस्मों का विकास किया जा सकता है।

टॉस्पोवायरस संक्रमण के अनेकों लक्षण पौधों में दिखाई पड़ते हैं, जो वायरस के स्ट्रेन (उपभेदों) पर, फसलों की अवस्था पर, वायरस के प्रवेश और संवाहक की उपलब्धता पर निर्भर करता है। सब्जी फसलों में वायरस के प्रबंधन के लिए अनेक घटकों की पहचान की गयी है। इन घटकों का एकीकृत तरीके से उपयोग फसल अवधि में अपनाने से टॉस्पोवायरस बीमारी को नियंत्रित किया जा सकता है।

अनमोल वचन

खुशी ही जीवन का अर्थ और उद्देश्य है और मानव अस्तित्व का लक्ष्य और मनोरथ।

जन्म देने वाले माता पिता से अध्यापक कहीं अधिक सम्मान के पात्र हैं, क्योंकि माता पिता तो केवल जन्म देते हैं, लेकिन अध्यापक उन्हें शिक्षित बनाते हैं, माता पिता तो केवल जीवन प्रदान करते हैं, जबकि अध्यापक उनके लिए बेहतर जीवन को सुनिश्चित करते हैं।

मित्र क्या है, एक आत्मा जो दो शरीरों में निवास करती है।

शिक्षा की जड़ें भले ही कड़वी हों, इसके फल मीठे होते हैं।

खुशी हम पर निर्भर करती है।

– अरस्तू

फार्मर फर्स्ट परियोजना द्वारा किसानों की आय दुगनी करने का सार्थक पहल

नीरज सिंह, शुभदीप रॉय, डी. आर. भारद्वाज, श्रीप्रकाश सिंह, यशपाल सिंह एवं बिजेन्द्र सिंह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी–221 305, उत्तर प्रदेश

भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री मा. श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में देश में पहली बार किसानों की आमदनी को दुगुना करने का एक नीतिगत कार्य शुरु किया गया है। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर की योजनाएँ लागू की गयी है, जिसमें फार्मर फर्स्ट योजना प्रमुख है। फार्मर फर्स्ट परियोजना का शुभारम्भ भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के 49 केन्द्रों पर किसानों के उत्पादन और आय के बढ़ाने के लिए किया गया है, जिसमें भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी भी एक केन्द्र है। फार्मर फर्स्ट परियोजना द्वारा छोटे किसानों के खेती सम्बन्धी जटिलता, विविधता और जोखिम को किसानों तथा वैज्ञानिकों के सहयोग से कैसे दूर किया जाये, इसके बारे में बताया गया है। इस कार्यक्रम के अवधारणा में कृषि अनुकूल वातावरण, भण्डार उत्पाद प्रबन्धन, बाजार आपूर्ति श्रृंखला, मूल्य आदि पर विशेष बल दिया गया है। फार्मर फर्स्ट की अवधारणा के अन्तर्गत किसानों की स्थिति में सुधार के लिए किसानों की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया गया है, जिससे उनकी प्राथमिकताओ को समझा जा सकें।

इस कार्यक्रम में किसानों के खेत, नवाचार, संसाधन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर ध्यान दिया गया है, इस कार्यक्रम द्वारा भारतीय किसानों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सबल बनाये जाने के बारे में बताया गया है। किसानों को समृद्ध करने के लिए अनुसंधान प्रणाली को किसानों की मौजूदा कृषि परिवेश का ज्ञान होना चाहिए, जैसे कई बार वैज्ञानिकों का प्रौद्योगिकी ज्ञान किसानों के स्थिति के अनुसार उपयुक्त नहीं हो पाता है, जिसको ध्यान में रखते हुए किसानों के विकास के क्रम में तकनीकी ज्ञान के क्षेत्रीय स्तर पर कुछ बदलाव आवश्यक है, जिसे किसान आसानी से अपना सकें। किसानों को उत्पादन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। इनके उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए पिछले प्रयासों में प्रौद्योगिकी के माध्यम से सफलतायें भी प्राप्त हुई है। किसानों की उपस्थिति एक प्रतिभागी के रूप में सबसे ज्यादा थी, किन्तु किसानों के अल्प ज्ञान के कारण उनकी शोध के कार्यो में भागीदारी नहीं थी। किसानो के पास उपलब्ध ज्ञान भी इतना ज्यादा नहीं था कि वह विभिन्न उत्पादन प्रणालियों के लिए उपयुक्त विकल्प के रूप में स्वीकार की जा सकें, इसी कारण किसानों की भागीदारी प्रौद्योगिकी विकास एवं एकीकरण में नहीं हो पायी। आज के दौर में छोटे किसानों की अधिक संख्या, महिलाओं के नेतृत्व वाली कृषि के बढ़ते प्रस्ताव, प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक लाभ की आवश्यकता तथा बदलते सामाजिक आर्थिक माहौल को सम्बोधित करने के मामले में स्थिति काफी बदली हुई है। इन बातों पर ध्यान देते हुए देश के विकास में किसानों की मजबूत साझेदारी के लिए फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम की आवश्यकता है। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा माननीय प्रधानमंत्री महोदय के किसान की आय दुगुनी करने की दिशा में फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम एक सार्थक प्रयास साबित हो रहा है, जिससे किसान अपने सम्पूर्ण विकास की ओर अग्रसर हो रहा है।

फार्मर फर्स्ट परियोजना एवं इसका उद्देश्य

फार्मर फर्स्ट परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा देश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में चलायी जा रही है। इसका उद्देश्य किसानों को तकनीकी जानकारी प्रदान करना है, कृषि की नई एवं विविध तकनीकों को किसानों तक ले जाना है, जिससे उनकी आजीविका में सुधार हो सकें। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा इस परियोजना को आराजीलाइन ब्लाक के सात गाँवों धानापुर, पनियरा, बाबू राम का पूरा, शक्तियारपुर, उपाध्यायपुर, राजापुर तथा लश्करिया में विगत दो वर्षों से चलाया जा रहा है।

इस परियोजना के तहत किसानों को विभिन्न सब्जियों के उत्पादन आधारित तकनीकों पर प्रशिक्षण दिया जा रहा है और साथ ही विभिन्न प्रकार के कृषि सुविधाएँ भी मुफ्त में दी जा रहे है। किसानों को सब्जी उत्पादन, मुर्गी पालन, मशरूम उत्पादन, पोषण वाटिका, उद्यान से सम्बन्धित फसल, बेमौसमी सब्जियों की नर्सरी के सफल उत्पादन करने हेतु नई तकनीकों से जोड़ा गया है जिससे किसानों की आय में सुधार हो सकें। ग्रामीण युवा विशेषकर महिलाएं इस परियोजना से जुड़ रही

है। किसानों को भारतीय कृषि कौशल विकास के माध्यम से नर्सरी प्रबन्धन एवं बीज उत्पादन में भी प्रशिक्षित किया जा रहा है। यह परियोजना किसानों और वैज्ञानिकों के मध्य सेतु का कार्य कर रही है जिसका मुख्य उद्देश्य निम्नवत् है:

1. किसान– वैज्ञानिक इण्टरफेस को बढ़ाने के लिए कार्यक्रम चलाना।
2. विभिन्न कृषि परिस्थितियों को अपनाने के लिए फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम एक माडल के रूप में कार्य करना।
3. महिला किसानों की आय वृद्धि और पोषण सुरक्षा को बढ़ावा देना है।
4. किसानों के विचारों को अनुसंधान हेतु पहुंचाना है।

किसानों को उत्पादन और प्राकृतिक संसाधन के प्रबन्धन से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करना पड़ता है, लेकिन उन पर नियंत्रण पाने के लिए समाधान अभी तक नहीं प्राप्त हो पाए है। ऐसी स्थिति में फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम शोधकर्ताओं, प्रसारकों तथा किसानों को साथ काम करने तथा विभिन्न माध्यमों से मूल्यांकन करके समाधान प्राप्त करने का एक अवसर प्रदान करता है।

उत्पादन प्रक्रिया के दौरान किसान अक्सर अपनी खेती और प्राकृतिक संसाधन के प्रबन्धन के गतिविधियों को बेहतर बनाने के लिए नए विचार विकसित करते हैं किन्तु यह ज्ञान के अभाव में अधिक सफल नहीं हो पाता है। फार्मर फर्स्ट शोधकर्ताओं, प्रसारकों और किसानों के लिए नए प्रयोगों को डिजाइन और व्यवस्थित करने के लिए एक स्थान बनाता है। फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम को न केवल घरेलू स्तर पर बल्कि गाँव और समाज स्तर पर भी सामाजिक प्रयोग के रूप में लागू किया जा रहा है। फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम के द्वारा किसानों, शोधकर्त्ताओं और प्रसारकों के बीच सीधा सम्बन्ध सम्भव हो सकेगा। यह कार्यक्रम शोधकर्ताओं और प्रसारकों को गाँव की असली जरूरतों को समझने तथा समझाने में सहायता करता है। इस प्रक्रिया में प्राथमिकता शोधकर्ताओं या प्रसारकर्ताओं को नहीं बल्कि किसानों के विकास के लिए दी जाती है।

संस्थान द्वारा फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम के अन्तर्गत किसानों को लाभन्वित करने के लिए चार चरण बनाये गये हैं :

1. बागवानी आधारित सेवायें
2. फसल आधारित सेवायें
3. पशुधन आधारित सेवायें
4. फसल सुरक्षा प्रबंधन आधारित सेवायें

1. बागवानी आधारित सेवायें

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा किसानों की पौधशाला को कीटों, बीमारियों तथा अत्यधिक कीटनाशक के हानिकारक प्रयोगों से बचाने के लिए चयनित गाँवों में अल्प खर्च जालगृह (नेट हाउस) बनवाया गया है। किसानों की आवश्यकता को देखते हुए अब तक 64 जालगृह चयनित गाँवों में बनवाये जा चुके है और जालगृह बनवाने का कार्य अभी चल रहा है।

संस्थान में शोध से प्राप्त उन्नतशील किस्मों का प्रयोग किसान अपनी क्षमता तथा आवश्यकतानुसार कर रहे हैं जैसे– रबी ऋतु में संस्थान द्वारा विकसित मटर (काशी उदय, काशी नंदिनी), पालक (आल ग्रीन), मूली (काशी श्वेता), गाजर (काशी अरुण) तथा फराश बीन (काशी सम्पन्न) आदि को लगाकर किसान विकास की दिशा में आगे आ रहे हैं और अपने परिवार के पोषण सुरक्षा को पूरा कर रहे हैं। इसी प्रकार जायद एवं खरीफ ऋतु में किसानों को गुणवत्ता युक्त बीज वितरित किया जा रहा है जैसे लौकी (काशी गंगा), चिकनी तोरई (काशी दिव्या), कुम्हणा (काशी हरित), लोबिया (काशी कंचन, काशी निधि) तथा भिण्डी (काशी क्रान्ति, काशी प्रगति), मिर्च (काशी अनमोल), टमाटर (काशी अमन) तथा बैंगन (काशी उत्तम) आदि। इन किस्मों का विकास संस्थान में लम्बे समय तक शोध करके किया गया है जिसके कारण इन किस्मों में प्रतिरोधक क्षमता बाजार में उपलब्ध अन्य किस्मों की तुलना में अधिक है।

2. फसल आधारित सेवायें

किसानों की आवश्यकताएँ एक–दूसरे से भिन्न होती हैं, जिसके कारण वह अलग–अलग फसलें उगाते हैं। कुछ किसान अनाज (धान्य) तो कुछ किसान दलहनी फसलें उगाते हैं। इन सब बातों पर ध्यान देते हुए अनुसंधान संस्थान प्रत्येक किसान को उनके फसल पद्धति के आधार पर उन्नतशील किस्मों के बीज वितरित करता है जैसे अनाज के बीज स्वरूप गेहूँ (एच.डी. 2967) तथा धान (एम.–917) के उन्नतशील बीज तथा किसानों को प्रत्येक वर्ष ऋतु के अनुसार दिया जाता है जिसकी पैदावार अन्य किस्मों की तुलना में 15–20 प्रतिशत अधिक है तथा दलहन में मंसूर (एच.यू.एल.–67) तथा अरहर (मालवीय चमत्कार) कई वर्षों से वितरित किया जा रहा है।

फार्मर फर्स्ट परियोजना के तहत निर्मित नेट हाउस

फार्मर फर्स्ट परियोजना में वितरित किये गये सब्जी गृह वाटिका के पैकेट

उप महानिदेशक (उद्यान) द्वारा फार्मर फर्स्ट परियोजना के अन्तर्गत सब्जी बीज प्राप्त करती महिला कृषक

फार्मर फर्स्ट परियोजना के तहत नेनुआ की किस्म 'काशी दिव्या' का सफल प्रदर्शन

फार्मर फर्स्ट परियोजना के तहत भिण्डी की किस्म 'काशी प्रगति' का सफल प्रदर्शन

3. पशुधन आधारित सेवायें

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा चयनित गाँवों में भूमिहीन किसानों की आय में बढ़ोत्तरी करने हेतु मुर्गी पालन के लिए प्रोत्साहित करते हुए चूजा (कैरी देवेन्द्रा) दिया गया है। यह चूजा उन्नतशील प्रजाति का है जिसका विस्तार दूसरे प्रजाति की तुलना में अधिक है। संस्थान के इस प्रयास से भूमिहीन किसान भाई लाभान्वित हो रहे हैं और उनकी पोषण सुरक्षा एवं जीविकोपार्जन की स्थिति पहले से बेहतर हो रही है। इसके अलावा संस्थान द्वारा किसानों को मधुमक्खी पालन एवं जैविक खेती के लिए भी प्रोत्साहित किया जा रहा है।

4. फसल सुरक्षा प्रबंधन आधारित सेवायें

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा चयनित गाँवों में समय–समय पर वैज्ञानिकों का दल किसानों के बीच जाते रहते हैं और उनकी फसलों में रोगों तथा कीटों की समस्या को सुनकर उनका निदान बताते हैं जिससे किसानों की फसल सुरक्षा के प्रबंधन को बढ़ावा मिल रहा है और फार्मर फर्स्ट परियोजना का उद्देश्य सफल होता दिखायी दे रहा है। किसानों को वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर फसल सुरक्षा हेतु प्रशिक्षण भी दिया जाता है जिससे यहाँ

के किसान रोगों और कीटों से अपनी फसल को बचाने में सफल हो पा रहे हैं।

फार्मर फर्स्ट परियोजना किसानों के सम्पूर्ण विकास के लिए किया गया है जिसमें सभी वर्ग के किसानों को महत्व दिया गया है। इस परियोजना के अन्तर्गत किसानों की आवश्यकताओं के अनुसार उन्हे सेवायें दी जा रही है जिससे उनकी प्राथमिकताओं को समझने में शोधकर्ताओं को आसानी होती है। आमतौर पर परियोजनाओं का लाभ बड़े किसान लेते आ रहे थे लेकिन इस परियोजना में महिला, लघु तथा सीमांत किसान बड़ी संख्या में शामिल हैं जिससे सभी वर्ग के किसानों को उनके प्राथमिकता के आधार पर लाभ प्राप्त हो रहा हैं। इस परियोजना के माध्यम से किसानों को पोषण सुरक्षा उपलब्ध कराने का सफल प्रयास किया जा रहा है।

अनमोल वचन

हर किसी पर विश्वास कर लेना खतरनाक है; किसी पर भी विश्वास न करना बहुत खतरनाक है।

यदि शांति पाना चाहते हो तो लोकप्रियता से बचो।

मुझे एक पेड़ काटने के लिए यदि आप छह घंटे देते हैं तो मैं पहले चार घंटे अपनी कुल्हाड़ी की धार बनाने में लगाऊंगा।

चरित्र एक वृक्ष है और मान एक छाया। हम हमेशा छाया की सोचते हैं; लेकिन असलियत तो वृक्ष ही है।

अपने विरोधियों से मित्रता कर लेना क्या विरोधियों को नष्ट करने के समान नहीं है।

– अबाहम्र लिंकन

राजभाषा क्रिया–कलाप

मंत्रालय/विभाग के अधिकारियों द्वारा भा.कृ.अनु.प. के संस्थानों का राजभाषा सम्बन्धी निरीक्षण 19–20 अप्रैल, 2018

कृषि मंत्रालय, भारत सरकार के सहायक निदेशक डा. पूरन सिंह एवं वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक श्री दीपक कुमार खत्री, कृषि शिक्षा एवं शोध विभाग (डेयर), नई दिल्ली द्वारा संस्थान का राजभाषा सम्बन्धी निरीक्षण दिनांक 19 एवं 20 अप्रैल, 2018 को किया गया। संस्थान के निदेशक डा. बिजेन्द्र सिंह की अध्यक्षता में निरीक्षण अधिकारियों, संस्थान के विभागाध्यक्षों, वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों की उपस्थिति में एक बैठक आयोजित की गयी, जिसमें निदेशक ने संस्थान में राजभाषा से सम्बन्धित किये जा रहे कार्यों की संक्षिप्त जानकारी दी। इसके बाद सहायक निदेशक, राजभाषा ने अपने सम्बोधन में सभी विभागाध्यक्षों का अनुसंधान कार्यों में राजभाषा कार्यान्वयन बढ़ाने तथा वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी से सभी प्रशासनिक कार्यों को राजभाषा/द्विभाषी में करने के लिए आग्रह किया। इसके साथ ही उन्होने राजभाषा कार्यान्वयन समिति को राजभाषा कार्यान्वयन के लिए राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम में दिये गये लक्ष्यों को पूर्ण करने का आग्रह किया। इसके बाद राजभाषा कार्यान्वयन का भौतिक निरीक्षण करने हेतु प्रेषण अनुभाग, प्रशासनिक अनुभाग, क्रय अनुभाग एवं वित्त एवं लेखा अनुभाग का अवलोकन किया। प्रेषण अनुभाग की सभी प्रविष्टियां हिन्दी में करने पर संतोष व्यक्त किया। इसके अलावा सेवा पुस्तिका में सभी प्रविष्टियों को हिन्दी में करने के लिए भी निर्देशित किया।

निरीक्षण अधिकारियों के सम्मुख हिन्दी राजभाषा के प्रगति रिपोर्ट का प्रस्तुतिकरण

निरीक्षण अधिकारी एवं हिन्दी राजभाषा समिति के सदस्य

निरीक्षण के दूसरे दिन 20 अप्रैल, 2018 को प्रक्षेत्र भ्रमण के दौरान सभी नाम पट्टिका पर परीक्षण का नाम सामने हिन्दी एवं पीछे अंग्रेजी में लिखे जाने पर संतोष व्यक्त किया। इसके अलावा संस्थान में सभी नाम पट्टिका एवं विभागों का नाम हिन्दी एवं अंग्रेजी में सही क्रम में लिखे जाने की तारीफ की। उसके उपरान्त अतिथि गृह पहुँचकर वहाँ पर संस्थान के गृह अतिथि एवं प्रदर्शन बोर्ड पर अंकित विवरण हिन्दी एवं अंग्रेजी में सही क्रम में पाये जाने पर प्रशंसा की।

राजभाषा कार्यशाला का आयोजन 24 अगस्त, 2018

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय सब्जी अनुसन्धान संस्थान, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) द्वारा दिनांक 24.08.2018 को संस्थान में एक दिवसीय राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला का विषय "राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा" देना था। इस कार्यशाला के मुख्य अतिथि प्रोफेसर ओम प्रकाश सिंह, निदेशक, हिंदी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. संजय सिंह, सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी थे। इस कार्यशाला में संस्थान तथा इससे जुड़े कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं क्षेत्रीय केन्द्र, सरगटिया के 16 प्रतिभागियों ने भाग लिया। अपने उद्घाटन संबोधन में संस्थान के निदेशक एवं अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वन समिति, डॉ. बिजेन्द्र सिंह ने सभी अतिथियों एवं प्रतिभागियों का स्वागत किया। उन्होंने बताया कि संस्थान द्वारा किसानों के लिए विकसित तकनीकों को उन तक प्रभावी रूप से पहुचाने के लिए हिंदी में कृषि साहित्यों का प्रकाशन किया जा रहा है। कार्यशाला को दो सत्रों में विभाजित किया गया था जिसमे प्रथम सत्र "हिंदी लेखन में सामान्य त्रुटियाँ एवं समाधान" एवं द्वितीय सत्र "कार्यालयीय एवं वैज्ञानिक शब्दावलियों का प्रयोग" विषय पर केन्द्रित था। विशिष्ट अतिथि ने अपने व्याख्यान में हिंदी भाषा की कृषि विज्ञान में महत्ता को बताया। मुख्य अतिथि ने वेदों में सब्जी कृषि के ज्ञान को बताते हुए हिंदी में संस्थान द्वारा किसानों हेतु उपयोगी साहित्य लेखन की सराहना की। डॉ. सुरेश कुमार वर्मा ने व्याख्यान में प्रसाशनिक कार्यों में हिंदी की शब्दावलियों के प्रयोग को बढ़ावा देने का अनुरोध किया। डॉ. ए. एन. त्रिपाठी ने वैज्ञानिक लेखन में हिंदी की शब्दावलियों के प्रयोग और संभावनाओं पर व्याख्यान दिया। इस कार्यक्रम में निदेशक महोदय ने सभी प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र प्रदान किया। कार्यक्रम संचालन प्रधान वैज्ञानिक डॉ. डी. आर. भारद्वाज तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ. सुरेश कुमार वर्मा ने किया। इस कार्यशाला के आयोजन में संस्थान के हिंदी समिति के सदस्यों डॉ. सुधाकर पांडे, डॉ. इन्दीवर प्रसाद, डॉ. वनिता एवं डॉ. रामेश्वर सिंह ने भरपूर योगदान दिया।

मुख्य अतिथि का सम्बोधन

विशिष्ट अतिथि का सम्बोधन

प्रतिभागियों के साथ फोटो

संस्थान के निदेशक द्वारा प्रमाण पत्र वितरण

राजभाषा हिन्दी

ए.एन. त्रिपाठी

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी– 221 305, उत्तर प्रदेश

हिन्दी भारत की अस्मिता एवं भारतीयता की पहचान है। यह देश के जनमानस को एकता के सूत्र में बाँधने का काम करती रही है। हमारे देश के कर्णधारों एवं संविधान निर्माताओं ने 14 सितम्बर, 1949 को इसे 'संघ की राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया। इसके साथ ही संघ सरकार को यह दायित्व सौंपा गया कि वह अन्य भाषाओं के साथ हिन्दी भाषा का विकास करें जिससे वह भारतीय संस्कृति के सभी तत्वों के अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। कोई भी राष्ट्र स्वभाषा के बिना अपनी राष्ट्रीयता, व्यक्तिव एवं चिंतन को मौलिक रूप से अभिव्यक्त नही कर सकता। स्वभाषा की महत्ता को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति का मूल। बिन निज भाषा के, मिटै ने हिय का सूल,'' के रूप में व्यक्त किया है। एक राष्ट्रप्रेमी को राष्ट्रभाषा प्रेमी भी होना चाहिये। हमारे देश में मातृभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने हेतु गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर जी ने अपना समर्थन दिया था और शांति निकेतन में 'हिन्दी भवन' की स्थापना की थी। महान क्रांतिकारी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने अपने मंत्र 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हे आजादी दूँगा' को हिन्दी में देकर पूरे देश को स्वतंत्रता की आँधी से ओत–प्रोत कर दिया था। तभी तो कहा गया है ''जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नही। वह हृदय नहीं पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नही'' हिन्दी ने देश की परतंत्रता से लेकर स्वतंत्रता तक, स्वतंत्रता से लेकर संविधान निर्माण की प्रक्रिया तक और पुरातन युग से लेकर स्पर्श युग तक की गौरवशाली यात्रा को तय करते हुये हमारी महिमामयी सामासिकता को अक्षुण्ण बनाये रखने में महती भूमिका निभाई है।

हेमलता महिश्वर के शब्दों जब तक मनुष्य है तो संवेदना है, जब तक संवेदना है तो संवाद है। जब तक संवाद है तो जिज्ञासा है, जिज्ञासा है तो ज्ञान है, ज्ञान है तो भाषा का अस्तित्व बना ही रहेगा। दूसरा विश्व हिन्दू सम्मेलन मारीशस की राजधानी पोर्ट लुईस में हुआ था। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी भाषी राष्ट्रों के प्रतिनिधि अपना संदेश हिन्दी में व्यक्त करें। यह कार्य इस सदी के राष्ट्रनायक एवं पूर्व प्रधानमंत्री भारत रत्न स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी जी ने किया था। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (भा.कृ.अनु.प.), नई दिल्ली जो देश में शिक्षा, शोध एवं प्रसार कार्यों के लिये मरूधरती से लेकर पूर्वोत्तर तक कृत संकल्पित है, के 'गान' को राजभाषा हिन्दी में इस प्रकार रचा गया है:

जय–जय कृषि परिषद् भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,

कृषि धन, पशुधन, मानव जीवन दुग्ध,
मत्स्य फल यंत्र सुवर्धन,

वैज्ञानिक विधि नवतकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,

शस्य श्यामला छवि भारत की,
जय–जय कृषि परिषद् भारत की

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरूधरती से पूर्वोत्तर तक,

हर पथ पर है मित्र वृशद की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक

आशा स्वावलंबित भारत की,
जय–जय कृषि परिषद् भारत की।

वर्तमान समय में हिन्दी कम्प्यूटर से दूर रहकर जनमानस से जुड़ी नही रह सकती। इस उद्देश्य से भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने हिन्दी में अनुवाद करने के लिये 'सी–डैक' पुणे की सहायता से 'कण्ठस्थ' नामक अनुवादक साफ्टवेयर भी तैयार किया है। राजभाषा विभाग ने 'हिन्दी प्रौद्योगिकी संसाधन केन्द्र' की स्थापना की है जिसका मुख्य उद्देश्य कम्प्यूटर पर हिन्दी में द्विभाषीकरण के कार्य को सरल करना है। सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में परिवर्तन की चाल हमारी कल्पना शक्ति से भी तेज है। कागज–कलम रहित युग में हिन्दी को और अधिक आधुनिक बनाने की आवश्यकता है। शिक्षण के क्षेत्र में राजभाषा हिन्दी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भाषा के बिना अच्छे शिक्षण की कल्पना सम्भव नही है क्योंकि भाषा अच्छे लेखन की सम्पदा होती है। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो भाषा मानव की संस्कृति है। हमारा देश बहुभाषी है परन्तु राजभाषा हिन्दी जन संप्रेषण के लिये सबसे अधिक प्रभावी माध्यम है। भाषा का प्रयोग करने पर वह चलायमान बनी रहती है। भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि अभी दुनिया में 6000 भाषायें बोली जा रही है, परन्तु आने वाले समय में 90 प्रतिशत भाषायें लुप्त हो जायेंगी। भाषा तो बोलचाल के माध्यम से विकसित होती है। हिन्दी की शैली, सहज एवं स्वीकार्य है जिसे कोई मानक या बंधक रोक नही

सकता है। यही हिन्दी को 'वेब–मीडिया' के अनुकूल बनाती है। बेल्जियम में जन्मे पेशे से इंजीनियर पद्म श्री फादर कामिल बुल्के के शब्दों में 'ज्ञान–विज्ञान के किसी भी विषय की सक्षम अभिव्यक्ति हिन्दी में सर्वथा सम्भव है और अंग्रेजी पर आश्रित रहने की धारणा एकदम निरर्थक है'।

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन मौलिक ही नही बल्कि, सहज व सरल है। दुनिया की आन लाइन ट्रेडिंग करने वाली सबसे बड़ी कम्पनी 'अमेजन डाट काम' अपने उत्पादों के प्रचार हेतु हिन्दी का सहारा ले रही है क्योंकि यह भाषा ज्यादा जनसंचारी है।

आँखों में वैभव के सपने,
पग में तूफानों की गति हो,

राष्ट्रप्रेम का ज्वार न रूकता,
आये जिस जिस की हिम्मत हो।

उन्होंने कहा था कि हमारी अभिव्यक्ति उस भाषा में होनी चाहिये जो राष्ट्र के जनमानस द्वारा स्वीकार्य हो क्योंकि राष्ट्र के निर्माण में भाषा एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है। श्री वाजपेयी द्वारा रचित ये पंक्तियाँ हिन्दी की उपादेयता को इस प्रकार चरितार्थ करती हैं:

गुँजी हिन्दी विश्व में स्वप्न हुआ साकार,
राष्ट्र संघ के मंच से हिन्दी की जयकार,

हिन्द, हिन्दी में बोला, देख स्वभाषा प्रेम,
विश्व अचरज से डोला, देख हिन्द का प्रेम,

मेम की माया टूटी, स्नेह की सरिता फूटी,
भारत माता धन्य धन्य।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में ई–टूल्स जैसे यूनिकोड, हिन्दी की– बोर्ड, लीला स्वयं हिन्दी शिक्षण साफ्टवेयर, श्रुतलेखन, ई–महाशब्दकोश आदि का प्रयोग राजभाषा के कार्यान्वयन व प्रचार–प्रसार में अवश्य करना चाहिये। हमारे संस्थान के दैनिक कार्यों को हिन्दी में पूरा किया जा रहा है। संघ की राजभाषा नीति के समग्र क्रियान्वयन के लिये हमें हिन्दी में और अधिक कार्य करना चाहिये जिससे हम अपने संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन कर सकें। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद हिन्दी में प्रचार प्रसार हेतु कई महत्वपूर्ण गतिविधियों एवं कार्यक्रमों को चला रहा है। परिषद् के सभी संस्थानों द्वारा कृषि शोध के वार्षिक प्रतिवेदन को द्विभाषी प्रकाशन किया जा रहा है। परिषद् के सभी संस्थानों ने अपने वेबसाइट को द्विभाषी बना दिया है जिससे सभी हितग्राहियों को आसानी से आवश्यक जानकारी मिल सके। कृषि, वानिकी, मत्स्यकी, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन हेतु एवं अन्नदाता किसानों की समस्या के समाधान हेतु विस्तार साहित्यों का प्रकाशन भी हिन्दी में कर रहा है। हिन्दी भाषा में कृषि वानिकी से संबन्धित आलेखों के प्रकाशन हेतु परिषद्, नई दिल्ली द्वारा खेती (मासिक हिन्दी) एवं फल–फूल (द्विमासिक हिन्दी) नामक पत्रिकाओं एवं हिन्दी में कृषि शोध नामक जर्नल का अनवरत प्रकाशन किया जा रहा है। हिन्दी भाषा में लिखे गये कृषि शोध साहित्यों एवं पुस्तकों को पुरस्कृत करने के लिये कई प्रकार की योजनाएं चालायी जा रही हैं जिससे कृषि से संबंधित विषय वस्तु को वैज्ञानिकों द्वारा हिन्दी में प्रकाशित करने एवं सर्वश्रेष्ठ प्रकाशनों को पुरस्कृत कर लेखकों का मनोबल बढ़ाया जा सके। इस परिप्रेक्ष्य में हमारे संस्थान में सरकारी कामकाज में राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रति जागरूकता तथा इसके उत्तरोत्तर प्रयोग में गति लाने और इसे अधिक जनसंचारी बनाने हेतु 'हिन्दी चेतना मास' का आयोजन किया जाता है। हमारे संस्थान में इस दिशा में अनेक पहल की गयी है जैसे 'सब्जी किरण' का प्रतिवर्ष प्रकाशन किया जा रहा है। संस्थान की वेबसाइट को हिन्दी में भी बना दिया गया है। 'सब्जी ज्ञान एप' को भी बनाया है जिससे किसान कृषि से जुड़ी समस्याओं को बोलकर या लिखकर प्राप्त कर सके। 'सब्जी सूचना पत्रक' (वेजीटेबल न्यूज लेटर) को द्विभाषी (हिन्दी एवं अंग्रेजी) में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। ग्यारहवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में यह उद्घोष किया गया कि हिन्दी भाषा का वर्चस्व साहित्य व विज्ञान जगत में बढ़ता जा रहा है। यह जनमानस से प्रभावी संवाद की भाषा है। हिन्दी के सशक्तीकरण हेतु प्रौद्योगिकीय पहलुओं का प्रयोग करना नितान्त आवश्यक है।

हिन्दी राष्ट्रभाषा या संघ की राजभाषा है लेकिन राजसत्ता की भाषा नही है। यह उदार भाषा है। यह जोड़ने की भाषा है। सभ्य संसार के किसी भी जनसमुदाय के शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नही है। तकनीकी को जरूरतमंद तक प्रभावशाली रूप से पहुँचाने के लिये राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाना अति आवश्यक है। हिन्दी भाषा की विज्ञान में महत्ता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है:

सीमा पर जय जवान,
खेतों पर विजित युवा किसान लिखो

धरती से लेकर अंबर तक,
हिन्दी में जय विज्ञान लिखो

साँसों की धड़कन–धड़कन पर,
अपना हिन्दुस्तान लिखो।.....

हमें राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को उच्चतम स्थान दिलाने के लिये कटिबद्ध होना होगा जिसकी वह अधिकारिणी है। हमें न केवल भारत अपितु पूरे विश्व में हिन्दी भाषा का प्रकाश फैलाने के लिये अपना योगदान देना होगा।

हिंदी चेतना मास 2018

14 सितम्बर से 12 अक्टूबर, 2018

राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार एवं कार्यालयीय कार्यों में हिन्दी को अपनाने हेतु गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी में 14 सितम्बर से 12 अक्टूबर, 2018 तक हिन्दी चेतना मास का आयोजन किया गया। हिन्दी चेतना मास का शुभारम्भ 14 सितम्बर, 2018 (हिन्दी दिवस) को मुख्य अतिथि प्रो. (श्रीमती) रामकली सर्राफ, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के उद्‌बोधन से हुआ। मुख्य अतिथि ने कहा कि हिन्दी दूब जैसी है जो सर्वाधिक जनमानस को समेटे हुये है। यह ज्ञान–विज्ञान की भाषा ही नहीं अपितु भारतीयता एवं भारतीय संस्कृति की भी प्रतीक है। इसकी जड़ें जनता के भीतर है। हमारा संवैधानिक दायित्व है कि अनुवाद की गाथा को समाप्त कर सीधे हिन्दी में लेखन, पठन–पाठन एवं संवाद की सहायता से इसे अधिक जनसंचारी बनाने हेतु दृढ़संकल्पित होना चाहिये। इस अवसर पर संस्थान के कार्यवाहक निदेशक डॉ. सुरेश कुमार वर्मा ने स्वागत सम्बोधन में संस्थान में हिन्दी मे हो रहे कार्यों की समीक्षा एवं हिन्दी चेतना मास की विस्तृत रूप–रेखा प्रस्तुत किया। हिन्दी चेतना मास के दौरान कुल सात विविध प्रतियोगिताओं जैसे निबन्ध प्रतियोगिता, वाद–विवाद, टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, प्रश्नोत्तरी, कंप्यूटर पर यूनिकोड में हिन्दी टंकण, आशुभाषण एवं हिंदी काव्य पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। संस्थान के सभी कर्मचारियों ने बढ़ चढ़ कर इन प्रतियोगिताओं में भाग लिया। प्रतियोगिताओ के कार्यान्वयन को मूर्त रूप देने में डॉ. एस.के. वर्मा, डॉ. डी.आर. भारद्वाज, डॉ सुधाकर पांडे, डॉ. एस.एम. वनिता, डॉ. ए.एन. त्रिपाठी, डॉ इंदीवर प्रसाद और डॉ रामेश्वर सिंह ने सहयोग दिया। प्रतियोगिताओं के मूल्यांकन में निर्णायक

संस्थान में हिन्दी चेतना मास का उद्‌घाटन

मुख्य अतिथि द्वारा दीप प्रज्जवलन

मुख्य अतिथि द्वारा सम्बोधन

डॉ. पी.एम. सिंह द्वारा धन्यवाद ज्ञापन

मण्डल डॉ जगदीश सिंह, डॉ ए.बी. राय, डॉ पी.एम. सिंह, डॉ के.के. पाण्डेय, डॉ आर.बी. यादव, डॉ आर.एन. प्रसाद एवं डॉ डी.के. सिंह ने अपना अमूल्य योगदान दिया।

हिन्दी चेतना मास के दौरान आयोजित सभी प्रतियोगिताओं का विवरण निम्नलिखित है:

1. **हिन्दी प्रश्नोत्तरी:** इस प्रतियोगिता का आयोजन दिनांक 14 सितम्बर, 2018 को किया गया जिसमें कुल पांच टीमों फसल उन्नयन, फसल सुधार, फसल सुरक्षा, अखिल भारतीय समन्वित अनुसन्धान परियोजना (सब्जी फसल) एवं प्रशासन के 15 सदस्यों ने भाग लिया। प्रत्येक टीम में 3 सदस्य नामित थे। प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता के अन्तर्गत मंच से विविध विषयी प्रश्नों जैसे– हिन्दी साहित्य जगत, भारतीय संस्कृति तथा दर्शन, सामान्य ज्ञान, ज्ञान–विज्ञान, अद्यतन संचेतना एवम् मनोरंजन से सम्बन्धित प्रश्न सम्मिलित किए गये। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः अखिल भारतीय समन्वित अनुसन्धान परियोजना (डॉ. अजीत प्रताप सिंह, डॉ. धनंजय उपाध्याय एवं श्री कमलेश कुमार पाठक), फसल सुधार (डॉ. हरे कृष्णा, डॉ. अनंत बहादुर एवं डॉ. (श्रीमती) स्वाति शर्मा) एवं फसल उन्नयन (डॉ. राकेश कुमार दुबे, डॉ. विनोद कुमार सिंह एवं श्री चन्द्र भूषण) की टीमों ने प्राप्त किये। इसके अलावा दर्शक दीर्घा से प्रश्नों के उत्तर देने वाले दर्शकों को भी पुरस्कृत किया गया। इस कार्यक्रम का संचालन डॉ. डी.आर. भारद्वाज एवं डॉ. रामेश्वर सिंह द्वारा किया गया।

प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन

प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का दृश्य

2. **हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन प्रतियोगिता:** प्रशासनिक कार्यों एवं पत्राचारों में टिप्पण एवं प्रारूप लेखन की विशेष महत्ता है। इस प्रतियोगिता का आयोजन दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को किया गया जिसमें कुल 8 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः श्री सुशील कुमार गुप्ता, श्री रोशन लाल एवं श्री गोपी नाथ ने प्राप्त किया। इसके अलावा डॉ विद्यासागर, श्री प्रकाश मोदनवाल, श्री अजयन पी. नायर एवं श्री रितेश मेहरोत्रा को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुए। इस कार्यक्रम का संचालन डॉ इन्दीवर प्रसाद द्वारा किया गया।

हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन का आयोजन

हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन का आयोजन

3. **हिन्दी निबंध प्रतियोगिता:** इस प्रतियोगिता का आयोजन दिनांक 19 सितम्बर, 2018 को किया गया तथा निबंध का शीर्षक "कृषि में महिलाओं का योगदान" था। कुल 17 प्रतिभागियों ने निबंध प्रतियोगिता में भाग लिया जिसमें प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः डॉ. नकुल गुप्ता, मो. अरशद नदीम एवं सुश्री अंकिता त्रिपाठी ने प्राप्त किया। इसके अलावा श्री कमलेश

यादव, डॉ राघवेन्द्र सिंह, श्री संजय तथा डॉ रमेश कुमार सिंह को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुए। इस कार्यक्रम का संचालन डॉ सुधाकर पाण्डेय द्वारा किया गया।

निबंध प्रतियोगिता का आयोजन

निबंध प्रतियोगिता का दृश्य

4. **कंप्यूटर पर यूनिकोड में हिन्दी टाइपिंग प्रतियोगिताः** हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग में सहायक इस प्रतियोगिता का आयोजन दिनांक 26 सितम्बर, 2018 को हुआ जिसका संचालन डॉ. ए.एन. त्रिपाठी ने किया। इस प्रतियोगिता में कुल 8 प्रतिभागियों ने भाग लिया। हिन्दी टंकण प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः श्री अजयन पी., श्री संजय एवं श्री विजय कुमार वाल्मीकि ने प्राप्त किया। इसके अलावा श्री प्रकाश मोदनवाल, श्री वीरेन्द्र नाथ विश्वकर्मा, श्री शमशेर कुमार वर्मा तथा श्री सौरभ सिंह को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुए।

5. **वाद–विवाद प्रतियोगिताः** इस प्रतियोगिता का आयोजन दिनांक 27 सितम्बर, 2018 को हुआ जिसका संचालन डॉ. रामेश्वर सिंह ने किया। वाद–विवाद प्रतियोगिता का शीर्षक "कृषि में युवाओं का भविष्य उज्जवल है–पक्ष/विपक्ष" था तथा इस प्रतियोगिता में कुल 8 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः डॉ. राकेश कुमार दुबे, श्री राहुल रौशन एवं डॉ. हरे कृष्णा ने प्राप्त किया। इसके अलावा डॉ. अजीत प्रताप सिंह, डॉ. नकुल गुप्ता, डॉ. रमेश कुमार सिंह तथा श्री कमलेश यादव को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुए।

वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन

वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन

6. **आशुभाषण प्रतियोगिताः** हिन्दी चेतना मास के दौरान आशुभाषण प्रतियोगिता का आयोजन 27 सितम्बर, 2018 को हुआ जिसका संचालन डॉ वनिता एवं डॉ इन्दीवर प्रसाद ने किया। इस प्रतियोगिता में कुल 7 प्रतियोगियों ने भाग लिया जिन्हें तत्काल विभिन्न सम–सामयिक विषयों पर शीर्षक प्रदान कर बोलने को कहा गया। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः डॉ अनंत बहादुर, डॉ नीरज सिंह एवं डॉ राघवेन्द्र सिंह ने प्राप्त किया। इसके अलावा श्री राहुल रौशन, श्री कमलेश कुमार पाठक, सुश्री मधु कुमारी तथा मो. अरशद नदीम को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुए।

7. **हिन्दी काव्य पाठ प्रतियोगिताः** सुर एवं लय से सुसज्जित इस प्रतियोगिता का आयोजन 10 अक्टूबर, 2018 को हुआ जिसका संचालन डॉ एस.के. वर्मा ने किया। इस प्रतियोगिता में कुल 8 प्रतियोगियों ने काव्य पाठ किया जिसमें कालजयी कवि भारतेंदु हरिश्चन्द्र की रचनाओं

समापन समारोह में मुख्य अतिथि का स्वागत

के साथ साथ स्वरचित कविताओं का पाठ किया गया। इस प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार क्रमशः श्री अरुण कुमार मिश्रा, सुश्री मधु कुमारी एवं श्री चन्द्र भूषण ने प्राप्त किया। इसके अलावा डॉ स्वाति शर्मा, श्री उदय नारायण तिवारी, श्री विकास दुबे तथा डॉ मनीष पाण्डेय को सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुए।

हिन्दी चेतना मास का समापन समारोह

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी में हिन्दी चेतना मास 2018 का समापन समारोह दिनांक 12 अक्टूबर, 2018 को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं के नामों की घोषणा की गई एवं विजेता टीम को पुरस्कार प्रदान किये गये। इस समारोह की अध्यक्षता संस्थान के कार्यकारी निदेशक डा. जगदीश सिंह ने की। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. अनुराग कुमार, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी थे। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में संस्थान में हिन्दी में हो रहे कार्यों की प्रशंसा की। मुख्य अतिथि ने संस्थान में इस कार्यक्रम से संबन्धित विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं के प्रचार–प्रसार की महत्ता को बताया। उन्होने हिन्दी की विज्ञान जगत में उपादेयता बताते हुये हिन्दी में कार्य करने की संकल्पना के प्रति कटिबद्धता का अनुरोध किया। इस अवसर पर संस्थान के कार्यवाहक

मुख्य अतिथि द्वारा प्रथम विजेता दल को पुरस्कार

मुख्य अतिथि द्वारा द्वितीय विजेता दल को पुरस्कार

निदेशक डॉ. जगदीश सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, फसल उत्पादन विभाग ने संस्थान में हिन्दी में हो रहे कार्यों की समीक्षा की। डॉ. सिंह ने हिन्दी भाषा की सरलता, सहजता एवं विज्ञान में इसके और अधिक प्रयोग के लिये सूचना प्रौद्योगिकी को अपनाने की सलाह देते हुये कहा कि संस्थान में संवैधानिक कार्यों के निर्वहन हेतु हिन्दी में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है जिससे हमारा संस्थान अन्य लोगों के लिये आदर्श बन सके। डा. सिंह ने कहा कि जिस तरह हम तिरंगे को सम्मान देते हैं उसी तरह हमें हमारी राजभाषा को भी सम्मान देना चाहिये। हम खुद जब तक इस बात को स्वीकार नहीं करते तब तक हम दूसरों को इस बात पर भरोसा नही दिला सकते। डॉ. सुरेश कुमार वर्मा ने राजभाषा प्रकोष्ठ की वार्षिक गतिविधियों की समीक्षा के साथ–साथ हिन्दी चेतना मास–2018 के वृहद् कार्यक्रमों को विस्तृत रूप से बताया। उन्होंने कहा कि हिन्दी में आयोजित की जाने वाली प्रतियोगिताओं में संस्थान के सभी वर्गों के कर्मचारीगण बड़े उत्साह से भाग लिया एवं हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा भी प्राप्त किया। भविष्य में हिन्दी में कार्य करने की गति में तेजी लाने पर जोर दिया। उन्होंने बताया कि संस्थान द्वारा किसानों के लिए विकसित तकनीकों को उन तक प्रभावी रूप से पहुँचाने के लिए हिन्दी में कृषि साहित्यों का प्रकाशन किया जा रहा है। विजयी प्रतिभागियों की पुरस्कार राशि उनके बैंक खातों में देने की अनुशंसा की गई। यदि हम लोग दैनिक जीवन में हिन्दी में हस्ताक्षर या मौलिक लेखन करें और अनुवाद की अवधारण को नकार दें तो हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में बढ़ावा मिलेगा। समारोह का समापन इस संकल्प के साथ किया गया कि संस्थान में दिन–प्रतिदिन रोजमर्रा के सरकारी कार्यों में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करने के सार्थक प्रयास करेगें। इस कार्यक्रम का संचालन डॉ. आत्मानन्द त्रिपाठी एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. डी.आर. भारद्वाज ने किया।

मुख्य अतिथि द्वारा तृतीय विजेता दल को पुरस्कार

हिन्दी चेतना मास–2018 में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत प्रतियोगी

हिन्दी चेतना मास –2018 के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत प्रतियोगियों की सूची (पुरस्कृत राशि प्रथम 1500/2000/– द्वितीय 1100/1500/– तृतीय 800/1100/– सांत्वना 800/– दर्शक 100/– शील्ड)

क्रमांक	प्रतियोगी का नाम	विभाग	ई–मेल	पुरस्कार
1.	**हिन्दी प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता– 14.09.2018**			
(i)	डा. अजीत प्रताप सिंह	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	apsinghento@gmail.com	प्रथम
(ii)	डा. धनजंय उपाध्याय	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	dhananjay.gpb2011@gmail.com	प्रथम
(iii)	श्री कमलेश कुमार पाठक	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	pathakiivr@gmail.com	प्रथम
(iv)	डा. हरे कृष्णा	फसल उत्पादन विभाग	kishun@rediffmail.com	द्वितीय
(v)	डा. अनन्त बहादुर	फसल उत्पादन विभाग	singhab98@gmail.com	द्वितीय
(vi)	डा. स्वाति शर्मा	फसल उत्पादन विभाग		द्वितीय
(vii)	डा. राकेश कुमार दुबे	फसल सुधार विभाग	rksdubey@gmail.com	तृतीय
(viii)	डा. विनोद कुमार सिंह	फसल सुधार विभाग	bksinghkushinagar@yahoo.com	तृतीय
(ix)	श्री चन्द्र भूषण	फसल सुधार विभाग	cb.dubey2011@gmail.com	तृतीय
	दर्शक पुरस्कार			
(x)	डा. विद्या सागर	फसल सुधार विभाग	vidya.sagarkaushal@gmail.com	दर्शक
(xi)	डा. एस.के. सिंह	फसल उत्पादन विभाग	skscprs@gmail.com	दर्शक
(xii)	डा. एस.के. तिवारी	फसल सुधार विभाग	tiwarishailu@gmail.com	दर्शक
(xiii)	डा. राजेश कुमार	फसल सुधार विभाग	rajes74@gmail.com	दर्शक
(xiv)	डा. त्रिभुवन चौबे	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	tchaubay@gmail.com	दर्शक
(xv)	श्री शिवम चौबे	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	shivamchaubey55@gmail.com	दर्शक
(xvi)	डा. रमेश कुमार सिंह	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	rameshiivr@gmail.com	दर्शक
(xvii)	श्री रितेश कुमार मेल्होत्रा	प्रशासन अनुभाग	ritesh.iivr@gmail.com	दर्शक
(xviii)	श्री राहुल रौशन	प्रशासन अनुभाग	rhl.roushan@gmail.com	दर्शक
(xix)	श्री राहुल सिंह	प्रशासन अनुभाग		दर्शक
(xx)	श्री हितेन्द्र कुमार पाण्डेय	वित्त एवं लेखा अनुभाग	hitendra.pandey25@gmail.com	दर्शक
(xxi)	श्री नारायणी सिंह	वित्त एवं लेखा अनुभाग		दर्शक
(xxii)	श्री श्रीप्रकाश	फसल उत्पादन विभाग		दर्शक
2.	**हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन प्रतियोगिता 19.09.2018**			
(i)	श्री सुशील कुमार गुप्ता	प्रशासन अनुभाग	sushilsk@yahoo.co.in	प्रथम
(ii)	श्री रोशन लाल	वित्त एवं लेखा अनुभाग	roshaniivr@gmail.com	द्वितीय
(iii)	श्री गोपी नाथ	प्रशासन अनुभाग	gopiiivr@gmail.com	तृतीय
(iv)	डा. विद्या सागर	फसल सुधार विभाग	vidya.sagarkaushal@gmail.com	सांत्वना
(v)	श्री प्रकाश मोदनवाल	प्रशासन अनुभाग	prakash.iivr@gmail.com	सांत्वना
(vi)	श्री अजयन पी.	निदेशक अनुभाग	ajaynair27@gmail.com	सांत्वना
(vii)	श्री रितेश मेहरोत्रा	प्रशासन अनुभाग	ritesh.iivr@gmail.com	सांत्वना
3.	**हिन्दी निबंध प्रतियोगिता 19.09.2018**			
(i)	डा. नकुल गुप्ता	फसल सुधार विभाग	nakulgupta1988@gmail.com	प्रथम
(ii)	मो. अरशद नदीम	फसल सुधार विभाग	chfnadeem90@gmail.com	द्वितीय
(iii)	सुश्री अंकिता त्रिपाठी	प्रशासन अनुभाग	ankitacert007@gmail.com	तृतीय

(iv)	श्री कमलेश यादव	फसल उत्पादन विभाग	ykamlesh0117@gmail.com	सांत्वना
(v)	डा. राघवेन्द्र सिंह	फसल उत्पादन विभाग	singhraghu75@gmail.com	सांत्वना
(vi)	श्री संजय	प्रशासन अनुभाग	sanjay.gics@gmail.com	सांत्वना
(vii)	डा. रमेश कुमार सिंह	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	rameshiivr@gmail.com	सांत्वना
4.	**कम्प्यूटर पर यूनिकोड में हिन्दी टंकण प्रतियोगिता 26.09.2018**			
(i)	श्री अजयन पी.	निदेशक अनुभाग	ajaynair27@gmail.com	प्रथम
(ii)	श्री संजय	प्रशासन अनुभाग	sanjay.gics@gmail.com	द्वितीय
(iii)	श्री विजय कुमार बाल्मीकि	फसल सुधार विभाग	vkbsbi41@gmial.com	तृतीय
(iv)	श्री प्रकाश मोदनवाल	प्रशासन अनुभाग	prakash.iivr@gmail.com	सांत्वना
(v)	श्री विरेन्द्र नाथ विश्वकर्मा	पीएमई अनुभाग	vishwakrma.vn@gmail.com	सांत्वना
(vi)	श्री शमशेर कुमार वर्मा	वित्त एवं लेखा अनुभाग	shamsherverm88@gmail.com	सांत्वना
(vii)	श्री सौरभ सिंह	फसल सुधार विभाग	saurabhsingh15033@gmail.com	सांत्वना
5.	**वाद–विवाद प्रतियोगिता 27.09.2018**			
(i)	डा. राकेश कुमार दुबे	फसल सुधार विभाग	rksdubey@gmail.com	प्रथम
(ii)	श्री राहुल रौशन	प्रशासन अनुभाग	rhl.roushan@gmail.com	द्वितीय
(iii)	डा. हरे कृष्णा	फसल उत्पादन विभाग	kishun@rediffmail.com	तृतीय
(iv)	डा. अजीत प्रताप सिंह	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	apsinghento@gmail.com	सांत्वना
(v)	डा. नकुल गुप्ता	फसल सुधार विभाग	nakulgupta1988@gmail.com	सांत्वना
(vi)	डा. रमेश कुमार सिंह	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	rameshiivr@gmail.com	सांत्वना
(vii)	श्री कमलेश यादव	फसल उत्पादन विभाग	ykamlesh0117@gmail.com	सांत्वना
6.	**आशुभाषण प्रतियोगिता 27.09.2018**			
(i)	डा. अनंत बहादुर	फसल उत्पादन विभाग	singhab98@gmail.com	प्रथम
(ii)	डा. नीरज सिंह	फसल उत्पादन विभाग	neerajatic@gamil.com	द्वितीय
(iii)	डा. राघवेन्द्र सिंह	फसल उत्पादन विभाग	singhraghu75@gmail.com	तृतीय
(iv)	श्री राहुल रौशन	प्रशासन अनुभाग	rhl.roushan@gmail.com	सांत्वना
(v)	श्री कमलेश कुमार पाठक	अ.भा.स.सु.परि. (सब्जी फसल)	pathakiivr@gmail.com	सांत्वना
(vi)	सुश्री मधु कुमारी	प्रशासन अनुभाग	madhukumari35@gmail.com	सांत्वना
(vii)	मो. अरशद नदीम	फसल सुधार विभाग	chfnadeem90@gmail.com	सांत्वना
7.	**काव्य पाठ्य 10.10.2018**			
(i)	श्री अरूण कुमार मिश्रा	प्रशासन अनुभाग	arunmishraiivr@gmail.com	प्रथम
(ii)	सुश्री मधु कुमारी	प्रशासन अनुभाग	madhukumari35@gmail.com	द्वितीय
(iii)	श्री चन्द्र भूषण	फसल सुधार विभाग	cb.dubey2011@gmail.com	तृतीय
(iv)	डा. स्वाति शर्मा	फसल उत्पादन विभाग		सांत्वना
(v)	श्री उदय नारायण तिवारी	प्रशासन अनुभाग	udainarayantiwari@gmail.com	सांत्वना
(vi)	श्री विकास दुबे	फसल सुरक्षा विभाग	vikasdubey1515@gmail.com	सांत्वना
(vii)	डा. मनीष पाण्डेय	फसल सुधार विभाग	manishpandey9219@gmail.com	सांत्वना

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agri search with a human touch

भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान
ICAR-Indian Institute of Vegetable Research

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान

पोस्ट बैग नं. 01 जक्खिनी (शाहंशाहपुर)
वाराणसी-221 305, (उ.प्र.)
फोनः 91-542-2635236, 2635237, 2635247, फैक्स : 91-5443-229007
ई-मेल : directoriivr@gmail.com
वेबसाइट : www.iivr.org.in

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333